राजस्थानी लोक साहित्य

सा म नानूराम संस्कर्ता

रूपायन संस्थान, बोरून्दा

क्रम

संस्थान की ओर से

रूपायन संस्थान की ओर से श्री नानूराम संस्कर्ता के इस शोध प्रबन्ध को प्रबुद्ध पाठकों के हाथों में सौंपते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है। श्री संस्कर्ता ने इस ग्रंथ की रचना के पूर्व यही सोचा था कि ग्रंथ के माध्यम से उन्हें साहित्य सम्मेलन की उपाधि प्राप्त होगी और वे अपनी शैक्षणिक योग्यता को उन्नत बना सकेंगे। किन्तु उनके इस निर्णय से राजस्थान की संस्कृति के एक महत्वपूर्ण विषय पर भी कार्य सम्पन्न हो सका और लोक साहित्य विषयक बिखरी हुई सामग्री एक स्थान पर अपने समग्र रूप में निबद्धित हो सकी।

किन्तु अच्छे व उपयोगी ग्रंथ मात्र से उसका प्रकाशन हमारे समाज में अभी एक संभावना नहीं बनी है। अतः प्रत्येक राजस्थानी लेखक की भांति श्री संस्कर्ता के सामने भी प्रकाशन की कठिनाई थी। इसी स्थिति में राजस्थान राज्य सरकार के शिक्षा विभाग के कल्पनाशील अपर शिक्षा-निदेशक श्री अनिल बोर्दिया की एक योजना सामने आई। उन्होंने विभागीय तौर पर निर्णय लिवाया कि राजस्थान की पाठशालाओं के प्रतिभा-सम्पन्न एवं विद्वता-संपन्न अध्यापकों की कृतियों को छपवाने की व्यवस्था की जाय। श्री संस्कर्ता को इसी योजना से सहारा मिला।

शिक्षा विभाग ने चाहा कि लोक साहित्य संबंधी इस पुस्तक को हमारे संस्थान से प्रकाशित किया जाय। कारण कि रूपायन संस्थान स्वयं इसी चुने हुए विषय पर एकाग्र होकर कार्य करने का निर्णय ले चुका था और गत सात वर्षों में राजस्थानी लोक कथाओं के नौ वृहद भागों (बातां री फुलवाड़ी के नाम से) को प्रकाशित भी कर चुका था। साथ ही साथ लोक कथाओं के मासिक पत्र का प्रकाशन भी चल रहा था। श्री संस्कर्ता, शिक्षा विभाग एवं रूपायन संस्थान की इस समान आवश्यकता और उद्देश्य के कारण यह पुस्तक संस्थान से प्रकाशित हो सकी है।

हमें यह कहते हुए संकोच नहीं है कि राजस्थान नाम के प्रदेश की संस्कृति के विषय में अभी भ्रांतियों का कुहासा समाप्त नहीं हुआ है। हो भी कैसे? जब प्राथमिक एवं बुनियादी सूचनायें भी न एकत्रित हैं और न संग्रहीत। राजस्थान विषयक अधिकांश ग्रंथों में आग्रह पूर्वाग्रहों का सम्बल आज हमें यथार्थ तक पहुंचने ही नहीं देता। कहीं तथाकथित 'वीर प्रसविनी भूमि' की ऐतिहासिक अतिशयोक्ति मुंह बाये खड़ी रहती है तो कहीं सामिप्यपूर्ण शब्दों के बीच में संस्कृति की आत्म-मोहात्मक उक्तियों से बाहर निकलना दुश्वार हो जाता है। अतः प्रथम आवश्यकता तो यही महसूस होती है कि निष्कपट मन से राजस्थान के विषय में अपना अज्ञान स्वीकार करके ईमानदारी से तथ्यों का संग्रह करते चले जांय।

हमारे लिए यह कहीं अधिक सहज और सरल था कि संस्थान के सात वर्षों के कार्य-काल में कुछ मनमीत करने वाले सांस्कृतिक शीर्षकों के अंतर्गत कुछ पुस्तकें प्रकाशित कर

देते । हमारा भी अपना प्रेस है और स्वयं ही लिखने-पढ़ने की आदत भी है । लेकिन हमने ऐसा करना उचित नहीं समझा । हम लोक कथाओं लोक गीतों, मुहावरों कहावतों एवं अन्य लोक वार्ता विषयक सामग्री को पहिले एकत्रित कर लेना ही महत्वपूर्ण मान लेना चाहते हैं । संभवतया हमारे अध्ययन क्षेत्र का यह एक पक्ष ही है किन्तु पढ़ते-पढ़ते हमारा यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि राजस्थान के विषयों पर समालोचनात्मक अथवा विश्लेषणात्मक ग्रंथों की संभवतया उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि मूल सामग्री की और वह सामग्री भी वर्गातिक मोह-व्यामोह से परे रहकर संग्रहीत की हुई हो ।

इसी वैचारिक क्रम की शृंखला में श्री संस्कर्ता की पुस्तक के बारे में हमने प्रकाशन का निर्णय लिया । इसका मात्र एक कारण है राजस्थान के लोक साहित्य के विभिन्न बिखरे हुए कार्यों को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास निश्चय ही किया जाना चाहिये । क्योंकि यह भी पाते हैं कि लोक गीत के अध्येता लोक कथा के प्रति सजग नहीं हैं तो लोक कथा के अध्येता लोक-गीत या लोकसंगीत के पारस्परिक एवं आत्मिक संबंध को देख पाने में असमर्थ हो रहे हैं । यही हालत पहेलियों कहावतों मुहावरों खिलौनों लोक चित्रों की बनती जा रही है । लोक वार्ता की समग्रता को हम विद्वता के उत्साह में छिन्न विछिन्न करने अथवा टुकड़ों टुकड़ों में बांट कर देख रहे हैं । उसी क्रम में श्री संस्कर्ता का यह प्रयास संभवतया महत्वपूर्ण सिद्ध होगा ।

संस्थान को प्रसन्नता है कि राजस्थान के लोक साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन पुस्तक प्रकाशित हो रही है । आशा है कि इस विषय के पाठकों को न केवल लाभ होगा किन्तु वे इस प्रयास के द्वारा अपने भावी कार्यों को अधिक गहराई देने में सफलता प्राप्त करेंगे ।

५ १ ६८ — कोमल कोठारी

लेखक की ओर से

राजस्थानी लोक साहित्य का अध्ययन मैंने इस रूप में प्रारंभ नहीं किया था कि एक दिन मुझे अपनी शास्त्रीय उपाधि के लिये इसका सहारा मिलेगा। मैं राजस्थानी भाषा का अनन्य भक्त हूं और अपनी प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा या प्रेरणा के द्वारा उसमें सृजनात्मक रचना भी करता हूं। भाषा के अपने मोह के कारण ही मैं लोक साहित्य की ओर एक दिन आकृष्ट हुआ था और ज्यों ज्यों मैं उसकी गहराई या सांस्कृतिक सौन्दर्य की गुत्थियों में उलझता गया त्यों ही त्यों मुझे यह विषय अपने में लिप्त करता गया। मैंने पाया कि भाषा वस्तुतः एक औपचारिक बाह्य और केवल विचारों के आदान प्रदान का ही वाहन नहीं है अपितु यह उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। मुझे महसूस हुआ कि वस्तु से उसका नाम कहीं अधिक सार्थक, प्राणवान और जीवन्त सत्ता है। जगत के मिथ्यात्व की भावना में मुझे शब्द और अर्थ का अस्तित्व स्वरूप कहीं अधिक सत्य एवं सार्थक लगा। भाषा की इस महिमा का आभास भी मुझे तभी हुआ जब मैंने लोक साहित्य की मधुरिमा इसके लालित्य और उसके सौन्दर्य की रचना क्रिया को समझने का उपक्रम किया।

सो शिक्षा के द्वारा भाषा और भाषा के द्वारा शिक्षा के डूबते उतराते क्रम में मैं इस ग्रंथ की रचना के लिए तत्पर हो गया। लेकिन गुरु एवं सहृदय ज्ञानीजनों के पथ प्रदर्शन के बिना कहां जाता? अतः सर्व प्रथम मैंने श्री नरोत्तमदासजी स्वामी का सहारा चाहा। उन्होंने अत्यंत सहृदयता पूर्वक मेरे कार्य की योजना को देखा उसमें परिवर्तन परिशोधन कराये और मुझे एक विस्तृत मार्ग पर लाने के पूर्व उस पर चलने के योग्य बना दिया।

डॉ सत्येन्द्र एवं डॉ. कन्हैयालाल सहल ग्रंथ रचना के दौरान एवं पूर्ण होने पर निरंतर अपनी राय देते रहे और मुझे अध्ययन का दिशासंकेत भी प्रदान करते रहे। मैं तीनों विद्वानों का अत्यंत ऋणी हूं।

किन्तु मेरे सहयोगी मित्र बन्धुओं की निरंतर सहायता के बिना संभवतया मैं यह कार्य पूर्ण नहीं कर सकता था। बीकानेर नगर के अगरचन्दजी नाहटा ने अपनी संस्था से सभी ग्रंथों को मुझे दिखवाने में पूर्ण मदद की। मूलचन्द प्राणेश का साथ बराबर बना रहा और मित्र एवं सलाहकार के रूप में मुझे निरंतर उत्साहित करते रहे। आलोचक बुद्धि से वे मेरे कार्य को परखने का प्रयास अवश्य करते थे। इसी प्रकार मैं भगवानजी चारण का भी ऋणी हूं जिन्होंने हर प्रकार से मेरी मदद की है।

इस धन्यवाद की कड़ी में मैं राजस्थान के शिक्षा विभाग के अभूतपूर्व योगदान की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। मैं एक सामान्य अध्यापक हूं। साधन हीन और वित्त विहीन। प्रकाशन की होड़ में मैं कभी सोच ही नहीं सकता था कि यह शोध ग्रंथ कभी छपवा भी पाऊंगा। किन्तु मुझे अनायास ही एक दिन श्री अपर शिक्षा निदेशक से मिलने का

१

लोक समीक्षण

लोक का अर्थ– वसे तो सदा से लोक शब्द के बहुत से अर्थ प्राय: मिलते ही हैं– जसे विश्व, भुवन स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, विश्व का एक भाग संसार, भूभाग, लोग, समाज, प्रजा जनता समूह मानवजाति, यश, दिशा ब्रह्मा, विष्णु महेश प्राणी आदि। पर विशेषत दो अर्थ अधिक प्रचलित हैं। एक है जिससे लोक परलोक और तीन लोक का ज्ञान होता है [मेरे विषय प्रसंग में यह अर्थ अभिप्रेत नहीं है] दूसरा अर्थ है प्रजा जनता, जनसमुदाय। इसी दूसरे शब्दार्थ का वाचक लोक शब्द साहित्यालंकार है। प्राचीन भाषा में लोकायत दर्शन हमारी उक्त बात की पुष्टि करता है–लोकेषुआयत लोकायत्। अत कहना पड़ता है कि लोक, मानवजाति का वह एक समूह है जो ग्रामीण-संस्कार, अनुप्रत सभ्यता, निरक्षर, किन्तु सस्कारों से मंडित तथाकथित शिक्षा अनभिज्ञ और साथ ही साथ सवर्ण सभ्यता के घमंड से बहुत दूर है तथा प्राचीन परम्परा की अटूट धारा में अबाध किलोलें करता रहता है। उसकी वाणी में रस है, अनिर्वचनीय सुख है और उसकी सहृदयता पर सुनहली छाप है।

नागरिक सस्कृति और सुव्यवस्थित शिक्षा-नियमों के नजदीक न जाकर जो निरक्षर भट्टाचार्य कहलाता है और ऐसा ही तथाकथित गवार तथा ग्रामीण अगूठाछाप मानव-समूह ही हमारा लोक है। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में लोक शब्द का अर्थ नगरों और ग्रामों मे फैला हुआ समूचा लोक समुदाय है। इसलिए हमारा यह लोक, शिक्षा सीमाओं से बाहर सभ्य जनों में उपेक्षित और आदिवासी जातियों में सर्वप्रथम गिना जाने वाला जन समूह ही लोक कहलाता है।

आजकल लोक शब्द के अनेक अर्थ समझे और किये जाते हैं। कुछ विद्वान लोक से अर्थ मानव के उस प्रकार के समूह से लगाते हैं जो सभ्यता के प्रभाव से कम प्रभावित हुआ हो और जिसकी वृत्तियां मौलिक रूप से आदिम और अपरि-

मार्जित हो। इस प्रकार के मानव बहुधा या तो आदिवासी समझे जाते हैं या वे लोग जिन्हें जंगली या गंवार कहा जा सकता है। अन्य विद्वान लोक का अर्थ उस प्रकार के मानव से लगाते हैं, जो गांवों में निवास करता है और जिस पर बाहरी और आधुनिक सभ्यता का प्रभाव नहीं के बराबर है। यह मानव आदिम मानव से इस दृष्टि से भिन्न होता है कि गांवों में रहते हुए भी उसकी वृत्तियां आदिम नहीं होतीं। उस पर भी धर्म, समाज और संस्कृति के संस्कार विद्यमान रहते हैं और अपने आचार विचार, रहन-सहन, पहनाव, खान पान आदि में ग्रामीण रहते हुए भी उस पर मानवीय विकास के लक्षण परिलक्षित होते हैं। कुछ लोग लोक शब्द का अर्थ जनसाधारण से लगाते हैं। चाहे वह गांव का रहने वाला हो चाहे शहर का, विशेषता इतनी ही होती है कि वह शिक्षा दीक्षा, पहनाव आचार-विचार, संस्कार, व्यवहार में उस देश की प्रतिनिधि संस्कृति का प्रतीक हो और देश के जनसाधारण की वृत्तियों का मूर्त रूप हो।

लोक की भारतीय व्युत्पत्ति एवं व्याख्या — लोक की वास्तविक व्युत्पत्ति एवं व्याख्या हमारी विभिन्न संस्कृतियों के द्वारा प्राप्त होती आई है। प्राचीन मानवों की विगत संस्कृति के मूल तत्वों में लोक शब्द की अर्थोत्पत्ति मिलती है। कभी कभी दो संस्कृतियों के संघर्ष में किसी अन्य अर्थ के संकेत तयार हो जाया करते हैं। वैसे भारत में भी आर्यों के आने पर अनार्य जाति का एक अपरिचित संस्कृति के साथ संघर्ष हुआ। फलस्वरूप वेद और वेदेतर स्मितियों एवं सांस्कृतिक तथ्यों का प्रचलन स्वाभाविक रूप में हो गया।

अत एक दूसरे अर्थ ने फिर जन्म लिया और वेद के विपक्ष में लोक [वेदेतर] शब्द चल पड़ा। लोक और वेद की दो पृथक परिपाटियां हो गईं। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तम्[1] के द्वारा लोकशास्त्र एवं लौकिक आचारों की विशेषता सदा से मान्य रही है। महाभारत में लोक वेद विधि में विरोध को बतलाने वाले कतिपय अंश मिलते हैं — वेदाश्च वैदिका शब्दा सिद्धालोकाश्च लौकिका।

इन वाक्यों से यह मालूम होता है कि जो तथ्य स्पष्ट नहीं है वह लोक में है अथवा वेद में है उसके सिवाय भी लोक में हो तो वह लौकिक है। अत प्राचीन ग्रन्थों में वेद और वेदेतर स्थिति प्रकट है। वेद की पूजा के साथ लोक की स्वतंत्र महत्ता भी मिलता के कारण क्रमश मानी गई है। यह लोक और वेद का भेद हमारे भारतीय साहित्य की परंपरा से ज्ञात होता है। ईर्ष्या और अनादर के लिए नहीं। बौद्ध धर्म की मान्यता के साथ राजा, प्रजा में लोक मानव मात्र के मनोभावों से विभूषित हुआ है। ब्राह्मण धर्म के ह्रास के साथ संस्कृत भाषा का महत्व घटा और लोक प्रचलित भाषाओं को प्रश्रय मिला। महावीर

१ — गीता।

गौतम बुद्ध और उनकी परम्परा के अनेक साधुओं ने अपने व्याख्यान एवं प्रयोगों म जनसाधारण की भाषा का प्रयोग करके लोक का मान बढ़ाया है। लोकप्रज्ञा, लोकअप्पवाद्म आदि शब्द प्राकृत एवं अपभ्रंश में लौकिक नियमों की पूर्ण महत्ता प्रकट करते हैं। प्रसिद्ध संत कबीर ने भी सद्‌गुरू के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए लोक शब्द का प्रयोग किया है – 'जब मैं अज्ञानवश लोक व वेद का सहारा लेकर, सर्वसाधारण के पीछे लगा चला जा रहा था कि मार्ग में सद्‌गुरू मिल गये और उन्होंने मेरे हाथ मे दीपक थमा दिया।'[१]

परन्तु उस सीमित एवं बाह्य संस्कृति वाले लोक से आज के लोक शब्द का अर्थ और भी श्रेष्ठ तथा आदर्श हो गया है। इससे वैदिक-अवैदिक वर्गों का भ्रम भी समाप्त हो गया है। हम जनता का महत्व, जनार्दन के रूप में मानते हैं। इसका अर्थ तो राष्ट्र, संस्कृति एवं धर्म का प्राण बन गया है। इस तरह के आशयों की महिमा धर्मशास्त्रों, पुराणों वेदों तथा वेदांगों में बहुत कुछ मिलती है। वेदों की बात पुराणों में और पुराणों की लोक में प्रचलित है। तभी लोक वेदेच भारतीय संस्कृति का मूल दृष्टिकोण बन सकता है। डॉ. वासुदेव शरण के विचार में इस संस्कृति के देवरथ का एक पहिया वेद में और दूसरा लोक में है।

ऋग्वेद में भी लोक [समाज] की एक महान कल्पना है। उसे पुरुष रूप ईश्वर कहा है – सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्ष सहस्रपात्[१] [बहु सहस्रों मुख, सहस्रों नेत्र युक्त है और सहस्रो पद युक्त है] इसकी संकल्प शक्ति बड़ी सजग है। यह व्यापार व्यवसाय, कला-कौशल, कृषि-उद्योग, संस्थानुसंधान और व्यवहार कुशलता आदि कार्यों में प्राणी मात्र का सखा एवं सफल सम्पादक बना रहता है। अपने दीर्घ जीवन के आरोग्य मानों का यह मुद्रितागार है। 'बहु व्याहितो वा अयं बहुशो लोक'।[२] [यह लोक अनेक रूपों में परिव्याप्त है] पृथ्वी के सब भागों पर फले हुए सब तरह के मनुष्यों से परिपूर्ण है।

'लोक' लोक का हृदय है। यह निस्सार वाचालता नहीं ठोस गंभीरता लिये हुए है। इसके पास कपट नहीं, करुणा है। इसकी वाग्धारा उज्ज्वल एवं निर्मल है। यह वेदेतर संस्कृति के लोक की धारणा के अन्तर्निहित अर्थ के द्वारा बहुत महत्वपूर्ण स्थान को समाले हुए है। साथ म अवैदिक भावना को भी वहन करता चलता है। यह परंपरा की गाड़ी का मजबूत पहिया, सहानुभूति अनुभूति सगम एवं स्नेहाभिव्यक्ति का पीढ़ी-दर पीढ़ी संवाहक है। इसके पास अपने असख्य सरस शब्द, ललित भाषा और लोकग्राही शैलियों का संग्रह है। यह घर के बड़े-बूढ़े की तरह जीवन की सर्व सामग्री को सम्मिलित रूप से प्रभावित करती है। इसकी गौरव-गरिमा नित्य एक जसी गतिमान रहती है।

---

१ — १०।६ यजु ११।२ — जैमिनीय उपनिषद्

आज के लोक शब्द म साधारण जनता तथा सपूर्ण मानव समाज का अर्थ संकेतित है। यह शब्द पूर्व संस्कृति की उत्तम निधि व महित वतमान शिष्टता एवं सभ्यता के मंगलप्रद अभ्युदय का सूचक है। इसका क्षेत्र बड़ा विस्तृत एवं व्यापक है। यह लोक भारतीय समाज की नागरिक तथा ग्रामीण दोनों अभिन्न सस्कृतियों में व्याप्त है। केवल ग्राम की परिधि में लोक को बांधना उचित नहीं, ग्राम और नगर का भेद तो इतिहास की पिछली कुछ ही सदियों में स्थापित हुआ है। अत यही लोक नामक संज्ञा जन समाज का उद्योगी एव गतिशील अंग है। गति ही जीवन है, गति नहीं तो जीवन समाप्त ह। इसलिए लोक साहित्य जीवन का साहित्य है। जीवन से अलग नहीं।

वर्तमान समय के साहित्य की प्रवृत्तियों में लोक शब्द का विशेषगत प्रयोग कथा, वार्ता, गीत संगीतादि की कलात्मक उपलब्धियों के साथ किया जाता है। मानव समाज की आदिम संग्रहीत भावनाएं आस्था और विश्वास संयुक्त हैं। इसमें भाषा और साहित्य का तत्व ही नहीं ह बल्कि मानव ज्ञान के अनेकानेक विषय पहाड़ी पत्थर की तरह सुन्दर, अनमोल एवं अनगढ़ ठास रत्न की भांति सुरक्षित रखे मिलते हैं। इन्हीं मानदडो के आधार पर मृ वज्ञानिकों व समाज शास्त्रवेत्ताओं ने साहित्य शब्द के पूर्व लोक को जोड़ा है।

लोक साहित्य मनुष्य जीवन की एक चिरसगी विशेषता है। यह सदियों से पुनीत गंगधार की तरह लोक उद्धारक के रूप म सवेग बहकर भी विद्वानों के निकट तुच्छ वस्तु बनी रही है अब वह प्रत्यक्षदर्शी 'लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर '[1] जैसे सुवाक्यों सहित अध्येताओं के लिए नया मोड़ लेकर चली है। 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथ्व्याः' [यह भूमि माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूं] अथर्ववेद का यह सूत्र आज विद्वज्जनों की आत्मा में लोक अपनत्व के प्रति प्रेरणा का उजास कर रहा है। उसकी स्निग्ध-ज्योत्स्ना चारों ओर फल रही है। हमारा किसान इस सूक्त के तात्पर्य को पीढ़ियों से क्रियान्वित करता आया है। वही *लोक का महाप्राण है और उसका जीवन सच्चा प्रतिनिधि। अत लोक साहित्य* एक तीर्थधाम है। डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में 'लोक' हमारे जीवन का महा समुद्र है उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्नज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजाप है। लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, य हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र ह। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्व है और निर्माण का नवीन रूप है। लोक पृथ्वी - मानव, इसी त्रिलोकी

1 महाभारत उद्योग पर्व ४१।१६

जीवन का कल्याणतम रूप है। ✓

नृतत्त्वशास्त्र, समाजविज्ञान, जातिविज्ञान एवं भाषा विषयक नवीन ज्ञान की प्रगति ने लोक भाषाओं की मौलिक निधि के प्रति सभी देशों को समान रूप से आकर्षित किया। लोक में प्रचलित मान्यताएं, रूढ़ियां, अंधविश्वास, परंपरा, धार्मिक आचार-विचार और विभिन्न भाषागत अभिव्यंजना लोगों के गले उतर कर हृदय में आई हैं।

'लोक' का अंग्रेजी प्रतिशब्द फोक [Folk] है। इस [Folk] शब्द को मध्ययुगीन अंग्रेजी में [Folc] कहा जाता था एवं यही एंग्लो-सेक्सन भाषा में [Volk] नाम से प्रचलित रहा। सामान्य-जन को एक शब्द में व्यक्त करने के लिए 'फोक' शब्द का प्रयोग किया गया। किन्तु जब जन-सामान्य की सांस्कृतिक धरोहर को शास्त्रीय रूपों से विभाजित करने का प्रश्न आया तो 'लोक' अथवा 'फोक' को परिभाषित करने का प्रयत्न भी प्रारंभ हुआ। अनेक बार 'फोक' का अर्थ गंवार, ग्रामीण [हीन अर्थ में] एवं मूढ़ के रूप में भी किया गया किन्तु यह अर्थत्व संकीर्ण मनोवृत्ति का ही परिचायक था। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में 'फोक' शब्द के अर्थ की सीमा-निर्धारित करते हुए कहा गया है कि किसी भी राष्ट्र की नगरेतर सांस्कृतिक धारा को लोक के अन्तर्गत स्वीकार करना होगा। ब्रिटेनिका का यह मत पाश्चात्य देशों के लिए चाहे सत्य हो, किन्तु भारत अथवा अन्य औद्योगिक रूप से कम विकसित देशों के लिए नगर व ग्राम का विभेद उतना बड़ा सत्य नहीं बन पाया है।

यद्यपि हम ग्राम या सामान्य जन को फोक कह सकते हैं। किन्तु ग्राम या जन के निम्न अर्थों का बोध कराकर फोक के महत्त्व में नहीं मिला सकते। जन शब्द बहुत पुराना एवं लोक प्रसिद्धि पूर्ण है। संस्कृत, प्राकृत पाली और अपभ्रंश ग्रंथों में मानव समाज का ज्ञान सदैव जन शब्द से ही होता रहा है। इस ढंग से लोक और जन में निकटतम सम्बन्ध जान पड़ता है। इन दोनों में सप्राणत्व भी पर्याप्त रूप में है। परंपरा और प्रयोग की दृष्टि से आज के फोक का रूप सादृश्य लोक से ही अधिक मिलता है। वर्तमान स्थिति में 'जन' शब्द का प्रतिबिंब अधिकाधिक राजनीतिमय बन गया है और बनता जा रहा है। लोक का ठीक पर्याय होते हुए भी 'जन' शब्द के अर्थ संकेत में एक अवरोध आ गया है। अतः 'लोक' शब्द का प्रयोग ही समीचीन जान पड़ता है।

लोक - वार्ता का महत्त्व — पाश्चात्य विद्वानों ने असभ्य जातियों के साहित्य को टटोलने का कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही शुरू कर दिया था। उस समय लोक साहित्य के सम्बन्ध में बड़े विशद प्रयत्न चलने लगे थे। वेदों के अध्ययन से तुलनात्मक धर्म, भाषा-विज्ञान और विशेषकर धर्म-गाथाओं का तुलनात्मक

अध्ययन का क्रम प्रारंभ किया था। पुरातन भारतीय वाङ्मय म कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश, सिंहासन बत्तीसी, शुक बहात्तरी आदि ग्रंथों तथा नीति कथा साहित्य का, दूसरे देशों की कथाओं स पारस्परिक सम्बन्ध निकालने की ओर मनीषी विद्वानों का ध्यान गया। नृतत्व शास्त्र, समाज शास्त्र, भाषा विज्ञान आदि विषयों क अन्वेषण एव विकास क साथ लोक वार्ता का संग्रह-शोध आवश्यक कर्त्तव्य बन गया।

१९ वीं शताब्दी के मध्य स ही लोक वार्ता को एक स्वतंत्र विषय स्थापित करने का प्रश्न खड़ा हो गया था। १८५८ म विल्हेम हेरिचरी म म विज्ञान, समाज शास्त्र, जाति शास्त्र एवं लोकप्रिय प्राचीन वस्तुओं क अध्ययन को एक वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया। इसी क्रम म गोम्मे महोदय न भी १९०८ में "फोक लोर इज ऐ हिस्टोरिकल साइस" नामक पुस्तक म इसे अध्ययन का एक नवीन अनुशासन मानने का आग्रह किया। लोक वार्ता का स्वतंत्र विषय स्वीकार करने के बारे में जो तक थे उनका इन विद्वानों ने मंडन किया और इस विषय के साथ अन्य सम प्रवृत्ति के विषयों से पृथक करने का अतुलनीय प्रयास किया। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते हुए अब निर्विवाद रूप से लोक वार्ता [फोक लोर] का एक स्वतंत्र अध्ययन का विषय एवं विश्वविद्यालयीय स्तर पर अध्ययन क योग्य अनुशासन मान लिया गया है।

लोकवार्ता वृत लोक वार्ता लोक परपरा से अविच्छिन्न रूप स जुड़ा हुआ सत्य है। जीवन की सारी आवश्यक सामग्री परपरा से प्राप्त करत हुए अपने ही क्षेत्र में प्रवहमान होती है। लोक-वार्ता शरीर के सब अंग, लोक परंपरा-रूपी पदार्थ से पोषित एव पुष्ट है। वह उसका मात्र सहायक सत्य ही नही जीवन दाता एवं बुद्धि विधाता भी है—लोकवार्ता लोक परंपरा की सपत्ति, खेती तथा वाटिका है, जो सर्वेव मौखिक या लिखित रूप में हरी भरी रहती है। पर प्रारम्भ में वह अवश्य मौखिक अथवा अलिखित ही उत्पन्न होती है। इसलिए जो भी बातें परंपरा से पाई जाती है वे ही लोक वार्ताएं हैं। लेकिन उनमें लोक मानस की अभिव्यक्ति का होना जरूरी है। यह लोक मानस, समाज और उसके मनुष्यों को उत्तराधिकार में मिलता है। सब साधारण के रीति रिवाज शृंखला की कड़ी की भांति जुड़कर चलते हैं और लोक वार्ता को बनाते हैं। परंपरा के सांस्कृतिक ढांचे में यह अवयवी रूप से जुड़ी हुई ह। इन्हीं से शृंखला भाव प्रकट होता ह। अत परंपरा का महत्व प्रमुख है और वार्ता का गौण! आपस में दोनों एक दूसरे की पूरक हैं विनाशक नहीं। डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा ह "लोक वार्ता एक जीवित शास्त्र है लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की जन्मभूमि और भौतिक

जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति—इन तीन क्षेत्रों में लोक के पूरे ग्राम का अन्तर्भाव होता है और लोक वार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है।'

लोक वार्ता एक विशेष अर्थ का वाचक शब्द है। इसको अंग्रेजी फाकलोर [Folklore] शब्द का पर्यायवाची मानना अनुचित नहीं है। जस फोक का हिन्दी पर्याय लोक शामनीय जान पड़ता है, वैसे ही लोक वार्ता शब्द भी फोकलोर के लिए अधिक महान एवं विशद भावों को वहन करता कलता है। यह शब्द लोक [फोक] और वार्ता [लोर] के संयोग से बना है। इसका अन्तिम शब्द लोर [Lore] एंग्लो-सक्सन [Lar] की संतति है जिसका अर्थ होता है सीख लेने वाला।

लोक वार्ता का विस्तारार्थ – लोक वार्ता शब्द एक विशद अर्थ रखता है। उसमें मानव का परंपरित रूप अपने चरित्र-धन के साथ चित्रित रहता है। उसके लोक मानस स्रोतों में संस्कार या परिमार्जन की प्रेरणा काम करती है। धर्म-गाथाएं एवं कथाएं, लौकिक गाथाएं तथा कथाएं, लौकिक एवं धार्मिक विश्वास, कहावतें पहेलियां आदि सभी लोक वार्ता के अंग हैं। इस के विशद अर्थ के सम्बन्ध में श्री कृष्णानन्द गुप्त का उद्धरण डा सत्येन्द्र ने इस प्रकार अपने ग्रंथ में रखा है—लोक वार्ता को अंग्रेजी में फोकलोर कहते हैं अथवा यह कहिये कि फोकलोर के लिये हमने लोक वार्ता शब्द का प्रयोग किया है। फोकलोर का प्रचलित अर्थ है जनता का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि। परन्तु हम उसका अर्थ करते हैं जनता की वार्ता। जनता जो कुछ कहती और सुनती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोक वार्ता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश की अपनी एक भाषा होती है उसी प्रकार अपनी एक लोक वार्ता भी होती है। जनता के मानस में लोक वार्ता का जन्म होता है। अतएव किसी एक देश की लोक वार्ता का पूरा और विधिवत संग्रह किया जाये तो वहां के निवासियों की अतीत से लेकर अब तक की बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक, एवं सामाजिक अवस्था का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जायेगा।

लोक वार्ता से प्राप्य सारी सामग्री हमें मानव को उस अवस्था में मिलती है जो सभ्यता के नजदीक नहीं है। पुराने जमाने के उसके अवशेष श्रृंखला सूत्र वर्तमान समय तक चले आये हैं। अब वे सभ्य दुनिया की तरफ विरल विस्मृत लहरों में भीगे पड़े हैं। गोम्मे महोदय ने लिखा है कि सभ्यता की तुलना में—लोक वार्ता यह स्थिति निर्देश करती है कि उसके निर्माण तत्व उस मानवीय भाव की अवस्था के अवशेष हैं जो उस अवस्था की अपेक्षा 'जिसमें वे आज मिलते हैं' अधिक पिछड़े हुए हैं और इसलिए अधिक प्राचीन हैं। मतलब

लोक वार्ता का विकास सभ्यता में दृष्टिगत नहीं रह पाता। सभ्यता के आगमन से लोक वार्ता के विकास म बाधा पहुंचती है। वह अपनी पुरानी परिस्थिति को रक्षित किये हुए सभ्य समाज के अन्तर्मन म प्रवहमान रहती है। इसीलिए लोक वार्ता की प्राप्त सामग्री के आधार पर हमें जातीय तत्व सुरक्षित मिलते हैं। विद्वानों ने इसको जातीय विज्ञान का एक महत्वपूर्ण सहायक विषय माना है।

फोकलोर के लिए लोकवार्ता शब्द का प्रयोग — मराठी साहित्य मे मर्मज्ञ श्री पोतदार ने फोकलोर के लिए लोक विद्या ' शब्द को प्रयाग में लेने का आग्रह किया। श्री कर्वे ने भी लोक विद्या शब्द उचित ठहराया। श्री कालेलकर ने फोकलोर का अपने संकीर्ण अर्थ में ' लौकिक दन्त कथा ' के नाम से अभिहित करने का प्रयत्न किया। मराठी के पारिभाषिक शब्द कोश ने फोकलोर के लिए अनश्रुति शब्द का भी प्रयोग किया है। इसी प्रकार सपूर्ण फाकलोर के लिए मूल से कभी कभी लोक साहित्य अथवा लोक वाङ्मय का प्रयोग भी किया गया है। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी न लिखा कि लोक सस्कृति, सभवतया एक उचित शब्द है। इसी प्रकार श्री भोलानाथ ने लोक शास्त्र, लोक प्रतिमा, लाक विज्ञान जसी शब्दावली के प्रयोग पर बल दिया। इन सभी विषयगत विभिन्नताओं को आपने लोकायन शब्द म समाहित करने का प्रयास किया। इसी लोकायन शब्द का समर्थन हमें डॉ सुनीति कुमार चाटुर्ज्या से भी मिलता है। श्री चाटुर्ज्या महोदय कहते हैं कि परम्परागत जीवन यात्रा की पद्धति जिन सामाजिक अनुष्ठाना विश्वासों, विचारों तथा वाङ्मय से अपने लौकिक प्रकाश को प्राप्त करती है उन्हें अंग्रेजी में फोकलोर कहते हैं। इस शब्द का भारतीय प्रतिशब्द हमने लोकायन इसीलिये बना लिया है।

लोक विद्या, लौकिक दन्त कथा लोकायन, लोक साहित्य आदि आदि शब्दों से अंग्रेजी के फोकलोर शब्द में निहित ध्वनि का पूर्ण आभास नहीं मिलता। इसी दृष्टि से श्री वासुदेव शरण अग्रवाल एवं श्री कृष्णानंद गुप्त द्वारा स्वीकृति किये गये ' लाक वार्ता शब्द को फोकलोर के व्याप्त अर्थ में स्वीकार किया जाना उचित लगता है। श्री श्याम परमार के शब्दों में लोकवार्ता शब्द हिन्दी में क्रमश अपना धार्मिक एवं पारिभाषिक स्थान निर्धारित कर चुका है।

फोकलार शब्द के लिए हिन्दी में लोकवार्ता शब्द को स्वीकार करने मे केवल एक ही दुविधा उत्पन्न होती है। जहां तक राजस्थानी भाषा का प्रश्न है वहां निर्विवाद रूप से वारता ' का अर्थ कथा अथवा ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक आख्यान से लिया जाता है। किन्तु भारत की एक अन्य परंपरा में वाता का विस्तृत अर्थ भी लिया गया है और उस रूप में चौरासी वैष्णवों की वार्ता एव बावन वैष्णवों की वाता प्रमुख हैं। यहां ' वाता ' शब्द का मुख्य

र्थ कथा या कहानी नहीं है। अपितु पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों, अनुभवों एवं साहित्यिक रूपों को व्यक्त करने के प्रकार को वार्ता कहा गया है। इन वार्ताओं का शैली-सौन्दर्य भी कथित अथवा मौखिक रूप में निहित है। यदि हम इन ग्रंथों की परंपरा पर वार्ता का सकीर्ण कथात्मक आरोपण करें तो ग्रंथों को नहीं समझ पायेंगे। अत: इसी साहित्यिक परपरा में 'वार्ता' को 'लोर' के स्थान पर ग्रहण करना उचित होगा। अंग्रेजी शब्द लोर का अर्थ है — जिसे परपरा के ज्ञान एव अनुभव से सीखा जाय, समाज का संपूर्ण अचेतन रूप से प्राप्त ज्ञान, किसी विषय पर पूर्ण जानकारी और ठीक इन्हीं अर्थों में पुष्टिमार्गियो के ग्रंथों में 'वार्ता' शब्द का प्रयोग हुआ है। अत: वार्ता के सकीर्ण अर्थ का छोड़ कर, उसके व्यापक अर्थ को ही स्वीकार करना उचित होगा।

लोक वार्ता संकलन और विस्तार—जिस युग में लोक वार्ता सबंधी प्रयत्न आरंभ और विकसित हुए, वह विदेशों से भारत का घनिष्ट सपर्क बढने का भी युग था। संकलन का चमत्कारिक आविष्कार पाश्चात्य क्षत्र के लिए हो चुका था और भारत में अंग्रेजों के प्रभुत्व की जड़ें जम चुकी थीं। इन्हीं पाश्चात्य विद्वानों ने पहिले भारत की लोक वार्ता पर दृष्टिपात किया। टॉड महोदय को सबसे पहले लोक वार्ता संग्राहकों में स्थान दिया जा सकता है। इन्होंने एनेल्स एन्ड एँटिक्विटीज ऑफ राजस्थान में राजस्थान के इतिहास की जितनी सामग्री एकत्रित की है उतनी ही लोक वार्ता भी [१]। वस्तुत: टॉड ने जो सामग्री इतिहास रूप में दी है उसका आधार ऐतिहासिक आख्यान (लीजेंडस) ही रहा है। यही कारण है कि उन्हें लोक वार्ता सग्राहक के रूप में भी स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु लोक वार्ता को उदार और विस्तृत दृष्टि से देखने का श्रेय प्रथम दो ग्रिम बन्धुओं को है। ये जर्मन बधु थे, जिन्होंने अपनी पुस्तकें किण्डर एन्ड हाउस मार्स तथा डायस्के माईथोलोजी (१८६५) के नाम से निकाली थी। इन पुस्तकों के द्वारा लोक वार्ता संबंधी प्रयत्नों को वज्ञानिक धरातल मिला और भारत में ऐसे प्रयोग भी होने लगे। अत: ग्रिम बन्धुओं का लोक वार्ता क्षेत्र में बड़ा महत्व है। इस विषय को वज्ञानिक बताने वाले ये ही दो प्रथम व्यक्ति कहलाते हैं।

इन्हीं के प्रयत्नों के उपरान्त लोक वार्ता के अध्ययन की प्रवृत्ति बढ़ी है। लौकिक वार्ता के आधार पर वैदिक अध्ययन का वज्ञानिक अनुसधान होने लगा था। इस प्रकार का काय मक्समूलर ने सबसे अधिक मात्रा में पूर्ण किया है।

पाश्चात्य विदुषी स्वर्गीय श्रीमती शार्लट सोफिया बर्न ने 'लोक वार्ता विस्तार' की एक वज्ञानिक परिभाषा लिखी है। उसका उद्धरण डॉ सत्येन्द्र के लिखे अनु

---

१ भारतीय लोक साहित्य श्री श्याम परमार

सार इस प्रकार दिया जाता है— 'यह एक जातिबोधक शब्द की भांति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति रिवाज, कहानियां, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के संबंध में, मानव स्वभाव तथा मनुष्य कृत पदार्थों के संबंध में भूत प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में जादू, टोना सम्मोहन, वशीकरण तावीज भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु विषयक तथ्य, आदिम तथा असभ्य विश्वास इसमें आते हैं और साथ ही इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति रिवाज अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य-व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषय भी इसमें आ जाते हैं। धर्म गाथाएं अवदान [लीजेंड], लोक कहानियां गाथे [बलेड] गीत किंवदन्तियां, पहेलियां तथा लोरियां भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तुएं आ सकती हैं, वे सभी इसके क्षेत्र में हैं। यह किसान के हल का आकृति नहीं जो लोक वार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है किन्तु वे उपचार तथा अनुष्ठान हैं जो किसान हल को भूमि जोतने के काम में लेने के समय करता है। जाल अथवा वंशी की बनावट नहीं वरन् वे टोटके हैं जो मछुआ समुद्र पर करता है। पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं वरन् वह बलि है जो उसके बनाते समय दी जाती है और उसको उपयोग में लाने वाले के विश्वास लोक वार्ता वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन धर्म, विज्ञान तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में [१]।

लोक साहित्य लोक वार्ता का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह साहित्य मौखिक होता है। अतः कई लोग इसे साहित्य न कहकर वाङ्मय शब्द की उपयुक्तता प्रस्तुत करते हैं। ज्ञानेश्वरी की टीका में महाराष्ट्र के स्वर्गीय श्री वि का राजवाड़े ने इसे साहित्य की अपेक्षा वाङ्मय संज्ञा देते हुए लोक के साथ प्रयुक्त किया है। उनका कहना था कि प्रान्तीय जातीय और क्षेत्रीय लोक कथाएं, दन्तकथाएं गीत, पवाड़े लावनियां, कहावतें आदि वाङ्मय की सही सही खोज होना अभी शेष है।

लोक साहित्य का कभी कभी कतिपय सज्जन ग्राम साहित्य के अर्थ में भी प्रयोग कर लेते हैं। पर ग्राम और लोक में अन्तर है। ग्राम साहित्य में ग्रामीण सीमा है, किन्तु लोक साहित्य में ग्राम और नगर दोनों का साहित्य आता है।

१ ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन : डा सत्येन्द्र।

ग्राम के अनुसार या ग्राम पर लिखा हुआ वाङ्मय भी ग्राम साहित्य कहलायेगा। अतः ग्राम साहित्य और लोक साहित्य दो विधायें हैं। कई लोग, लोक साहित्य को जन साहित्य में अनुभूति करने लग जाते हैं। पर, लोक साहित्य जन साहित्य से भी भिन्न है। जन, लोक की अपेक्षा अधिक संगठित एवं चैतन्य सत्ताधारी है। वह राजनीतिक पृष्ठभूमि के साथ कर्त्तव्यशील होता है। जन साहित्य जन कल्याण भावी और जन को शिक्षा देने वाला होता है। किन्तु लोक साहित्य सरल, स्वाभाविक एवं स्वान्त सुखाय भावों से युक्त होता है। जनपदीय साहित्य क्षेत्रीय विशेषता का सूचक है। वह लोक साहित्य की व्यापकता तक नहीं पहुँच सकता। वह [लो सा] भले ही किसी अनाम व्यक्ति के द्वारा रचा गया हो पर आज उसे सामान्य लोक समूह अपना ही कहता है। उसमें लोक मानस स्पष्ट दिखाई देता है। वह लोक की युग-युगीन वाणी साधना का भंडार है। मतलब लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जिसके किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलता। उसके स्वर, शब्द और लहजे पर लोक की छाप होती है। अन्य मान्यता के अनुसार मौखिक परंपरा पर चलने वाला कंठानुकंठ साहित्य है जिसके रचयिता का पता नहीं, तमाम लोक ही उसका समाधिकारी और प्रेरक है। इस तरह से अक्षरहीन लोगों के मनोरंजनार्थ काम आने वाले साहित्य को लोक साहित्य ही कहते हैं।

लोक वार्ता वह उर्वरा धरती है जो लोक साहित्य के लिए सदव सिंचन पुष्टि प्रदान करती है। उनके अनेक तथ्यों से समीपता स्वीकार करके ही लोक साहित्य अधिक निष्ठावान बनता है। पर हम लोक वार्ता के केवल मौखिक पक्ष को प्रधानता देकर उसके क्षेत्र को हरगिज संकुचित नहीं बनाना चाहते। इसमें जादू-मंत्र, लोक-विश्वास, रीति-रिवाज, मूढ़ाग्रह और लोक नृत्य लोक चित्र व लोकमूर्तियां आदि भी आ जाते हैं जो अपने स्वरूप की प्रधानता रखते हैं। लोक वार्ता की यह अभिव्यक्तियां मिल जुलकर अपनी परंपरा को निभाये चलती हैं। अतः लोक कथा, लोक गीत, पहेलियां, कहावतें, लोक-विनोदादि के साथ अन्य अभिव्यक्तियां लोक वार्ता क्षेत्र की चीजें होने पर भी दूसरे दूसरे विज्ञानों के उपयोग की सामग्री, जुटाने योग्य सिद्ध हुई हैं।

लोक वार्ता में लोक मानस—लोक वार्ता में हम लोक मानस का स्वस्थ शुद्ध एवं आकर्षक रूप देखते हैं। वह और कहीं भी इतना सुरक्षित नहीं रह सका है। मानव की आदिम परिस्थिति से आज तक के विकास की विविध मनो-भूमियां लोक वार्ता द्वारा ही हमारे सम्मुख आती हैं। लोक वार्ता विज्ञान और लोक वार्ता वाङ्मय का शोध पूर्ण ज्ञान तथा अध्ययन एक हितप्रद कार्य माना जाने लगा है। नाना भांति की संस्कृतियों, सभ्यताओं एवं समाज निर्माण में

धरातलों का वास्तविक ज्ञान इसी विज्ञान के द्वारा पूरा हो सकता है। तभी वर्त
मान समय में देश विदेशों में सभी जगह इस विज्ञान की धूम मची हुई है, मनन
और अध्ययन की बाढ़ आ रही है जिसका कुछ विवरण हम इसी ग्रंथ में लोक
कला के संकलन की प्रवृत्तियों में, दे रहे हैं। इसकी तालिका बड़ी विस्तृत है
इस विषय पर डा सत्येन्द्र ने सोफिया बर्न द्वारा नीचे उल्लिखित तीन प्रधा
समूहों के विषय में लिखा है अ अविश्वास और आचरण अभ्यास जो सम्बन्धि
हैं—१ पृथ्वी और आकाश से २ वनस्पति जगत से ३ पशु जगत स ४ मान
से ५ मनुष्य निर्मित वस्तुओं से ६ आत्मा तथा दूसर जीवन स ७ परामानव
व्यक्तियो से [जैसे देवताओं देवियो तथा ऐसे ही अ यों से] ८ शकुनों अप
शकुनों, भविष्य वाणियों, आकाश वाणियों स ९ जादू टोनों स १० रोग
तथा ११ स्थानीय कला से।
ब रीति रिवाज— १ सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाएं २ व्यक्तिगत जीवन
के अधिकार ३ व्यवसाय, धंधा तथा उद्योग ४ तिथियां व्रत तथा त्यौहार
५ खेलकूद तथा मनोरंजन।
स कहानियां गीत तथा कहावतें — १ कहानियां अ जो सच्ची मानकर कही
जाती हैं। ब जो मनोरंजन के लिए कही जाती हैं २ सभी प्रकार के गीत
३ कहावतें तथा पहेलियां ४ पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।

श्री श्याम परमार ने लोकवार्ता का वर्गीकरण इस प्रकार किया है। १
लोक गीत, लोक कथाएं, कहावतें पहेलियां आदि। २ रीति रिवाज
त्यौहार, पूजा, अनुष्ठान, व्रत आदि। ३ जादू टोना टोटके भूत प्रेत सम्बन्धी
विश्वास आदि ४ लोक-नृत्य तथा नाट्य तथा आंगिक अभिव्यक्ति। ५ बालक
बालिकाओं के विभिन्न खेल ग्रामीण एवं आदिवासियों के खेल आदि। इस
तरह से लोक वार्ता [फोकलोर] का क्षेत्र बड़ा विस्तृत, व्यापक एवं असीमित
है। लोक साहित्य उसका एक भाग है। व्यक्ति के विभिन्न आचार विचारों का
लगाव लोक वार्ता से होता है। लोक वार्ता के अन्य सभी विषय लोक साहित्य
के लिए सहयोगी होते चलते हैं। फलतः लोक साहित्य लोक वार्ता का एक अंग
माना जाता है। इस लोक वार्ता साहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से
उतना नहीं होता जितना उसमें सुरक्षित उन परंपराओं की दृष्टि से होता है
जो मृ-विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। इस साहित्य को हम
आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोश कह सकते हैं। इस प्रकार के
लोक साहित्य की व्याख्या करने में जब यह विदित हो कि उनके मूल में किसी
आधिभौतिक तथ्य का प्रतिबिम्ब है जैसे कि आदिम मानव ने सूर्य और अन्धकार
के संबंध को अथवा सूर्य और उषा के प्रेम को अथवा साहचर्य को ही विविध

रूपकों द्वारा साहित्य का रूप प्रदान कर दिया है तो उसका तत्व धर्म गाथा का रूप ग्रहण कर लेता है। तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य का यह अंश जो रूप में प्रकट हो होता है कहानी, पर जिसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वर्णन जो साहित्य सृष्टा ने आदिम काल में देखा था और जिसमें धार्मिक भावना का पुट भी रहा हो। यही धर्म गाथा कहलाती है। इसके अतिरिक्त समस्त प्राचीन मौखिक परंपरा से प्राप्त कथा तथा गीत साहित्य लोक साहित्य कहलाता है। धर्म गाथाएं हैं तो लोक साहित्य ही किन्तु विकास की विविध अवस्थाओं में से होती हुई ये गाथाएं धार्मिक अभिप्राय से सम्बद्ध हो गई हैं। अतः लोक साहित्य के साधारण क्षेत्र से इन्हें हट आना पड़ा। यह धार्मिक अभिप्राय आरम्भ में तो सहज होते हैं, उपरान्त अभीष्ट अर्थ की चेतना से सम्बद्ध हो जाते हैं।[1]

लोक विद्या, लोक वार्ता का एक अंग—लोक वार्ता का एक अंग लोक विद्या भी माना जा सकता है। इसके अन्तर्गत टोने-टोटके से इलाज करना तथा रूढ़ परंपराओं से कार्य करने वाली युक्तियां आती हैं। सांप- बिच्छुओं के झाड़ तथा भूत प्रेतों और डाकण-स्यारियों के मंत्रादि इसी विद्या में आते हैं। कृषि विद्या भी लोकहितोपयोगी विद्या कहलाती है। कृषि कर्म में प्रवृत्त होकर लोक किस प्रकार के आराध्य-व्यापार करता है सो लोक विद्या केवल लोकोपयोगी ज्ञान ही नहीं है पर लोक के नाना भांति के व्यवसाय और उन विषयों की पूजा करने वाली रूढ़ परंपरित विद्या से सबंधित भी है।

प्रादेशिक लोक साहित्य—भारतवर्ष में राजस्थान का प्रांत, लोक साहित्य के क्षेत्र में एक अमूल्य संपत्ति का अखूट खजाना है। इस प्रदेश की संस्कृति ने अद्भुत शौर्य, सौन्दर्य और मानवीय मूल्यों की स्थापनायें की हैं। राजस्थान की प्रकृति ने जो अभाव' प्रदान किये अर्थात मरुस्थल, अकाल, कम वर्षा खेती के साधनों का अभाव आदि आदि सभी तथ्य यहां के निवासियों के मन से उमंग, उल्लास और उत्साह को कम नहीं कर सके। अपनी जीविका उपार्जन के लिए संतोष के पश्चात लगभग सारा अवकाश-काल लोक संस्कृति की उन्मेषपूर्ण गरिमा में ही लगता रहा। यहां के इतिहास ने वीरता की अक्षुण्ण छाप छोड़ी है महिलाओं ने इतिहास को जौहर की ज्वालाओं के अक्षरों से लिखा है, दातार और दानवीरों ने अपने धन को कोड़ियों की तरह बहाया और मरुस्थल को निवास योग्य और जीवन के लिए सक्षम बनाया है। गांव गांव और घर घर में राजस्थानी लोक कला और लोक साहित्य की स्पन्दनपूर्ण थाती के दर्शन मिलते हैं। प्रेम और

1 — ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन- डॉ. सत्येन्द्र

रोमांस की उमंगपूर्ण कथाओं में ढोला-मारू, जलाल बूबना, मारवणी-नाग मन्ती, रिसालू मापा, गुलतान निहालदे, विद्वता एवं बुद्धिमानी के प्रतिरूप राजा भोज, राजा विक्रम एवं काठी गज गठा का कथाएँ लोक गाथाओं के रूप में बगड़ावत और पाबूजी जग योरारमा महाराणा पनिहारी गूर्टियो जलो, सपनी, मोळू जैसे मुक्तक गीतों का अगाध भण्डार राजस्थान के लोक-साहित्य को अटूट बनाये हुए हैं। इन सारे सांस्कृतिक उपलब्धियों में सहज मना भाव, चारित्र्यपूर्ण नीतियाँ और जीवन की नानाविध अनुभूतियों के हीरे माना बिखरे पड़े हैं।

राजस्थान की लोक संस्कृति के आगम्य संग्रह के लिए कुछ विशिष्ट जातियों का योगदान भी कम नहीं है। चारणों का इतिहास एवं काव्य प्रेम भाटों की बिरुदावलियाँ एवं वंशावलियाँ, ढाढ़ी मातीगर राव जोगी ढाढ़ी ढोली, सर्गों के काव्य एवं गीत तथा अनजानी जातियों के अन्य प्रकार के भाषा ने अपनी कंठानुगत परंपरा में असंख्य सामाजिक तथ्यों को सुरक्षित कर रखा है।

लोक साहित्य का महत्व – वर्तमान युग में लोक साहित्य से अनेक रूपों का ज्ञान होता है। हिन्दी साहित्य जगत में साहित्य शब्द के साथ लोक विशेषण लगाकर लोक साहित्य अपना पार्थक्य प्रकट करता हुआ पर्याप्त प्रचलित होता जा रहा है। यह साहित्य धारा उसी तरह से चल निकली है–जिस तरह कि स्वतंत्र राष्ट्र की भावना चंचल की लहरें। इसका विकास मानव मन की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों से हुआ है। इसमें लोक कथा लोक गीत लोक-नाट्य लोकानुरंजन और लोक परंपरा आदि सम्मिलित हैं। इन तत्वों से जन सामान्य के सामाजिक जीवन के आदर्शों की रचना हुई है। यह मौखिक साहित्य ही लोक साहित्य कहलाता है। मनुष्य की बाह्य प्रवृत्तियों से जो विकास होता है वह शिक्षा है। इस साहित्य की आत्मा लोक मानस में निहित है और इसका शरीर सामाजिक बंधन विश्वास से गठित है। लोक सरलतायुक्त है और शिक्षा प्रवचनपूर्ण। परन्तु शिक्षा और सभ्यता में घनिष्ट सम्बन्ध है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में सभ्यता की वृद्धि के साथ स्वाभाविकता का ह्रास होता है। सभ्यता का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और स्वाभाविकता का हृदय से है। बहुत कम ऐसा देखने में आता है जब मस्तिष्क और हृदय में एकता हो। प्रायः हृदय के विषय में मस्तिष्क सच झूठ बोलता है। कितनी बार मनुष्य के हृदय में क्रोध उत्पन्न होता है पर उसका मस्तिष्क शांति और विनय की बातें करता हुआ पाया जाता है। हृदय में कामना रहती है पर मस्तिष्क मुख के द्वारा वैराग्य और त्याग की बातें करता रहता है। हृदय में लोभ रहता है, पर मस्तिष्क निस्पृहता दिखलाता रहता है। बहुत हैं न उच्चकोटि के सत्पुरुष ऐसे होंगे जिसके हृदय और मस्तिष्क में मेल हो

अतएव जिसे आजकल सभ्यता कहते हैं वह एक प्रकार की अस्वाभाविकता है।[१]

अत लोक साहित्य हृदय का साहित्य है, उसमें प्राकृतता के दर्शन होते हैं। उसमें शांति, स्वभाव, आत्मैक्य और आपसी विश्वास के भाव पलते हैं। सहृदयता, सरलता, निर्भयता एवं प्रगाढ़ प्रेम के नमूने लोक साहित्य के सिवाय कहां मिलते हैं? ज्ञान विज्ञान, व्यवहार-वाणी, वेष भूषा आदि वास्तविक व्यापार लोक साहित्य की जान है। लोक साहित्य की प्रगति ही प्रकृति की क्रिया है।

लोक साहित्य विज्ञान और संरक्षण लोक साहित्य की अक्षय निधि चूंकि मौखिक है और सामाजिक अचेतन का अंश है, इसलिये यह अत्यंत आवश्यक है कि उसके संरक्षण का प्रयास अधिकाधिक किया जाय। समाज सापेक्ष लोक साहित्यिक तथ्य काल की चपेट में सबसे पहिले आते हैं। समाज के बदलते मूल्यों के साथ लोक संस्कृति की विकास यात्रा के चिह्न बालू के पदचिह्नों की तरह मिटते रहते हैं। किन्तु उनका सौन्दर्य और उस सौन्दर्य की गरिमा से नवीन संस्कृति का निर्माण भी संभव है। अत यह आवश्यक है कि लोक साहित्य की परम्परा को संरक्षित किया जाय, उसका संग्रह किया जाय और उनसे नि सृत तथ्यों के वैज्ञानिक वर्गीकरण के आधार पर नवीन सामाजिक मूल्यों की प्रस्थापना की जाय। लोक साहित्य ही वस्तुत हमारे सामने एक ऐसा खजाना उपस्थित करता है जो बालोपयोगी शैक्षणिक प्रयोग में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। ग्रिम बन्धुओं की परी कथाओं एव लोक कथाओं के शैक्षणिक महत्व से आज के शिक्षाविद् कभी ऋण मुक्त नहीं हो सकेंगे। हमारे दुर्भाग्य की बात है कि हम अपनी शिक्षा पद्धति में हितोपदेश पंचतंत्र एव उन्हीं की प्रवृत्ति के अनुकूल चलने वाली असंख्य लोक कथाओं का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। विश्व के उन्नततम् देशों ने जो अनुभव सिद्ध सत्य स्वीकार कर लिया है, उससे भी अभी हम बहुत दूर हैं।

नवीन भारतीय साहित्य की आलोचना प्रत्यालोचना में भी एक बात बार बार कही जाती है कि वह परामुखपेक्षी है, उसके साहित्यिक आंदोलन भारतीय भूमि में अंकुरित न होकर विदेशीय ताप से पीड़ित हैं। भारतीय साहित्य को भारतीय होने के लिए अंतत कौनसी साधना करनी है? यही साधना वस्तुत लोक साहित्य की गरिमापूर्ण परंपरा से प्राप्त की जा सकती है जो अपने सौन्दर्य, संगीमत विपुल प्रयोग और मनसचेतना की उष्मा से परिपूरित है।

भारतीय साहित्य की उन्नति अथवा राष्ट्रीय साहित्य के लिए यह अत्यंत आवश्यक बन गया है कि लोक मानस से उद्भूत सहज अभिव्यक्तियों का गहरा

१—कविता कौमुदी २ रा भाग

और विस्तृत क्षेत्र सग्रहीत और संगठित किया जाय ।

लोक वार्ता म सभी मौखिक प्रथा उपासना यथा कथा, गीत, गाथा, नाट, मुहावरे, कहावतें पहेलियां, प्रवाद, आख्यान आदि आदि की गुम्फा एवं अ यम के भिन्न भिन्न स्वरूप है। उन्हें एकत्रित करने की प्रणालियां हैं, वर्गीकरण एव अध्ययन की शैलियां हैं उन्हें आज युद्ध स्तर म, उपयोग म लि जाना है और एक एसी नींव की स्थापना करनी है जिसमें भारतीय समा अपनी आधुनिकतम अभिव्यक्तिया प्रथा-व्यवस्थाओं और विकास सौन्दय निपट भारतीय सिद्ध हो सके ।

भारतीय लोक साहित्य की भूमिका— लोक साहित्य के संरक्षण अथवा लोक कार्य मुख्यत उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो एक ओर मानव-समाज कलात्मक भाव धाराओं को अपनी सपूर्णता म देखना चाहते हैं तथा दूसरी मनुष्य को अपनी प्रकृति एवं सामाजिक परिस्थितियों [देश, काल और जाति के परिप्रेक्ष्य मे समझने का प्रयत्न करते हैं। लोक साहित्य के विषय का महत्ता के रूप म अध्ययन प्रारंभ हो उपरोक्त दो सुनिश्चित मान्यताओं के रास्ते ही होना संभव हुआ। ये मान्यतायें पाश्चात्य देशों में १९ वीं शताब्दी के मध्य से एक स्पष्ट पद्धति के रूप में सामने आने लगी। विलियम जे थॉम्स, गोम्मे बिशप पेरी टेलर फ्रेजर आदि विद्वानों ने मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने का प्रयास किया। लोक साहित्य की स्पष्ट विषयगत धारणा का जन्म मुख्यतया नृ विज्ञान एवं समाजशास्त्र की स्थापना के साथ प्रारंभ हुआ और धीरे धीरे एक स्वतंत्र विषय की ओर अग्रसर होता गया। बीसवीं शताब्दी के दूसरे युग तक पहुंचते हुए पाश्चात्य देशों ने निश्चय ही लोक वार्ता को स्वतंत्र विषय के रूप में स्वीकार कर लिया और उसके पठन-पाठन और अध्ययन संग्रह एवं शोध का कार्य भी प्रारंभ हो गया।

इसी प्रकार यदि भारतीय लोक साहित्य की भूमिका के विषय म सोचें तो सहज ही उसका मूल प्राचीन काल में मिलना प्रारंभ हो जाता है। वेद उपनिषद ब्राह्मण तथा आरण्यकों को हम लोक वाङ्मय अथवा सपूर्ण लोक वार्ता की विधा से निकट पाते हैं साथ ही साथ बुद्ध एवं जैन धर्म के प्रचार प्रसार में लोक वाङ्मय की पृष्ठभूमि के स्पष्ट दर्शन होने लगते हैं। कथा सरित्-सागर बृहत्कथा पंचतंत्र हितोपदेश आदि आदि साहित्यिक कथाओं का मूल्य भी कम नहीं रहा। हमारे देश के मध्ययुगीन साहित्य में लोकपरक मनोभूमि पर सृजित साहित्य का अभाव नहीं मिलता। किन्तु निश्चय है कि 'लोक में प्रचलित मौखिक परम्पराओं को इन युगों में साहित्यिक स्वरूप देने का प्रयास किया गया और उनकी स्वस्थ एव उज्ज्वल अभिव्यंजना को शास्त्रीय काव्य का आधा

नाया गया।

किन्तु लोक साहित्य के जिस अध्ययन शोध की चर्चा यहाँ अभिप्रेत है, इसमें मौखिक साहित्यिक परंपरा को कलात्मक स्वरूप या लिखित रूप देना ही नहीं, अपितु लिखित स्वरूप के माध्यम से मनुष्य को अपने पूर्ण सौन्दर्य कल्पना के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास भी निहित है। ऐसा सर्वांगीण प्रयास भारत में वर्तमान शिक्षा पद्धति की स्थापना के बाद ही प्रारंभ हुआ।

अंग्रेजों के शासन काल में ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी एवं कुछ धर्म के पादरियों ने भी सबसे पहिले भारतीय लोक साहित्य की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। कर्नल टॉड सी ई ग्रोवर, फोर्ब्स, रेवरेंड एस हिस्लप आदि इस क्षेत्र में प्रमुख रहे। इन विद्वानों ने लोक वार्ता का सहारा मुख्यतया भारत के जन-मानस को भली प्रकार समझ लेने के लिए किया इन अध्ययनों का मुख्य प्रयोजन उनकी भारतीय राजनीति का एक अंग रहा।

इसी काल में अहिन्दी क्षेत्रों में लोक वार्ता संबंधी कार्य हुआ। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है अहिन्दी जन पद संबंधी ग्रंथों में १ मिस फ्रेयर का ओल्ड डेक्कन डेज [१८६७], २ डाल्टन का डिस्क्रिप्टिव एथनॉलोजी ऑफ बंगाल [१८७१], ३ श्री ग्रोवर का फाक सांग्ज ऑफ सदर्न इंडिया [१८७१], ४ लाल बिहारी दे का फोक सांग्ज ऑफ बंगाल [१८८३] ५ तोरुदत्त द्वारा लिखित एन्शयंट बेलेड्स एंड लीजेंड्स ऑफ हिन्दुस्तान [१८८१] ६ रिचर्ड टेम्पल महोदय का लीजेंड्स आफ दी पंजाब [१८८४], ७ श्रीमति एफ ए स्टील द्वारा लिखित वाइड अवेक स्टोरीज [१८८५], ८ नटेश शास्त्री का फोकलोर इन सदर्न इंडिया, आर सी मुकर्जी का लिखा ९ इंडियन फाकलोर, १० श्रीमति डेकार्ट का शिमला विलेज टेल्स, ११ सी स्वीन्टर्न का रोमान्टिक टेल्स ऑफ पंजाब, १२ एम कुलक द्वारा लिखित बंगाली हाउस होल्ड टेल्स, १३ शोभनादेवी का ओरियण्टल पर्ल्स १४ रामास्वामी राजू का इंडियन फेबल्स, १५ जी आर सुब्रह्मन्य पंतालु का फोकलोर आफ दी तेलगूज १६ दिनेशचन्द्र द्वारा रचित ईस्ट बंगाल बेलेड्स, १७ आर ई एन्थोवेन के फोकलोर आफ बॉम्बे और १८ फोकलोर नोट्स ऑन ट्राइब्ज एंड कास्ट्स ऑफ बॉम्बे आदि अनेक ग्रंथ इसी क्रम में मिलते हैं।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया [१९०७ ८] की जिल्दों को देखने से ज्ञात होता कि है डा ग्रियर्सन ने कुछ मौलिक गीतों को अनुवाद सहित प्रस्तुत किया है। बहुत से अंग्रेज लेखकों ने अपने फुटकर लेखों में बड़े काम की सामग्री प्रकाशित करवाई है। परन्तु ये सारे ग्रंथ और ये ज्ञान राशि अंग्रेजी में ही प्रकाशित हुई है। इनमें से हिन्दी जनपदों की अपेक्षा अहिन्दी

जनपदा म भारतीय और अभारतीय विद्वानों द्वारा अधिक काम हुआ है। आंग्ल-भाषियों द्वारा लिखे लोक वार्ता संबंधी कार्यों का आज के विद्वान चाहे वैज्ञानिक अन्वेषण कहें अथवा नृ विज्ञान की खोज पर प्रत्यक्ष में तो वह भारतीय लोक जीवन के तादात्म्य की भावना से ही संकलित होना संभव हुआ है। इस तरह से विदेशी लेखकों ने कश्मीरी, नेपाली, राजस्थानी, मैथिली, संथाली आदि विभिन्न भाषाओं तथा लोक साहित्य का विशद एवं समीक्षात्मक अध्ययन किया है। अंग्रेजी लेखकों में प्रमुख सर जार्ज ग्रियर्सन, एच० एन० इलियट, श्री सी० ई० ग्रावर और डा० टर्नर आदि उल्लेखनीय हैं।

इस भांति प्रादेशिक लोक साहित्य संकलन का कार्य और लोक संस्कृति के अध्ययन का उद्देश्य लेकर कई विद्वान बड़ी तेजी से चल पड़े। नूतन ज्योति जगी। देश जगमगा उठा। मिशनरियों के फैलाव और धर्म प्रचारार्थ प्रान्तीय भाषाओं के अध्ययन की आवश्यकता ने प्रान्तीय भाषाओं के मौलिक साहित्य के संकलन को भी प्रेरणा दी इसमें शक नहीं।

हिन्दी लोक साहित्य संकलन का इतिहास — हिन्दी लोक वार्ता साहित्य अभी दो कालों में बांटा जा सकता है। लोक साहित्य संकलन का प्रेरणाकाल और लोक साहित्य संकलन का प्रवृत्तिकाल, यद्यपि एक काल में दूसरे प्रकार का रुचि संकलन कार्य भी हुआ है— जैसे प्रधानतः गीत संकलन की चाहे रही हो फिर भी उस गीत काल नहीं कहा जा सकता क्योंकि उस काल में कथा-कहावतों का भी संकलन हुआ है।

हिन्दी साहित्य संकलन का प्रेरणा काल – (१८८४ से १९४२ तक) इस प्रथमोत्थान भी कहते हैं। बताया जाता है कि बांकीपुर के लाला क्षेमबहादुर मानव ने सन् १८८८ में सुधा बूंद नाम का एक गीत संग्रह तैयार किया था। इस विषय के विद्वानों ने उसके कई प्रमाण खोज लिए हैं। हिन्दी में लोक साहित्य संकलन के उत्थान का यही से प्रथमोत्थान प्रारंभ होता है। पर इसमें गति मति और ज्ञान श्रद्धा की प्रेरणा से ही आया है। इसलिए इसे प्रेरणा काल ही कहना चाहिए इस काल का साहित्य संकलन कई प्रकार की भाषाओं में है। हिन्दी और प्रान्तीय भाषाएं। हिन्दी में स्वर्गीय पण्डित मन्नन द्विवेदी बी० ए० सहमीलन्दर आजमगढ़ की गीत पुस्तक सरवरिया १९१३ में प्रकाशित हुई है। इन्हीं दिनों श्री रामदास बी० ए० के पंजाबी लोक गीत चांद और सरस्वती में प्रकाशित होने प ... भाग ... सम्पादित सम्मेलन १९२५ की पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए हैं। इसी समय पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने बड़ी लगन के साथ इस क्षेत्र में प्रवेश किया। सन् १ ... ६ के बाद उनके कई ग्राम संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनमें से कविता कौमुदी (पांचवां भाग) हमारा ग्राम साहित्य मारवाड़ी गीत संग्रह

आदि प्रमुख हैं ।

सन् १९२८ के आस पास देवेन्द्र सत्यार्थीजी भी इस क्षेत्र में गीत संकलन के लिए कटिबद्ध होकर आये । सत्यार्थीजी भी दूर दूर की यात्रा करते, गीत को लाते और करन्ट इंडिया, मार्डन रिव्यू एवं अन्य हिन्दी उर्दू के पत्रों में छपाते । सत्यार्थीजी ने इस क्षेत्र में त्रिपाठीजी के साहित्यानुज बनकर काय किया । त्रिपाठीजी का क्षेत्र छोटा और तनिक वैज्ञानिक रहा, पर सत्यार्थीजी का कार्य विस्तृत, छितराया हुआ और भावना प्रधान ही रहा ।

राजस्थान में लोक साहित्य संकलन — इस कार्य की गौरव गरिमा को प्रकाश में लाने के लिए कई राजस्थानी प्रवासी भाई भी काम में लगे । कलकत्ता में रामदेवजी चोखानी रघुनाथप्रसादजी सिंहानियां और भगवतीप्रसाद जी खेतान के परामर्श से राजस्थान रिसर्च सोसायटी की स्थापना की । यहाँ एक राजस्थान नाम की शोध पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ और लोक साहित्य को समुचित स्थान मिलने लगा । इस तरह से लोक साहित्य संकलन का यह कार्य राजस्थानी में भी प्रारंभ हुआ ।

लोक साहित्य संकलन प्रेमियों की लालसा रहती है कि चाहे वह स्मृति में हो या पोथियों में, पर वे उन निधियों का पूर्ण संग्रह अवश्य करेंगे । राजस्थान में यह परंपरा भी बहुत प्राचीन काल से चलती आई है । जिसके परिणामस्वरूप हस्त लिखित ग्रंथों में भी लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है । मात्र साहित्य की अपेक्षा लोक साहित्य ही ऐसा गुरु है जो देश एवं जाति की सभ्यता व विकास की उसके जीवन की गतिविधि तथा उसके सांस्कृतिक धरातल के विभिन्न स्तरों की झांकियों के दर्शन करवा सकता है । इन परंपराओं को सुनने – समझने और उनका ज्ञान प्राप्त करने में लोक साहित्य ने अमूल्य योग दिया है ।

राजस्थानी का लोक साहित्य सहज ही अनुपम है । खेद का विषय है कि अभी तक यह पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं आ पाया । मुख परंपरागत होने के कारण इसका रूप परिवर्तित हो रहा है । यह साहित्य बड़ा ही भावपूर्ण तथा जीवन के आदर्शों से परिपूर्ण है ।

सारे राजस्थान भर में इस भागीरथी [लोक साहित्य] की सतत् प्रवाहिनी भाव धारा में अवगाहन करने हेतु अनेक विद्वानों ने पूर्ण योगदान दिया । राजस्थानी भाषा इतिहास और साहित्य के प्रेमी विद्वानों ने काय प्रारंभ किया । राजस्थानी लोक साहित्य का कार्य स्वतंत्र पुस्तकाकार रूप में भी हुआ और राजस्थान से निकलने वाली अनेकानेक पत्रिकाओं में भी निरन्तर यह कार्य प्रकाशित होता रहा । वस्तुतः राजस्थानी भाषा और संस्कृति के पुनरुत्थान के प्रयत्न में लगभग सभी विषय के अध्येताओं ने लोक वार्ता के विषयों को अपने

क्रम में सम्मिलित किया। राजस्थानी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ जनपदों श्री मुरारीदानजी, रामकरणजी आसोपा सूर्यकरणजी पारीक, नरोत्तमदासजी स्वामी, रामसिंहजी, सीतारामजी लाळस आदि ने राजस्थान की प्राचीन साहित्यिक परंपरा के साथ ही साथ लोक साहित्य का कार्य भी किया। जोधपुर रियासत के मुंशी देवीप्रसादजी ने जन-गणना के कार्य के साथ मारवाड़ की जातियों का एक सुन्दर ग्रंथ भी रचा। लोक वार्ता में जातीय अध्ययन एक महत्वपूर्ण कड़ी है और उसमें श्री देवीप्रसादजी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अन्य रियासतों में जनगणना कार्यों के साथ भी कहीं कहीं जातियों को समझने का उपक्रम किया गया। आधुनिक काल में लोक वार्ता के अध्ययन के लिए यह सामग्री अत्यंत महत्वपूर्ण आधार प्रदान कर सकती है।

गीत संग्रह — दूसरे प्रान्तों में रहने वाले प्रवासी राजस्थानियों के लिए मारवाड़ी शब्द रूढ़ हो गया है। चाहे वे बीकानेर के हों या जयपुर के, बाहर वे सब मारवाड़ी नाम से ही प्रसिद्ध है। वहां [बंगाल, बिहार, नेपाल, आसाम, बंबई एवं मद्रास आदि] धन कमाते हैं लाते हैं और अच्छे कार्मों में लगाते हैं। मगर वहां उन लोगों का जीवन सदैव व्यापारिक पचड़ों में ही उलझा रहता है। दूर बैठों के लिए अपनी मातृभूमि और मातृभाषा के लिए बड़ा आदर भाव बना रहता है, वे कहीं अपने लोक साहित्य को वहां बैठे देख लें तो खुशी से उछलने लग जायें—ऐसा मेरा स्वयं का अनुभव है। उन प्रवासी राजस्थानियों तक प्रादेशिक लोकगीत पहुंचाने के मात्र उद्देश्य से राजस्थान में कुछ शिक्षित एवं चतुर बन्धुओं ने गीत संकलन कार्य शुरू भी किया। खेताराम माली ने मारवाड़ी गीत संग्रह मदनलाल वैश्य ने मारवाड़ी गीतमाला निहालचन्द वर्मा ने मारवाड़ी गीत, ताराचंद ओझा ने मारवाड़ी स्त्री गीत संग्रह जगदीश सिंह गहलोत ने जोधपुर से मारवाड़ के ग्रामगीत आदि नामों से लोक गीतों के कई संग्रह प्रकाशित किये। गहलोतजी ज्ञानी एवं लोक साहित्य प्रेमी थे अस्तु उनसे हमें कई पुस्तकें और मिलीं। उन्होंने राजपूताने के त्योहार, मारवाड़ के रस्म, मारवाड़ी कहावतें कृषि कहावतें आदि ग्रंथ भी तैयार किये। इससे पूर्व विश्वेश्वरनाथजी रेऊ भी इस दिशा में कार्य कर रहे थे। विक्रम संवत् १९८१ में रेऊजी की लिखी राजा भोज नामक लोक कथा पुस्तक इलाहाबाद की हिन्दुस्तानी ऐकेडमी से प्रकाशित हुई।

बीकानेर में [वि सं १९८०] राजस्थानी लोक साहित्य के उद्धारार्थ श्री नरोत्तमदासजी स्वामी के उद्योग से राजस्थानी साहित्य पीठ की स्थापना हुई। इसकी सदस्यता के लिए राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी कोई न कोई काम करना आवश्यक रखा गया। इसके प्रमुख कार्यकर्ताओं के नाम इस प्रकार हैं

र रामसिंह तंवर, पंडित विद्याधर शास्त्री पं दशरथ शर्मा, अगरचन्द
टा, भवरलाल नाहटा, मुरलीधर व्यास, रामनिवास हारित, पुरुषोत्तम-
स्वामी, रावतमल सारस्वत, पूणमल गोयन्का, द्वारकाप्रसाद पुरोहित,
र चन्द्र सिंह आदि अन्वेषक काय करने के लिए तयार हुए। इनमें से कई
के सफल अनुसधानकर्ता होकर अग्रणी बने और कुछ लोग केवल राजस्थानी
ा के उद्धारक तक ही आकर रह गये।

उधर सन् १९११ में पिलानी में बिड़ला कॉलेज खुला। तब श्री सूयकरण
पारीक बीकानेर से वहां हिन्दी प्रोफेसर पद पर पहुंच। १९३३ में आपने
स्थानी के सुप्रसिद्ध साहित्य प्रेमी घनश्यामदासजी बिड़ला के द्वारा पिलानी
स्थानी ग्रंथमाला की स्थापना करवाई। इस ग्रंथमाला का पहला ग्रथ
स्थानी वार्ता आपने ही तैयार किया था। इसमें राजस्थानी भाषा की आठ
चीन कहानियां सकलित की गई। आगे चलकर पारीकजी ने परिश्रमपूर्वक
ने दो बीकानेरी घनिष्ट मित्रों श्री ठाकुर रामसिंहजी और नरोत्तमदासजी
मी के सहयोग से पहिले पहल सुरुचिपूर्ण ढंग से २३० लोकगीत सपादित
ये। लोक साहित्य के उन रत्नों से राजस्थान के लोक गीतों का प्रथम भाग
ाशित करवाया। इन दोनों भागों के सपादक त्रय महोदय ने राजस्थानी
तों का विवेचन-विश्लेषण बड़ी वज्ञानिक पद्धति से किया है। प्रस्तावना में लोक
तों के प्रकार, साम्य पारिवारिक व्यक्तियों के विशेषण, उपमान सौन्दय के
मान, पति-शृ गार पत्र अभिवादन आशीर्वाद, वस्तु प्राप्ति स्थान, पदार्थ
, सामग्री, पशुओं के विशेषण, हल चरखा आदि के अनेक पर्याय-समीक्षण
सुन्दर ढग से प्रस्तुत किये हैं। हिन्दी अनुवाद टिप्पणी शब्द-कोश, परि-
ष्ट और सभी सामग्री उत्तम ढग से सुसज्जित की है। अत सूर्यकरणजी
रीक ठा रामसिंहजी, प्रोफेसर नरोत्तमदासजी स्वामी [त्रिमूर्ति] के सद्प्रयत्नों
लोक गीतों का संकलन एक सफल पद्धति से प्रारम्भ हो गया। बीकानेर में
के पदचिन्हों पर चलने के लिए डा दशरथ शर्मा मुरलीधर व्यास अगरचन्द
हटा, दीनानाथ खत्री, भंवरलाल नाहटा रावत सारस्वत बद्रीप्रसाद साक
या और लक्ष्मी कुमारी चूंडावत आदि लोक साहित्य सरंक्षक तैयार हुए।
कानेर का यह लोक साहित्य संरक्षक समुदाय अपने लक्ष्य तक पहुंचने में हर
ह स समर्थ बना रहा।

उधर पिलानी में भी पारीकजी ने बड़ी योग्यता से अपने शिष्यों तथा
त्रों द्वारा एक लोक साहित्य सरंक्षक सम्प्रदाय-सा चला दिया। कन्हैयालाल
हल, गणपति स्वामी पतराम गौड़, बनारसीलाल मुरारका मनोहर शर्मा
ीताराम वर्मा, लालजी मिश्र आदि अनेक सज्जन विद्वान आगे चलकर पोगी

के साथ साहित्यकार निकल और अपना अपनी रुचि के अनुसार लोक साहि
के संकलन कार्य में जुट गए।

इस काल के लोक साहित्य संग्रहकर्ताओं में श्री सूर्यकरण का नाम बड़े मान
के साथ उल्लेखनीय है। इनके संकलित राजस्थान के लोक गीत [दोनों भाग] इ
विषय के प्रतिनिधि ग्रंथों में हैं। विद्वान सम्पादकों ने उक्त ग्रंथों में रा
लोक साहित्य का सम्यक परिशीलन किया है। इन्होंने लोक साहित्य के वि
पक्षों की अच्छी तरह से छानबीन की है। देवी-देवताओं के त्योहारों के, म
न्दाम्पत्य के, दाम्पत्य प्रेम के परम्परागत जीवन के बालिकाओं के पौराणिक ऐ
हासिक एवं प्रमाण लोगों के अन्तर्गत अनेक गीत संग्रह किये हैं। ये गीत संग्र
राजस्थानी लोक जीवन और लोक हृदय का प्रमुख प्रकट करते हैं। इन सं
का अधिक श्रेय पारीकजी एवं स्वामीजी का है। राजस्थानी के गीतों के अ
रिक्त राजस्थान के ग्रामगीत जटमल की गोरा बादल की बात राजस्थानी लोक
गीत आदि आप लोगों की उल्लेखनीय लोक साहित्य संबंधी संपादित कृतियां हैं।
आपने राजस्थानी के अनेक लोक गीतों के महत्वपूर्ण ग्रंथों के साथ विस्तृत प्रस्ता
वनाओं के सहित कृष्ण रुकमणी री वेलि और ढोला मारू रा दूहा जैसे लोक
काव्यों का सफल संपादन भी किया है।

इन्हीं दिनों राजस्थानी भाषा की एक शोधपूर्ण पत्रिका की आवश्यकता
इन्हें [पारीकजी] बहुत दिनों से अनुभव हो रही थी। संवत् १९९२ में ज
राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता की ओर से राजस्थान त्रैमासिक पत्र कि
रसिंहजी बार्हस्पत्य के संपादकत्व में निकलना आरंभ हुआ तब आपने बड़े उत्सा
से स्वागत किया। पर राजस्थान पत्र अभाग्यवश दो वर्ष चलकर बन्द हो गया
आप अन्य हिन्दी के पत्रों में राजस्थानी लोक गीतों के विभिन्न प्रकार के निबं
भेजते रहे। आखिर सोसाइटी के संचालक महोदय संपादन सम्बन्धी सारी जिम्म
दारी पारीकजी को देकर पुनः पत्र निकालने को तैयार हुए। पारीकजी ने ए
सुदृढ़ परामर्श मंडल बनाया। जिसमें ओझाजी दीवान बहादुर हरविलास
सारड़ा महाराजकुमार रघुवीरसिंहजी मुनि जिनविजयजी बाबू क्षिति
मोहन सेन जैसे प्रकांड विद्वान सम्मिलित हुए। पत्रिका राजस्थानी नाम धार
करके बड़ी सजधज के साथ निकली। परन्तु दुख का विषय है कि प्रथमां
छपने के पूर्व ही १६ फरवरी, १९३९ को पारीकजी का देहान्त हो गया। पत्रिक
तो जैसे तैसे निकलती रही पर राजस्थान रिसर्च सोसाइटी का नवीन सगठ
राजस्थानी साहित्य परिषद कलकत्ता के नाम से कर दिया गया। इस तरह ह
लोक साहित्य की लहर सारे राजस्थानी साहित्यिकों एवं राजस्थान भर में एक
बार फैल गई। राजस्थान साहित्य सम्मेलन से राजस्थान साहित्य और अखिल

भारतीय चारण सम्मेलन से चारण नाम की लोक पत्रिकाएं भी निकलनी शुरू हुई। इस तरह से राजस्थान में लोक साहित्य संकलन का कार्य मनोयोग से हिन्दी के माध्यम द्वारा प्रकाश में आने लगा। जयपुर में मुनि जिनविजयजी, उदयपुर में मोतीलालजी मेनारिया और जनार्दनारायजी आदि महानुभाव संकलन कार्य में तल्लीन हुए। अजमेर में जगदीशप्रसादजी माथुर एवं ऋषिदत्तजी मेहता भी क्रमश अपने अपने पत्रों में [मीरा और राजस्थान] लोक साहित्य को स्थान देने लगे। राजस्थान की पत्रकारिता में लोक साहित्य हमेशा काफी स्थान प्राप्त करता रहा।

लोक साहित्य सकलन का प्रवृत्तिकाल— [सन् १९४३ से १९६५] इसे द्वितियोत्थान भी कहते हैं। इस काल में गीत की अपेक्षा कथा-वार्ता, कहावतें, मुहावरे पहेलियां प्रवाद और आलोचनात्मक लोक वार्ता साहित्य सम्बन्धी प्रबन्ध-पुस्तकों का प्रसार हुआ। उक्त काल में गीत सग्रह दो प्रकार से सकलित किये गये १ शास्त्रीय अनुशीलन सहित और २ लोक गीतों पर भावात्मक लेख सग्रह। उपरोक्त विषयों पर राजस्थान में भी काफी कार्य हुआ। देश भर की पिछड़ी प्रान्तीय भाषाए आगे आई और लोक सगीत, लोक नृत्य लोक-नाट्य लोकोत्सव, लोकानुरंजन लोक कला लोक-खयाल, लोक-खेल आदि विषयों पर शोध-निबन्ध एवं ग्रंथ लिखे जाने लगे। अनेक विद्वानों ने इस कार्य को निश्चित दिशा की ओर बढ़ाया। लोकतंत्रीय सरकार ने भी इसको पूरा प्रोत्साहन दिया।

लोक साहित्य संस्थाओं की स्थापना — सारे देश में लोक साहित्य सकलन प्रवृत्ति काल के सुन्दर आसार बड़े महत्वपूर्ण ढग से दिखलाई दिये। लोक संस्कृति के अध्ययन और लोक साहित्य संकलन के उद्देश्य को लेकर अनेक जनपदीय संस्थाओं की स्थापनाएं अत्यन्त शीघ्रता के साथ शुरू हुई। ब्रज में ब्रज लोक साहित्य मंडल, बड़ौदा में ओरियन्टल इंस्टिट्यूट, गढ़वाल में गढ़वाली साहित्य परिषद् बुन्देलखंड में लोक वार्ता साहित्य परिषद्, भोजपुर में भोजपुरी लोक साहित्य परिषद्, पूना में भंडारकर रिसर्च इंस्टिट्यूट, बघेलखंड मे रघुराज साहित्य परिषद् मालवा में मालव लोक साहित्य परिषद् राजस्थान में भारतीय लोक कला मंडल एव रूपायन संस्थान आदि संस्थाएं अपने इसी तात्पर्य को लेकर आगे बढ़ीं। द्वितीयोत्थान के प्रथम दशक में राजस्थानी साहित्य की खोज करने वाली कुछ प्रमुख संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं —

अखिल भारतीय राजस्थानी साहित्य सम्मेलन — इसका मुख्य कार्यालय जोधपुर म था। सुमनेश जोशी के प्रधान मंत्रित्व में इसकी देख रेख होती थी। संवत् २००१ में इसका प्रथम अधिवेशन पश्चिमी बगाल दिनाजपुर [जो अब पाकिस्तान में

आ गया है] य ठाकुर रामसिंहजी के सभापतित्व में हुआ था। सम्मेलन का अब अस्तित्व नहीं है।

२ उदयपुर की हिन्दी विद्यापीठ का शोध विभाग—यह संस्था राजस्थानी साहित्य पर ठोस काम कर रही है। इसका उद्देश्य प्राचीन साहित्य एवं लोक साहित्य का प्रकाशित करना है। यह संस्था अभी भी कार्य कर रही है।

३ राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता—इसने प्रारम्भ में बहुत ठोस कार्य किया। गीतों, कहावतों, कहानियों आदि का विस्तृत संग्रह तथा पत्रिका [राजस्थानी] और पुस्तक माला का प्रकाशन किया। इस संस्था में गत वर्षों से कार्य नहीं हो रहा है।

सूर्यकरण पारीक स्मारक समिति—इसकी स्थापना स्वर्गीय पारीकजी के मित्रों प्रेमियों और शिष्यों की सहायता से हुई थी। पारीकजी के अधूरे छोड़ हुए कार्य को आगे बढ़ाया जा रहा था। लोक गीत और लोक कथाओं के कई प्रकाशन हुए हैं। अब समाप्त प्राय है।

सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टिटयूट बीकानेर—इसकी स्थापना बीकानेर राज्य के प्रमुख विद्वानों द्वारा नवम्बर सन् १९४४ में की गई थी। इसके प्रथम अध्यक्ष ठाकुर रामसिंहजी हुए थे फिर डा. दशरथ शर्मा और अब श्री माहदाजी हैं। इसमें अन्य कार्यों के साथ लोक साहित्य पर नीचे लिखे काम भी हुवे हैं क. विशाल राजस्थानी मुहावरा कोष। ख. राजस्थान भारती नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन। ग. प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रंथों का अनुसंधान और संपादन एवं प्रकाशन। बाहर से ख्याति प्राप्त विद्वानों को बुलाकर उनसे शोधपूर्ण भाषण करवाना। राजस्थान क्षेत्र के पांच सौ लोक गीतों का संग्रह भी किया जा चुका है और सात सौ लोक कथाएं संग्रहित की गई हैं। इक्कीस प्राचीन खोज पुस्तकों के साथ राजस्थान के नीति-दोहों राजस्थानी व्रत कथाएं राजस्थानी प्रेम-कथाएं, चवायण मढूली आदि लोक साहित्य की पुस्तकें भी विद्वान लेखकों द्वारा लिखवाकर प्रकाशित करवाई हैं। यह संस्था अभी भी कार्य कर रही है।

६ राजस्थानी साहित्य पीठ बीकानेर—राजस्थानी साहित्य का अध्ययन तथा संग्रह करने वाली संस्थाओं में यह सब प्रथम है। इसने राजस्थानी कहावतों, मुहावरों लोक गीतों आदि का विशाल संग्रह किया है। अब यह संस्था अस्ति में नहीं है।

७ राजस्थानी साहित्य पीठ कलकत्ता—उपरोक्त राजस्थानी रिसर्च सोसा कलकत्ता का ही इस नाम से नवीन संगठन हुआ। इसने राजस्थानी शोध नि धमाला का प्रकाशन प्रारंभ किया था। अब अस्तित्व में नहीं है।

भारत में लोक कथा संकलन कार्य—लोक कथा शब्द उन लोक प्रचलित कथा नकों के लिये काम आता रहा है जो मौखिक अथवा लिखित परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी क्रमशः उपलब्ध होते रहे हैं। देश में कथाओं और आख्यायिकाओं का महान वाङ्मय लोक कथाओं की ही साहित्यिक देन है। इदावती, लीलावती, पद्मा-वती, कुवलय जैसी कथाएं लोक कहानियों का साहित्यिक रूपान्तर है। वर्तमान समय में विद्वान लोगों का ध्यान अपढ़ तथा असभ्य जनसमूह के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर आकर्षित हुआ है, तभी से इन लोक कथाओं की मौखिक परंपराओं का संकलन, अध्ययन और संपादन होने लगा है। सन् १८५९ में जर्मन विद्वान बेनीफी का कहना था कि संसार में व्याप्त लोक गाथाओं का मूल उद्गम स्थान भारत देश ही है। इसके बाद ब्लूम फील्ड, टॉनी और पेंजर आदि पाश्चात्य सज्जनों ने इस देश की कथाओं का गंभीर अनुसंधान किया। डा० वेरियर एल्विन के ग्रंथ फोक टेल्स ऑफ महाकौशल की भूमिका के आधार पर नार्मन ब्राउन ने बताया है कि भारत तथा उनके पड़ोसी देशों में तीन चार हजार लोक कथाएं प्रकाशित हो गई हैं। ब्लूम फील्ड ने तो भारतीय कथाओं में प्रचलित कथानक और अभिप्रायों [मोटिफ्स] का बड़े सुन्दर ढंग से अनुशीलन किया है। जिससे भारतीय लोक कथाओं का बड़ा महत्व बढ़ा है। परन्तु आजकल के विद्वान कथानकों की उद्भव भूमि के पक्ष में नहीं रहे। मगर अध्ययन की दृष्टि से भारत वर्ष बहुत ही महत्वशाली देश है। यहां संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं में अनेक मध्यकालीन लोक कथाओं का लिखित साहित्य मिलता है। तभी तो १९ वीं शताब्दी के विद्वानों ने लोक कथा का सबसे बड़ा उत्स भारत को बताया है। अतः भारतीय लोक कथाओं ने विश्व भर में अपना स्थान स्थापित कर लिया है। आज तो महाभारत, पंचतंत्र, जातक और कथासरित्सागर के सिवाय जन साहित्य का लोक कथा भंडार भी खुलता जा रहा है। शाक्तों पाशुपतों नाथों, वैष्णवों, और सौगतों के ग्रंथों का प्रकाशन क्रमशः होता जा रहा है।

राजस्थान में लोक कथाएं—राजस्थान में लोक कथा को वात या वारता कहा जाता है। रचना प्रकार की दृष्टि से ये वातें गद्य पद्य और गद्य-पद्य मिश्रित रूपों में मिलती हैं। साथ ही साथ कथाओं की दो अन्य समानान्तर धाराएं राजस्थान में प्रवाहित होती रही हैं। एक धारा तो उन कथाओं की थी जिनको लिपिबद्ध स्वरूप मिला और दूसरी धारा वह थी जो यहां के निवासियों के कंठों में ही जीवित रही, अर्थात् ये कथाएं केवल कही व सुनी जाती रहीं। उन्हें किसी ने लिखने का प्रयत्न नहीं किया। लोक कथाओं के यहां अखंड खजाने भरे हैं। इनको लिपिबद्ध कर लेने की परंपरा यहां प्राचीन काल से चलती आई है।[1]

विविध वार्ताओं के सफरों सग्रह राज्य पुस्तकालयों, ज्ञान उपासरों एव इधर उधर पुस्ता लोगों के पास सर्वत्र मिल जाते हैं। राजस्थान मा मारवाड़ म कई लोग कथा कहने का व्यवसाय भी करते हैं। ये अपनी वश परपरा से लोक कथाओं द्वारा निजी आश्रयदाताओं अथवा यजमानों का मनोरंजन करते आये हैं। ऐसे व्यक्तियों में राव भाट, रावल मोतीसर ढाढ़ी ढोली आदि कहानी सुनाने की सुन्दर कला क मूल रूप में प्राप्त किये हुए हैं। ये लोग एक कथा के साथ अनेक कथा कह जाते हैं। बीच में कथा प्रसंग सुभाषित के रूप मे भांति भांति के छद एवं दूहों [दोहा] का कावा देते हैं। नाना विधि की अभिनयता और ध्वनियों से मजा करके बात कहते हैं। जिसको सुनकर श्रोता लोग मंत्र मुग्ध हो जाते हैं। सध्या समय सदैव मोहल्लों के लोग इकठ्ठे होकर भी कहानी कहते हैं और घरों में बच्चों को बहलाने क लिये बुढ्ढी नानी दादियां इस कथा प्रथा को निभाये चलती हैं। अत राजस्थान में मौखिक कथाओं का भरपूर भंडार है।

राजस्थानी में लोक कथा सग्रह और प्रकाशन – राजस्थान में १४ वीं शताब्दी के गद्यांश मिलते हैं। जिनमें छोटी छोटी कथाओं के अनेक 'बाला व बोध' जैन आगमों की एक रचना परिपाटी है। उनमें से किसी एक की कुछ धार्मिक लोक कथाए मुनि जिनविजयजी द्वारा सपादित की गई हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने १५ वी सती की २५ ३० जम रासा की लोक कथाएं मरु भारती, शोध पत्रिका राजस्थान भारती वरदा कल्पना आदि पत्रों में प्रकाशित करवाई हैं। लगभग १७ वीं शताब्दी की दो वार्तें, खीची नींबा गगावत रो दुपहरो, और बात बणाव का संपादन करके श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने राजस्थान पुरातत्व मदिर से प्रकाशित करवाई हैं। नाहटाजी ने भी ऐसे कई वर्णन नागरी प्रचारिणी सभा काशी को प्रकाशनार्थ दिये हैं।

१७ वी शताब्दी से राजस्थान में सम्राट अकबर के समय से ख्यातों वार्तों का अधिक प्रचलन होता रहा है। मगर वार्तो की अधिक हस्तलिखित प्रतियां १८ वी १९ वीं शताब्दी की ही मिलती है। अत ख्यातों स ही वार्तें बनती हैं। इस विषय क लिये राजस्थानी शोध सस्थान जोधपुर की परंपरा पत्रिका का का बात विशेषांक' [१९५८] द्रष्टव्य है। उसमें वार्तों के तीस वर्गीकरण लिखे हैं। श्री रावत सारस्वत ने अपने निबंध राजस्थानी का बात साहित्य में कई प्रकार स वर्गीकरण किया है। उनका इसी विषय पर दूसरा लेख सयुक्त राज स्थान में छपा है।

व्रत कथाओं क सम्बन्ध में श्री नाहटाजी ने एक लेख लिखा था। इस विषय म श्रीमती चंपादवी राजगड़िया [कलकत्ता] की १२ महीनों का त्यौहार मासिक पुस्तक भी दृष्टव्य है। श्री उदयवीर शर्मा की लेखमाला राजस्थान व्रत

कथाए, व रावर वरवा में प्रकाशित हो रही हैं। श्री मोहनलाल पुरोहित की व्रत कथा संकलन भी इसी कड़ी की महत्वपूर्ण प्राप्ति है। कहावतों की सैकड़ों कहानियां पंडित श्रीलालजी मिश्र की लेखमाला में मरुभारती से प्रकाशित होती रही हैं। इस तरह की कहावती कहानियों के दो लेख इस प्रबंध लेखक के भी वरदा नामक शोध पत्रिका में छपे हैं। दोहे आदि पदों से सम्बन्धित लोक प्रवाद-रूप कथाए पर्याप्त मिलती हैं। जिनमें डॉ कन्हैयालाल सहल ने छोटे छोटे उपा मानों के दो ग्रंथ प्रकाशित करवाये हैं। श्री मनोहर शर्मा ने भी इनके चार दर्जन अपनी वरदा पत्रिका में प्रकाशित किये हैं। राजस्थानी कहावतों का उद्‌गम और राजस्थानी लोक कथाए नाम से दो लेख भी लिखे हैं। जिनके पांच सौ लोक मुख पर अवस्थित कथाओं का निर्देशन भी किया है। श्री अगरचन्द नाहटा ने वाग्विलास कथा संग्रह नाम से एक निबंध प्रकाशित करवाया है। उन्होंने लिखा है कि राजस्थानी बातों के पचासों गुटके मैंने देखे हैं। उनमें से कई प्रतियों में तो ६०-७० और १०० कथाए मिलती हैं।[1]

राजस्थानी कथाओं का प्रथम प्रकाशन – राजस्थान के प्राचीन साहित्यकारों ने सकड़ों लोक कथाओं को लिखकर सुरक्षित रखा है। पर मुद्रण युग में पहले पहल बम्बई के प्रथम प्रकाशक खेमराज श्री कृष्णदास ने 'रतना हमीर' की बात और 'पन्ना वीरमदे' की बात को प्रकाशित किया। संवत् १९५६ में पंडित किशनलाल श्रीधर [शिवलाल] ने अपने ज्ञान सागर छापेखाने से 'फलक दरियाव' की कथा प्रकाशित की थी। आज से ३५ वर्ष प्रथम श्री घनश्यामदासजी बिड़ला की प्रेरणा से श्री सूर्यकरणजी पारीक ने राजस्थानी बातों का कठिन शब्दों के अर्थ व टिप्पणियों के साथ सुसंपादित संस्करण प्रकाशित किया था। उनके पश्चात् वहीं से डॉ कन्हैयालाल सहल ने चौबोली नामक राजस्थानी की एक बड़ी लोक कथा का संपादन किया। इसमें 'बींझे बींजे री बात' 'राजा मान्धाता री बात' 'सूर अर सतवादी री बात' आदि कई उप-कथाएं भी प्रकाशित हुई हैं। स्वर्गीय पारीकजी के ग्रंथ राजस्थानी बातों में भी जगदेव पवार, जगमाल मालावत, और वीरमदे सोनगरा आदि नामों से ७ लोक कथाएं प्रकाशित हुई हैं। श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने बातों के दो संग्रह और राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर से छपवाये हैं। इन्होंने राजस्थानी, राजस्थान भारती, और राजस्थानी ग्रन्थ-माला में हस्तलिखित प्रतियों से संपादित कर बहुत सी बातें प्रकाशित करवाई हैं। जिनकी सूची निम्न प्रकार है। १ राजा भोज माघजी पंडित और डोकरी री बात, २ बात देपालदे री, ३ बात साहूकार रे बेर री, ४ बात पसमा ओढणी री, ५ फोफानंद री, ६ बिणजारे बिणजारी री, ७ सयणी चारणी

---

[1] वरदा लोक साहित्य विशेषांक पृ १०१

री , ८ सातम् सोम री , ९ दूवे आधावत री , १० विमनजी बैगरण री आदि । आपने सैकड़ों वार्तों की सूची भी प्रमाणित करवाई है । ऐसी सूची – (३७० राजस्थानी वार्तों की) रानी लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत न भी अपन मांजल रात ग्रंथ में प्रकाशित की है । इन्होंने मूमल, गिर ऊंचा ऊंचा गढ़ां, फ र चकवा वात , हुंकारो दो सा आदि कथा ग्रंथों में लोक कथाएं लिखी हैं। श्री अगरचद नाहटा ने वरदा , जन-जगत, मरु-ज्योति आदि पत्र पत्रिकाओं म राजस्थानी लोक वार्तों व कथाओं को प्रकाशित करवाया है । उपरोक्त महाशय न अपन भतीज श्री भवरलाल नाहटा से जैन कवियों के लोक कथाओं सबंधी रासों का सार लिखवाकर प्रकाशित करवाया है। श्री रावत सारस्वत ने अपनी मरुवाणी पत्रिका में अनेक लोक कथाओं को प्रकाशित किया है । श्री बद्री प्रसादजी साकरिया ने भी उपरोक्त पत्रिका में लोक कथाएं भेजी हैं । श्री पुरुषोत्तमदास मेनारिया का राजस्थानी लोक कथाओं में पूर्ण सहयोग है। उनका राजस्थानी लोक कथा नामक लेख आजकल (मई १९५४) के लोक कथा अंक में प्रकाशित हुआ है जिसके अनुसार इन्होने अपने पास ५०० अनेक कथाओं का संग्रह बताया है । इनके ४ कथा सग्रह जयपुर से और एक ' राजस्थानी लोक कथाएं ' आत्माराम एड सन्स दिल्ली से प्रकाशित हो चुके हैं । श्री कन्हैयालाल सहल ने लोक कथाओं के सबंध में बहुत ही कार्य किया है । सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक उपाख्यानों के दो भाग और प्रकाशित करवाये हैं । इनकी राजस्थानी लोक कथाएं और वीर गाथाएं नाम की दो पुस्तकें वानर प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित हुई हैं। विशेषकर राज स्थानी लोक कथाओं के मूल अभिप्रायों पर ' नटी तो कही मत नामक पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है। आप अभिप्रायों [मोटिफ्स] के सबंध में व्यापक रूप से अध्ययन कर रहे हैं । जो लोक कथाओं के लिये विशिष्ट प्रयत्न है । राजस्थानी लोक साहित्य के विविध अंगों को प्रकाश में लाने वाले कर्मठ साहि त्यिक श्री मनोहर शर्मा का नाम भी लोक कथाओं के प्रसग में उल्लेखनीय है । इन्होंने राजस्थानी लोक कथाओं पर कई महत्वपूर्ण निबंध प्रकाशित किये हैं और गीत कथा नाम से प्राचीन ९ वीरों की शौर्यपूर्ण कथाए लिखी हैं । इन पंक्तियों के लेखक का भी एक कथा गीत निबंध बसमल ओळणी नाम से मरुवाणी [संवत् २०१२] में प्रकाशित हुआ है। और बटोही नाम का एक कथा काव्य मारवाड़ी भाव भरने की प्रथा पर लिखा है । कई मौलिक कथाओं को श्री मुरलीधरजी व्यास ने भी हिन्दी रूपान्तरित किया है । इन के साथ श्री मोहन लालजी प्रोहित न भी लोक कथा के सग्रह तयार किये हैं। मोहनलालजी स्वतंत्र रूप से भी लोक कथा कार्य कर रहे हैं। श्री मनोहर प्रभाकर एवं यादवेन्द्र चन्द्र शर्मा की दृष्टि भी इस क्षेत्र की ओर मुड़ी है ।

हिन्दी और गुजराती के क्षेत्रों से भी कुछ राजस्थानी कथाओं के संग्रह ग्रंथ निकले हैं। श्री निरंजन वर्मा और जयपाल परमार ने लोक कथा ग्रंथावली से प्रकाशित होने वाले 'देश देश की लोक कथाओं' का पांचवा भाग राजस्थानी वार्ता के नाम से भारतीय साहित्य संस्थान लिमिटेड, अहमदाबाद से प्रकाशित करवाया है। सौराष्ट्र के अग्रणी लोक साहित्यिक श्री झवेरचंद मेघाणी ने 'सौराष्ट्र नीं रसधार' के पांच भागों में तथा अन्य गुजराती ग्रंथों में राजस्थानी लोक कथाओं को गुजराती में प्रकाशित करवाया है। पूना से श्री नारायण दास धूत राजस्थानी वीर नाम की पत्रिका निकालते हैं जिसमें राजस्थानी विद्वानों के लोक साहित्य संबंधी लेख छपते हैं। इस प्रबंध के लेखक ने भी अपनी प्रकाशित पुस्तक ग्होयी (संवत् २०१४) में बाणी को वैर, रोही रौ रौंछ, फोगसी रौ न्याव, काछबो, फदड़पच आदि लोक कथाएं संकलित की हैं। ५० लोककथाओं की पुस्तक 'धर की रेल' को लेखक शीघ्र ही प्रकाशित करवाने वाला है। श्रीकान्त व्यास ने राजस्थानी लोक कथाएं नामक पुस्तक किताब महल इलाहाबाद से प्रकाशित करवाई है। यह भारतीय लोक कथामाला की तीसरी पुस्तक है। राजस्थानी प्रसिद्ध लोक कथाओं पर सकड़ों ख्याल भी लिखे जा चुके हैं। जिनके संबंध में श्री मनोहर शर्मा एवं श्री अगरचन्दजी नाहटा के निबंध भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर की लोक कला नामक पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। इनके अलावा आजकल कुछ उदीयमान लोक कथा संग्राहक हमारे ध्यान में और आये हैं। इनमें सर्व प्रथम श्री गोविन्द अग्रवाल हैं। इन्होंने मरु भारती में क्रमशः १५०० लोक कथाएं 'राजस्थानी लोक कथा कोश' नामक शीर्षक से प्रकाशित करवाई हैं और अभी शीर्षक चालू है। श्री मोतीसिंह जी राठौड़ भी कथाएं लिखते हैं। श्री चन्द्रदान चारण, श्री सूर्यकरण पारीक और श्री मूलचन्द प्राणेश आदि महानुभाव भी भारतीय शोध संस्थान बीकानेर में लोक साहित्य अनुसंधान के साथ कथा अन्वेषण भी कर रहे हैं।

राजस्थान में लोक वार्ता साहित्य के संग्रहालय—बीकानेर राजकीय अनूप संस्कृत पुस्तकालय में अच्छा लोक साहित्य उपलब्ध होता है। जैन लोक साहित्य का सबसे बड़ा संग्रह 'अभय जैन पुस्तकालय' बीकानेर है। बीकानेर के ज्ञानभंडार में भी लोक कथाओं के कई गुटके मिलते हैं। उदयपुर में सरस्वती भंडार, कलकत्ता में राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, बिड़ला पुस्तकालय, बंगाल हिन्दी मंडल राजस्थान पुरातत्व मंडल जोधपुर जयपुर, राजस्थान शोध संस्थान उदयपुर आदि लोक वार्ता साहित्य के अच्छे संग्रहालय हैं। गुजरात और जसलमेर के उपासरे भी लोक साहित्य के बड़े संरक्षक हैं।

हिन्दी में जनपदीय कहावतों का प्रकाशन — लोकोक्तियों के अन्तर्गत मुहावरे

अनुभवप्रसूत सर्विविक शब्द योजना और पहेलियाँ आती हैं। राजस्थानी विद्वानों ने उनके भिन्न भिन्न रूपों का पता लगाकर मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन किया है। राजस्थानी कहावतों के सकलन की निसन्देह सफलता है। डा० श्री कन्हैयालाल सहल एक ऐसे प्रामाणिक विद्वान हैं कि उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनकी सकलित कहावतों में राजस्थान के जन जीवन तथा विचारों पर गहरा प्रकाश पड़ता है। उन्होंने अपनी पुस्तक का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंश (डॉ सहल द्वारा ही लिखी) ९२ पृष्ठों की भूमिका मे लिखा है। जिसमें कहावतों की पृष्ठभूमि पर अत्यन्त व्यापक रूप में प्रकाश डाला है। वेद, उपनिषद, सस्कृत साहित्य इसे लेकर विदेशों की कहावतों के विकास का उल्लेख भी इस भूमिका में है। राजस्थान के साहित्य के संबंध में जो मूल्यवान शोध कार्य हो रहा है, यह ग्रंथ उसमे एक मूल्यवान देन है।

सहलजी की हाल ही में यह पुस्तक [राजस्थानी कहावतें] अर्थ सहित बंगाल हिन्दी मडल कलकत्ता द्वारा प्रकाशित हुई है। जिसमें २१०१ विवेचनपूर्ण कहावतें संकलित हैं। इससे पहले राजस्थानी कहावतों पर एक शोधपूर्ण प्रबंध भी इन्होंने लिखा था। जिस पर राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें डाक्टरेट की उपाधि भी प्रदान कर दी गई। वह ग्रंथ (१९५८) में भारतीय साहित्य मंदिर दिल्ली से छपा था। सहलजी ने इस विषय की पूरी छान बीन करने की ठान रखी है। प्रोफेसर नरोत्तमदासजी स्वामी मुरलीधरजी व्यास द्वारा सपादित संवत् २००६ में राजस्थानी कहावतों के दो बड़े संकलन राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता ने प्रकाशित किये हैं। इनसे पूर्व कहावतों पर जो ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं वे केवल गिनती मे ही हैं। जोधपुर के श्री जगदीशसिंहजी गेहलोत द्वारा संकलित राजस्थान की कृषि कहावतें, श्री लक्ष्मीलाल जोशी द्वारा संकलित मेवाड़ की कहावतें श्री रतनलाल मेहता की मालवीय कहावतें, श्री मेनारिया द्वारा संग्रहित राजस्थानी मीणों की कहावतें आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मालवी वाणी में श्री बसन्तीलाल बंग न संकलित सामग्री में लगभग २ हजार से अधिक लोकोक्तियाँ और एक हजार मुहावर संग्रह किये हैं।[1] और श्री ओमप्रकाश अनूप ने मालवी लार पहेली पर निबंध लिखा है। राजस्थानी में भी ऐसे बहुत से सग्रह मिलते हैं।

प्रबन्ध काम या द्वितीयोत्थान के दूसरे दशक में राजस्थानी साहित्य की खोज करने वाली सस्थाएं व पत्रिकाएं — आजकल राजस्थान के हर एक शहर में विद्वानों द्वारा लोक साहित्य संग्राहक संस्थाएं प्रारम्भ होने लगी हैं। उन संस्थाओं के कार्यकर्ता सब प्रथम एक शोध पत्रिका निकालकर सस्था का नाम सार्थक

[1] लोक कला निबंधावली भाग २

करते हैं। इस तरह से कई लोक संस्थाएं लोक पत्रिकाएं निकाल रही हैं। आय वृद्धि करने, संस्था चलाने और अपनी विद्वत्ता एवं साहित्य प्रेम का परिचय देने के लिये राजस्थानी कर्मठ विद्वान अपनी अपनी पत्रिकाओं को लोक साहित्य से ही सपूर्ण करते हैं। वे अपने देश वासि की सभ्यता के विकास की उनके जीवन की गति विधि की और उनके सांस्कृतिक धरातलों के विभिन्न स्तरों की झांकियां मौखिक साहित्य में उपलब्ध कर आनन्द मग्न रहते हैं। वे ही स्वान्त-सुखाय सेवा करते हैं और अपने इस परमहित रंजक साहित्य को विलुप्त होने से बचाते हैं। ऐसी राजस्थानी आधुनिक लोक साहित्य सस्थाए ये हैं

१ - भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर — इस संस्था को हम बहुमुखी लोक प्रवृतियों के कारण प्रथम स्थान देते हैं। इसकी मुख्य प्रवृतियों में खोज विभाग सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रवृति है। इसने लोक गीतों के संगीत पक्ष को लेकर विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक कार्य किया है जो संभवत राजस्थान में ही नहीं भारतवर्ष में भी प्रथम गिना जा सकता है। यहां लक गीतों की प्रमुख ध्व-नियों को ध्वनि संकलन यन्त्र द्वारा सकलित करते हैं और खोज की हुई एकत्रित मूल्यवान सामग्री से, फोटो फिल्म विभाग के कर्मचारी उस सामग्री के मूर्त रूप को स्थिर और चलचित्रों द्वारा अंकित करते हैं। यहीं से लोक कला नाम की पत्रिका निकलती है। यह अपने विषय की एकमात्र भारतीय पत्रिका है। इसमें लोक कला संबधी खोज और अध्ययन पूर्ण सामग्री रहती है। यहां से करीब डेढ़ दर्जन लोक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से राजस्थान के लोक सगीत, राजस्थानी लोकोत्सव, राजस्थानी लोक - नृत्य, राजस्थानी लोक-नाट्य, राजस्थान के लोकानुरंजन, लोक कला निबधावली [भाग १, २, और ३] राजस्थानी लोक जीवन चित्रमय, और राजस्थानी लोक गीतों का स्वर सौन्दर्य आदि मुख्य हैं। सस्था अभ्युदय के उच्च आसन पर आसीन है।

२ राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुर — इस संस्था से मरुवाणी [सवत् २०१०] नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है, जिसमें लोक कथा, लोक-गीत और कहावतें मुहावरे आदि प्रकाशित होते हैं। वास्तव में लोक साहित्य और राजस्थानी भाषा का प्रचार करने में इसने सबसे अधिक कार्य किया है। संस्था सचालक एव पत्रिका संपादक श्री रावत सारस्वत सर्वश्रेष्ठ लोक कार्य-कर्ता हैं।

३ राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ — राजस्थानी साहित्य समिति बिसाऊ ने महाकवि ईसरदास के सम्मान में ईसरदास आसन की स्थापना की है। इस आसन से प्रति वर्ष कम से कम एक भाषण विशेष रूप से तैयार करवाकर प्रचारित करने की योजना है। डॉ मनोहर शर्मा और श्री सुगनरामजी गौड़ एम ए

क सम्पादकत्व में वरदा नामक त्रमासिक शोध पत्रिका भी निकलती है । डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों म इस पत्रिका ने लोक साहित्य और लोक वार्ता क संग्रह प्रकाशन या और व्याख्या का जो स्तर बनाया है वह देश भर में अपने ढग का है ।

४ राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर — संपादक श्री नारायणसिंहजी भाटी की देख रेख में परपरा नामक शोध पत्रिका प्रकाशित होती है। राजस्थानी लोक साहित्य भाषा कला व संस्कृति का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है। इसका प्रत्येक अंक बडा ही वैविध्यपूर्ण है । परंपरा का प्रथम अक लोक साहित्य पर प्रस्तुत किया गया है। इस अक में कोमल कोठारी एव विजयदान देथा के महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं ।

५ बिड़ला एज्युकेशन ट्रस्ट का राजस्थानी शोध विभाग पिलानी — लोक साहित्य प्रकाशन के उपरान्त मरुभारती नाम की एक त्रमासिक शोध पत्रिका का बड़े ही सुन्दर ढग से प्रकाशन होता है। यह राजस्थानी लोक साहित्य और संस्कृति की प्रमुख पत्रिका है। इसके संपादक डॉ कन्हैयालाल सहल हैं। इसमें लोक कथा के मूल अभिप्रायों [मोटिफ्स] पर लेख लिखे जाते हैं और लोक कथा कहावतें प्रहेलिका साहित्य को प्रमुखता दी जाती है।

६ भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर — यह संस्था भी ठोस शोध कार्य में प्रयत्न शील है। जिसमें कई प्रतिष्ठित विद्वान काय करते हैं। लोक प्रकाशन के सिवाय यहाँ से एक लोक साहित्य पत्रिका भी निकलने वाली है। इसके कुलपति श्री नरोत्तमजी स्वामी हैं। श्री अगरचन्दजी शर्मा सत्य नारायणजी पारीक मूलचन्दजी पारीक आदि महानुभाव इसके मुख्य कार्य-कर्ता हैं।

७ राजस्थान विश्व भारती, बीकानेर — राजस्थान विश्वभारती संस्था भी लोक साहित्य कार्य को बड़े उत्तम ढंग से कर रही है। इसकी पत्रिका निकालने की योजना पूर्ण हो चुकी है। यहाँ के व्यवस्थापक श्री विद्याधरजी शास्त्री हैं। श्री गौरीशंकरजी आचार्य संस्था के कुलपति हैं। बीकानेर डिवीजन के बड़े बड़े नगरों म अच्छे अच्छे संस्कृत क विद्वान इस संस्था की सदस्यता ग्रहण करके अपना अहोभाग्य समझते हैं।

८ पुरातत्व विभाग बीकानेर — यह राजकीय अनुसंधान संस्था श्री नाथूरामजी खड़गावत की अध्यक्षता म काय करती है। इसका कार्यालय हाल (१९६३) ही में बीकानेर आया है। श्री खड़गावतजी राजस्थान में चोटी के अन्वेषक माने जाते हैं। वास्तव म व कमठ कार्यकर्ता एवं आदर्श विद्वान हैं। आपके निर्देशन में

एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ आजादी का इतिहास लिखा जा रहा है। राजस्थान भाषा एवं प्रशासन कार्य में राजस्थानी के उपयोग की अतुलनीय सामग्री यहां संग्रहीत है। इस तरह से राजस्थान में शोधपूर्ण पत्र - पत्रिकाओं की घटा सी उमड़ रही है। राजस्थान विकास, सयुक्त राजस्थान, अमर ज्योति, कल्पना और वाग-विलास आदि अनेक पत्रों द्वारा लोक साहित्य संकलन एवं प्रकाशन हो रहा है। रतनगढ़ से ओळमो और कुरजां बीकानेर से वातायन, जोधपुर से ज्वाळा और प्रेरणा पत्र निकलते हैं। इन सबमें पर्याप्त लोक साहित्य समावेशित रहता है। इस समय राजस्थानी लोकवार्ता के क्षेत्र में आकाश वाणी का योगदान नहीं भुलाया जा सकता। असंख्य लोक गीतों, लोक नाट्यों लोक गाथाओं एवं लोक कथाओं का प्रसारण यहां से हुआ है और होता रहता है। यहां राजस्थान के अनेक लोक गायकों को अपनी कला का पुरस्कार भी मिला है और एक तरह से उसकी सुरक्षा का साधन भी निर्मित हुआ है। आकाश वाणी ने लोक वार्ता विषयक अनेक वार्ताएं भी प्रसारित की हैं।

राजस्थान की संस्कृति के सपूर्ण अध्ययन की दृष्टि से लोक वार्ता के क्षेत्र में जो कार्य हो रहा है, वह बहुत शीघ्र ही राजस्थानी भाषा एवं राष्ट्रीय संस्कृति के विकास में एक महत्वपूर्ण तथ्य सिद्ध होने वाला है।

राजस्थान साहित्य अकादमी [संगम] उदयपुर–राजस्थान सरकार द्वारा स्थापित यह संस्था प्रदेश की साहित्यिक गतिविधि को प्रोत्साहित और सगठित करने हेतु निर्मित की गई है। इसकी स्थापना सन् १९५८ में हुई। इस सस्था के माध्यम से लोक साहित्य के क्षेत्र में भी कार्य प्रारंभ हुआ है। पुस्तक प्रकाशन की योजना में कुछ बालोपयोगी लोक कथाओं शोध ग्रन्थों एवं अपनी मासिक पत्रिका में लोक साहित्य सबंधी विषयों के लेख प्रकाशित किये हैं। अकादमी ने लोक साहित्य के सरक्षण एवं संग्रह आदि समस्या पर सेमीनार एवं सिंपोजियम भी आयोजित किये हैं। राजस्थान के लोक साहित्य अध्येता साहित्य अकादमी से आर्थिक सहायता प्राप्त करके अपने कार्य को बढ़ाने के लिये भी उत्सुक हैं। राजस्थान की साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं को भी अकादमी ने आर्थिक सहायता प्रदान की है।

राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर–सन् १९५९ में राजस्थान सरकार ने इस संस्थान की स्थापना की। संगीत नाटक अकादमी ने लोक संगीत के पक्ष पर महत्वपूर्ण कार्य सपादित किया है। लोक गीतों की छ. पुस्तकों में पाठ सग्रह प्रकाशित किये हैं। इसी प्रकार श्रीमती कमला सोमाणी द्वारा संपादित एवं स्वरलिपि-बद्ध पुस्तक गीतायन प्रकाशित की है। हाल ही में सुश्री सुधा राजहंस की पुस्तक 'चिरमी' भी स्वरलिपि सहित प्रकाशित हुई है। इसमें जैसलमेर मारवाड़ क्षेत्र के लगा जाति के गीतों का संकलन है। लंगा जाति के गायन

प्रकार का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

अकादमी ने राजस्थान के लोक वार्तो का महत्वपूर्ण सग्रह किया है और उनकी एक सूची भी प्रकाशित की है। लगभग ७०० ८०० पदों का लोक संगीत रेकॉर्ड भी किया है। लोक नाटक एव लोक गाथाओं का रेकॉर्डिंग भी किया गया है।

रूपायन सस्थान, बोरुन्दा—गांव में स्थापित यह संस्था प्रमुखतया लोक वार्ता के क्षेत्र में ही काम कर रही है। इस सस्था ने अपने उद्देश्य में स्पष्टत लिखा है कि वह राजस्थान लोक वार्ता क्षेत्र में ही कार्य करेगी। संस्थान म अब तक मी वृहत भागों में राजस्थानी लोक कथाओं का प्रकाशन 'बातां री फुलवाड़ी' के नाम स किया है। यह कार्य राजस्थानी भाषा में ही किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त वाणी नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी चल रहा है। गांव में ही संस्था का अपना मुद्रणालय है। सस्थान ने हजारों की सख्या में लोकगीत, लोक कथाएं एव कहावतें मुहावरे एकत्रित कराये हैं जो शन शन प्रकाशित किये जाते हैं। बाता री फुलवाड़ी का लेखन कार्य श्री विजयदान देथा द्वारा किया जा रहा है। हजारों पृष्ठों की सामग्री राजस्थानी भाषा में प्रकाशित हो चुकी है।

राजस्थान संस्कृति परिषद, जयपुर — यह संस्था रानी लक्ष्मीकुमारीजी चूण्डावत द्वारा संचालित है। संस्था का मुख्य कार्य राजस्थानी भाषा के प्रकाशन करना एवं राजस्थान की सस्कृति के उत्थान के लिये प्रयत्न करना है। लोक गीतों एवं लाक कथाओं के काफी प्रकाशन यहां से हुए हैं।

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर—इस संस्था को भी राजस्थान सरकार ने स्थापित किया है। संस्था का मुख्य काय राजस्थान में प्राच्य हस्तलिखित ग्रथों का सग्रह एव उनको सपादित करक प्रकाशित करना है। राजस्थानी ग्रम पाली अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा के हजारों हस्तलिखित ग्रथ संस्था के सग्रह में है। इसी सग्रह में एमी बहुतसी सामग्री है जिसका सबध सीधा लोक वार्ता स है। कथा विश्वास, मान्यता एव विचारा का बहुत बड़ा आगार इस संग्रहालय मे प्राप्त हो जाता है। यहां म दा तीन कथा संग्रहों का प्रकाशन भी किया गया है।

हस्तलिखित ग्रंथ साहित्य म प्राप्त लाक वार्ता का बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। वस्तुत यह एक बहुत महत्वपूर्ण एतिहासिक काल निर्णय का साधन भी है।

अन्य अध्ययन क्षेत्र — राजस्थान प्रदेश के राजनैतिक संगठन के उपरान्त राज्य सरकार एव केन्द्रीय सरकार क तत्वावधान म अनक विभाग भी लोक वार्ता सबधी कार्यों म अपना योगदान दे रहे हैं। इनमें प्रमुख केन्द्रीय कृषि मंत्रालय

के अन्तर्गत कार्य करने वाला एरिड जोन विभाग है, जो जोधपुर में स्थापित है। मरुस्थलीय प्रकृति और जन जीवन पर पर्याप्त सामग्री यहां एकत्रित की जा रही है और उसका वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। इसी प्रकार राज्य सरकार का जनगणना विभाग भी विभिन्न ग्रामों एवं जातियों के अध्ययन तैयार कर रहा है। इन्हीं के साथ राज्य सरकार का गजेटियर विभाग भी जिले वार जो सांस्कृतिक उपलब्धियों पर प्रामाणिक सामग्री को एकत्रित करने में संलग्न है।

केन्द्रीय सरकार के जियोलॉजिकल एवं बॉयोलॉजिकल सर्वेक्षण विभाग भी तथ्यों को संग्रहीत कर रहे हैं।

इनके अलावा राजस्थान के तीनों विश्वविद्यालय [जोधपुर, जयपुर एवं उदयपुर] के अनेक स्नातक डॉक्टरेट के लिये लोक वार्ता संबंधी शोध ग्रंथ तैयार कर चुके हैं और अभी भी कर रहे हैं। लोक वार्ता विषयक ग्रंथ डॉ स्वर्णलता अग्रवाल डॉ कन्हैयालाल शर्मा, डॉ चन्द्रशेखर भट्ट, डॉ मनोहर शर्मा, डॉ आमानंद सारस्वत आदि का कार्य सामने आ चुका है। लगभग २५ ३० स्नातक अब भी इसी विषय पर अपना काय संपन्न कर रहे हैं।

जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी एवं समाज शास्त्र विभाग में लोक वार्ता संबंधी एक एक प्रश्न-पत्र का भी एम ए कक्षाओं के लिये स्वीकृत किया गया है। अन्य विश्वविद्यालय भी इस दिशा में निर्णय लेने वाले हैं।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त राजस्थान के लगभग सभी दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र भी लोक वार्ता संबंधी सामग्री प्रकाशित करते रहते हैं।

◆ नृतत्वशास्त्री के लिये लोक वाङ्मय, सम्पूर्ण संस्कृति न होकर सम्यक संस्कृति का केवल एक अंग मात्र है। इसके अंतर्गत गाथाएं आख्यान या अवदान लोक कथाएं लोकगीत, कहावतें, पहेलियां नीति कथाएं तथा और भी कम महत्व के कुछ प्रकार समाहित हो सकते हैं किन्तु लोक कला लोक नृत्य लोक संगीत लोक परिधान लोक दवा दारू लोक रीति रिवाज व लोक विश्वास इसमें शामिल नहीं किये जा सकते। निस्संदेह किसी भी शिक्षित व अशिक्षित समाज में इन सबका अध्ययन नितांत आवश्यक है। सभी लोक वाङ्मय मौखिक रूप से सतत उपलब्ध होता रहता है, किन्तु समाज की सभी मौखिक उपलब्धियां लोक वाङ्मय में समाहित नहीं की जा सकतीं। —विलियम बॉस्कम

२

राजस्थान और राजस्थानी

लोक वार्ता के अध्ययन के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से निर्मित विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में अपने कार्य को सीमित किया जाय। यों लोक वार्ता के तत्व विश्वजनीन होते हैं, किन्तु उनका उद्भव एवं विकास निपट राष्ट्रीयता अथवा क्षेत्रीयता ग्रहण किये हुए रहते हैं। मनुष्य, जिस प्रकार अपने निपट वैयक्तिक एवं शारीरिक रूप में विश्वजनीन एकता का आभास देता है [वह चाहे किसी धर्म देश या जाति का हो] उसी प्रकार लोक वार्ता में विश्व व्याप्त समानता के दर्शन होते हैं। इस समानता के उद्भव की पृष्ठभूमि म क्षत्रीय विविधता, विश्वासों की विभिन्नता एवं रंग बिरंगी संस्कृतियों के दर्शन प्राप्त होते हैं।

इसी मान्यता के आधार पर राजस्थान की लोक वार्ता को समझने का उपक्रम किया जाना यहां अभिप्रेत है। राजस्थान नामक जो राज्य आज भारत में निर्मित हुआ है अर्थात् उसका जो भौगोलिक दायरा कायम हुआ है उसके पीछे संस्कृति एवं इतिहास के कुछ विशिष्ट कारण हैं। राजस्थान के वृहत राज्य क निर्माण क पूर्व (सन् १९४८) इक्कीस देशी रियासतों में यह भूभाग विभक्त था। य देशी रियासतें भी अपने इतिहास क्रम में अनादि काल से नहीं चली आ रही थीं, अपितु मध्ययुग की असंख्य लड़ाइयों के बीच जन्मी थीं। कुछ रियासतें तो अंग्रेजों के राज्य काल में ही निर्मित हुई थीं। रियासतों एवं राजाओं के निरंतर परिवर्तन क्रम म सांस्कृतिक क्षत्र की निर्मिति का क्रम भी अपनी स्वाभाविक एवं सहज गति से चलता रहा। इस क्षेत्र के निर्माण के लिये यदि सबसे महत्व पूर्ण कोई तथ्य रहा तो वह था भाषा की एकता अथवा विभिन्न जाति समूहों में उद्भूत विश्वासों व परम्पराओं का। इस मानवीय तथ्य पर विभिन्न युद्धों और सम्पत्तियों क रहने बसने म कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लोक जीवन अपनी ही मौलिक गति विधियों के स्वाभाविक क्रम में लगा रहा। साथ ही साथ यह भी

निश्चित है कि इस स्वाभाविक गति में तथाकथित इतिहास की परिस्थितियों ने अपनी ओर से व्यवधान अथवा अवरोध अवश्य उत्पन्न किया। किन्हीं अर्थों में यह भी सत्य है कि राजस्थान के इतिहास में जो राज बने या बिगड़े, वे स्थानीय विभिन्न जातियों की प्रबलता और अप्रबलता पर ही निर्भर रहे और उनके कारण जातीय संसर्ग का संतुलन कभी बना और कभी बिगड़ा। किन्तु उनके निरन्तर अन्यान्योश्रित रहने के कारण सामंजस्य और परस्पर सांस्कृतिक विश्वासों का लेन-देन चलता रहा।

अत कभी कभी यह जो प्रश्न सामने आता है कि राजस्थान नामक राज्य की कल्पना सन् १९४८ के ही बाद की है – सत्य नहीं है। राजनैतिक कारणों से बनने बिगड़ने वाली भौगोलिक सीमाओं के परिवर्तन से कोई राष्ट्र या जाति या प्रादेशिक संस्कृति का क्षेत्र न कम होता है और न अधिक। इसका मूलाधार तो मानव वंशीय समस्याओं में निहित रहता है और अपनी प्राकृतिक अवस्थाओं के साथ संपर्क में आने वाली संस्कृति से जुड़ा रहता है। संस्कृति बहुत अर्थों में राजनीति और सत्ता की अनुगामिनी नहीं होती। यह भी इतना बड़ा सत्य है जिसने मुख्यत: लोक वार्ता या लोक संस्कृति के अध्ययन को न केवल बढ़ावा दिया बल्कि यह स्थापित भी किया है कि समाज के सतही ढांचे के नीचे जो नाम बीम लोक वार्ता है वही इतिहास का वास्तविक आधार बन सकती है।

इस दृष्टि से यदि हम राजस्थान नामक प्रदेश में विलीन हुई रियासतों का सांस्कृतिक मूल्यांकन करें तो सहज ही ज्ञान होता है कि राजस्थानी भाषा के माध्यम से सभी रियासतों में एक ही सूत्र मिलता है। वह चाहे ढूंढाड़ के नाम से जाना जाता हो, चाहे मेवाड़, मारवाड़, गोड़वाड़, चौरासी, मालवा, हाड़ौती, शेखावाटी, जांगल और माड के नाम से जाना पहिचाना जाता हो। उपरोक्त नामावली में मैंने जयपुर उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि रियासतों के नाम गिनाने उचित नहीं समझे हैं क्योंकि ये नगर तो अपने निकट के ऐतिहासिक काल में ही विशिष्ट रियासतों की राजधानियां बनी हैं। उनसे न संस्कृति का आभास मिलता है और न किसी स्पष्ट क्षेत्रीय विशेषता का।

फिर भी यह सत्य है कि इस राजस्थान नाम से आभूषित किये जाने वाले भूभाग को ठीक इसी संज्ञा के नाम से भारतीय इतिहास में नहीं जाना जाता था। कभी कभी प्राचीन ग्रंथों में कहीं कहीं 'रायथान' नाम अवश्य मिलता है जिसे कर्नल टॉड ने 'राजस्थान' के नाम से अभिहित कर दिया। राजस्थान के नाम-करण के पूर्व इस प्रदेश को 'राजपूताना' ही कहा जाता था। ऐसे नाम-करण का जो कारण कर्नल टॉड ने दिया है वह भी अत्यंत स्पष्ट है। ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रारंभिक अस्तित्व के समय इस प्रदेश को अधिकांश रियासतें राजपूत शासकों

द्वारा सचालित थी और इस प्रदेश को राजपूतों के आभिजात्य वर्ग के नाम ही प्राप्त किया जा सकता था। अत राजपूताना का नामकरण कर्नल टॉड ने किया। उस समय भी इस प्रदेश को आशय संस्कृति तथा भाषागत एकता के कारण 'एक रियासती समूह' के रूप में मान लिया गया था। यों गुजरात, उत्तर प्रदेश व बिहार में भी क्षत्रिय या राजपूतों के राज्य कायम थे किन्तु उन्हें 'राजपूताना' की कल्पना के साथ नहीं जोड़ा गया।

भारत के इतिहास में जब कभी इस पश्चिमी भाग का एक नाम से पुकारने [सांस्कृतिक समानता के कारण] की जरूरत पड़ी तभी आज की ही भौगोलिक सीमाओं के रूप में उसका उल्लेख हुआ है किन्तु एक तथ्य पर हमारी दृष्टि अवश्य पहुँचती है।

यह तथ्य है प्रवासी राजस्थानियों का नामकरण। भारत के लगभग सभी प्रदेशों में राजस्थान की कुछ जातियां अपने व्यवसाय के लिए फैली हुई हैं। वह चाहे सुदूर बंगाल, मद्रास, आसाम, उड़ीसा हो चाहे निकट के ही गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब सिंध हो। सभी जगह राजस्थानियों के हाथ में व्यापार की महत्वपूर्ण बागडोर है। इन राजस्थान वासियों को इन सभी प्रदेशों में एक ही नाम से संबोधित किया जाता है और वह है मारवाड़ी, अर्थात् मारवाड़ का निवासी।

अत हम देखने का उपक्रम करेंगे कि मारवाड़ कौनसा स्थान है। यों तो मारवाड़ रियासत वह कहलाई जो राजपूताने में जोधपुर की राजधानी के साथ राठौड़ वंश द्वारा सचालित की जाती थी। यह नाम मेवाड़ [मेदपाट] जांगल [बीकानेर की रियासत] माड [जैसलमेर] मेरवाड़ा [अजमेर] आदि देश-नामों के समान प्रयुक्त हुआ है और राजनैतिक दृष्टि से जोधपुर के तथाकथित तहसीलों एवं जिलों तक ही मारवाड़ का सीमित अर्थ है। किन्तु जिन मुख्य कारणों से 'मारवाड़ी' शब्द का अन्य प्रदेशों में प्रचलन हुआ उसका मूल जोधपुर के मारवाड़ में न होकर, उस संपूर्ण क्षेत्र से है जो भौगोलिक रूप से मरुस्थल है या रेगिस्तानी है। इस क्षेत्र में मारवाड़ जैसलमेर [माड] बीकानेर वाटी शेखावाटी ढूंढाड़ का अधिकांश भाग आ जाता है। यह संपूर्ण क्षेत्र मरुस्थलीय है। साथ ही साथ अन्य प्रदेशों में जो लोग सदियों से व्यापार के लिये गये, वे सभी इन्हीं क्षेत्रों से उठे हैं। शेखावाटी के लोग मुख्यतया पूर्वीय भारत में, बीकानेर वाटी के महाराष्ट्र की ओर तथा मारवाड़ गोड़वाड़ के लोग दक्षिण की ओर व्यापारिक कार्यों हेतु गये। राजस्थान के अन्य भागों से अवश्य इतनी बड़ी संख्या में व्यापारी बाहर नहीं गये। यही कारण रहा कि मरुस्थल से जाने वाले सभी लोग मारवाड़ी कहलाये जो अपने ही प्रदेश में तो रियासतों के कारण भिन्न क्षेत्रों

वाले थे किन्तु उनके देश मरुस्थल से आने वाले सभी लोग मारवाड़ी कहलाये जो अपने ही प्रदेश में दो रियासतों के कारण भिन्न क्षेत्रों वाले थे किन्तु उनका देश मरुस्थल था। और वे इसीलिये मारवाड़ी थे।

'मारवाड़' शब्द का महत्व यहीं खेप नहीं हो जाता। राजस्थान के क्षेत्र में जिस भाषा का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है—उसको भी मरुभाषा के नाम से ही अभिहित किया गया है। यही भाषा आज के सारे राजस्थान की मान-नीय और व्यक्त भाषा है जो प्राचीन काल से थोड़े बहुत स्थानीय भेद एवं उच्चा-रण गत वैशिष्ठ्य के साथ समूचे प्रदेश में प्रचलित थी और अब भी है। इसके अतिरिक्त राजस्थान के हजारों कवियों एवं साहित्यकारों ने एक टकसाली स्वरूप का ही अपने लेखन में उपयोग किया। यह कवि चाहे मेवाड़ के रहे हों, चाहे मारवाड़ बीकानेर, शेखावाटी या हाड़ौती के रहे हों। काव्यानुशासन एवं भाषा नुशासन की दृष्टि से मरुभाषा का स्वरूप ही केन्द्रीय अथवा न्यूक्लियस के तथ्य को परिपोषित करता रहा।

हमारे प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में राजस्थान के 'स्थान पर मरु प्रदेश' मरुधर, मारुदेश और राजस्थान के स्थान पर मरुदेश—भाषा, मरुभाषा और मारू भाषा इत्यादि शब्द मिलते हैं परन्तु प्राचीन मरुदेश के अन्तर्गत जो भाग प्रतिष्ठित था वह आज के राजस्थान से कुछ भिन्न था। प्राचीन ग्रंथों में मरुदेश के साथ साथ मेवाड़, मालवा और ढूंढाड़ देश भी प्रतिष्ठित रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि राजस्थान नाम से अभिहित मरुदेश आज अनेक उक्त भूभागों और वहाँ की भाषाओं और बोलियों का प्रतिनिधि है।

मारवाड़ी भाषा का इति वृत — किसी भी देश तथा उसके साहित्य की चर्चा छेड़ते समय वहां की भाषा का विवरण प्रस्तुत करना भी अनिवार्य हो जाता है। मारवाड़ी लोक साहित्य के प्रसंग में मारवाड़ देश की कथा लिखी है और मारवाड़ी भाषा पर भी विचार करना पड़ रहा है। इस देश की महानता और ख्याति जितनी बड़ी है, उतनी अस्पुष्ट और प्रचलित इसकी भाषा रहती आई है।

रटगौ सुजस रविंद, मैंमा करगौ मालवी।
मन सुनीति सरसिव, मरुभाषा संकट पड़ी।
साहित री भासा सदा, रही एक रजथान।
कुदरकिया मेटण करै, मरुभाषा रौ मांन।
रणबंको है राठौड़ राज,
जुध धीर वीर जो जोधाणूं।

दुरगा री है इक दुर्ग अठ ,
मरुधाणी री मुरधर थाणूं ।

इतिहास प्रसिद्ध आमर राज , जैसल , मरोली इण जाणी ।
भवात भरतपुर म गूंज , आ वीर पुजाणी मरु थाणी ॥

मरुदेश की भाषा मरुभाषा थी जो मारवाड़ की मारवाड़ी भाषा कहलाती है। यही भाषा आज क इस सारे राजस्थान की सर्वश्रेष्ठ एवं साहित्यिक भाषा थी जो प्राचीन काल में थोड़ बहुत स्थानीय परिवर्तना क साथ समस्त प्रदेश म प्रधान रूप से प्रचलित थी। इसारा कवियो और दूसरे साहित्यकारा का मार वाड़ क तमाम राजदरबारों में सदैव आश्रय मिलता रहा है। अत मरुभाषा का खास गढ़ मारवाड़ ही है।

प्राचीन काल से इस देश की साहित्यिक भाषा मरुभाषा रही ह । डॉ ग्रियर्सन ने मारवाड़ी , मध्यपूर्वीय मारवाड़ी उत्तरपूर्वीय मारवाड़ी , मालवी और निमाड़ी नाम से इसके मूल पांच भेद किये हैं। आज कल तो यहां २७ बोलियां बोली जाती हैं।

श्री नरोत्तमदासजी स्वामी यही बात सिद्ध करते हैं। ' राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरुभाषा था। राजस्थान के प्राचीन साहित्यकार , चाहे वे राज स्थान के किसी भी प्रदेश के वासी हों। अपनी भाषा का इसी नाम से उल्लेख करते थे। '[1] मरुभाषा का ग्रंथों में प्रयोग हमें आठवीं शताब्दी स मिलता ह । मारवाड़ राज्य क जालोर शहर में रहने वाले उद्योतनसूरि द्वारा लिखित कुवलय माला नामक कथा ग्रंथ में १८ देशीय भाषाओं के साथ इसको भी सहसम्मान स्थान मिला ह । इनके साथ गुर्जर लाट और मालव प्रदेश की भाषाए भी सम्मिलित हैं। ईस्वी १६०० सौ तक प्राचीन जन ग्रन्थों की भाषा को भी उनके लेखकों और कवियों ने मरुभाषा नाम से सम्बोधित किया है। १७ वी शताब्दी म अबुल फजल न अपनी आइने अकबरी नामक पुस्तक में भारतीय प्रमुख भाषाओं के अन्तर्गत मारवाड़ी को लिया है।[2] इस तरह से राजस्थानी की विविध प्रान्तीय बोलियों को बतलाने वाले अनेक एव असंख्य हस्तलिखित ग्रंथ मिलते हैं। एक प्राचीन जैन हस्तलिखित ग्रंथ में गुर्जरी मालवी पूर्वी और मराठी इन चार भाषाओं के प्राचीन नमूने दिये गये हैं। साहित्य क्षेत्रफल और जनसंख्या तीनों दृष्टिकोणों स राजस्थान की सर्व प्रान्तीय बोलियों में प्रमुख पश्चिमी बोली है जिसे मारवाड़ी नाम दिया गया है। और जिसको प्राचीन काल में मरुभाषा एवं

---

१ राजस्थानी साहित्य एक परिचय पृ २ ले श्री नरोत्तमदास स्वामी
२ डाक्टर ग्रियर्सन एल एस आइ खंड १ भाग १ पृ १

पर्यायवाची शब्दों से अभिहित किया गया था।

मरुभाषा और डिंगल — उत्तरकालीन ग्रंथों में मारवाड़ी के लिये मरुभूम भाषा, मरुदेशीय भाषा , मरुवाणी , मारूभाषा , आदि कई नामों का प्रयोग प्राप्त होता है।

मरुभाषा एक व्यापक नाम है , जिसमे राजस्थानी भाषा का उसकी समस्त विवध बोलियों और शलियों सहित समावेश किया जा सकता है। [१]

डॉक्टर सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने राजस्थानी भाषा के लिये डिंगल और मारवाड़ी दोनों नामों को काम में लिया , " मरुभाषा और ' डिंगल भाषा एक ही थी। इस भाषा का राजस्थानी नाम आधुनिक है। ' श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने भी राजस्थानी के डिंगल शब्द का व्यवहार किया है। श्री उदयराजजी उज्जवल अपने काव्य घूड़मार को अपनी मातृभाषा [डिंगल] में ही लिखा बताते हैं। राजरूपक की भूमिका में पंडित रामकरण आसोपा लिखते हैं कि डिंगल भाषा राजस्थानी भाषा है इसीसे राजस्थान के कवियों ने अपनी राजस्थानी भाषा में कविता निर्माण की है। महाकवि सूर्यमल्ल जी मिश्रण और मुंशी देवीप्रसाद जी दोनों इसी बात की पुष्टि करते हैं। डाक्टर मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तकों [राजस्थान का डिंगल साहित्य और राजस्थानी भाषा और साहित्य] में डिंगल का विकास गुजरी अपभ्रंश से बतलाया है।

'यों तो यहां के लोगों की मातृभाषा मरुभाषा ह ही मगर उसका साहित्य डिंगल में ही लिखा मिलता ह। यह नाम पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मरुभाषा या मारवाड़ी के साहित्यिक रूप का दिया गया ह जो बहुत प्राचीन नहीं ह। १६ वीं शताब्दी के अन्त में लिखे हुए कुशललाभ के पिंगल सिरोमणि नामक छंद ग्रंथ में उडिंगल शब्द आया है। उसका भाव तो स्पष्ट नहीं है किन्तु बहुत सम्भव ह यह उडिंगल ही डिंगल का मूल नाम हो। [२] ' ईस्वी सन् १६०० तक पश्चिमी राजस्थान [मारवाड़] तथा गुजरात की भाषा एक ही थी। ईसा के पूर्व की तृतीय शताब्दी की राजस्थान से सम्पर्कित सौराष्ट्र की भाषा का निर्देशन गिरनार [जूनागढ़ राज्य] लेख से उपलब्ध हुआ ह। ' [३] संवत् १८७१ में जोधपुर के कविराज श्री बांकीदासजी ने कवि बत्तीसी नामक पुस्तक लिखी थी। उसम डिंगल शब्द का प्रयोग हुआ है। डिंगलिया मिळिया करै पिंगल तणो प्रकास। [४]

---

१ राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ ५ ले डॉ हीरालाल महेश्वरी

२ राजस्थान साहित्य एक परिचय मे दिये गय एक उद्धरण से

३ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या (राजस्थानी पृ ४१)

४ बांकीदास ग्रन्थावली भाग २ पृष्ठ ८१।

हिन्दी साहित्य में डिंगल और पिंगल का नाम साथ साथ चलता आया है–
चारण डिंगल चातुरी, पिंगल भाट प्रकास।[1]

डिंगल मारवाड़ी भाषा के साहित्यिक रूप का नाम है, जिसमें चारणों ने वीर रस के छंदोमय गीत, दोहे और अनेक प्रकार के छंद लिखे हैं। इसका मुख्य रूप साहित्यिक होने के कारण जन साधारण की समझ से बाहर है। चारणों द्वारा प्रयुक्त इस राजस्थानी का साहित्य रूप डिंगल के नाम से प्रसिद्ध रहा है। अत डिंगल अधिक परिमार्जित, पर्याप्त स्थिर और अधिक प्रौढ़ एवं सौन्दर्य सम्पन्न है। कवियों ने डिंगल में वीर रसोपयोगी समासयुक्त, संयुक्त अथवा द्वित्ववर्णों का विशेष प्रयोग किया है। उन्होंने शब्दों को यथेच्छ तोड़ा-मोड़ा है और अलग अलग ढंग से तोड़ मोड़ कर लिखा है। इसलिये डिंगल का साधारण भाषा से भेद पड़ गया है।

पुरानी मारवाड़ी भाषा जो कि मारवाड़ी या गुजराती दोनों ही की माँ थी, उसमें साहित्य सर्जना होने लगी फिर मध्ययुग की मारवाड़ी के आधार पर पिंगल की प्रतिस्पर्धी साहित्यिक डिंगल भाषा भी प्रकट हुई।[2] डिंगल का विकास उस राजस्थानी से हुआ जिसका प्रयोग चारण एवं कुछ अन्य पेशेवर कवि जातियां अधिकतया करते थे। इस काव्य में विशेषत वीर रसात्मक सृष्टि होती थी अथवा प्रशंसात्मक अतिशयोक्ति का काव्य सूजा जाता था।

राजस्थान के साहित्यिक विकास के क्रम में डिंगल का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा किन्तु यह भाषा मुख्यत साहित्यिक ही बनी रही और उसका जन-भाषा से या बोल चाल की भाषा से लगभग संबंध नहीं रहा। यही कारण है कि डिंगल काव्य रचना अथवा भाषा पर अधिकार करने के लिये विभिन्न प्रकार के डिंगल कोषों की रचनायें हुई, जिन्हें काव्य रचयिता कंठस्थ कर लेते थे और उन्ही शब्द रूपों के प्रयोग के द्वारा पद्य रचा करते थे। डिंगल के इस निपट काव्यगत प्रयोग को स्वीकार कर लेने के बाद भी इस तथ्य को नहीं भुलाया जा सकता कि वैयाकरणिक, भाषा वैज्ञानिक एवं शब्द स्वरूप में मरुभाषा अथवा राजस्थानी भाषा के ही नियमों का परिपालन हुआ है। संज्ञा के रूप, पुल्लिंग स्त्रीलिंग के स्वरूप एक वचन से बहु वचन बनाने के नियम, क्रियाओं के 'काल रूप आदि आदि सभी राजस्थानी भाषा के नियमानुकूल ही व्यवहृत होते हैं।

डिंगल की इस भाषागत चर्चा के साथ एक और तथ्य का संकेत कर देना भी राजस्थानी लोक साहित्य के लिये आवश्यक है। डिंगल साहित्य ने अपने शास्त्रीय काव्य रूप में एक विशिष्ट छन्दोगत व्यवस्था का निर्माण किया है।

---

१ उदयराम कविकुल बोध चतुर्थ तरंग।
२ डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या– राजस्थानी भाषा।

यह छन्दोविमान 'गीत' नाम से जाने जाता है। भूल से कभी कभी इस [गीत] नाम करण के कारण हम इसे संगीतोमुखी तथ्य समझने का भ्रम कर लेते हैं। वस्तुत डिंगल का यह गीत साहित्य भारतीय छन्दशास्त्र को एक अनुपम भेंट समझनी चाहिये। इन गीतों में वार्णिक, मात्रिक एवं तद्‌जनित काव्यात्मक गणना का प्रामुख्य है और इसकी रचना में चरण, तुक [झड़] और पद का उतना ही कठोर बंधन है जितना कि संस्कृत एवं इतर भाषाओं के छन्द शास्त्र में है।

लेकिन 'गीत' के इस प्रसंग पर ऐतिहासिक अध्ययन करना अभी शेष है। छन्दोव्यवस्था की स्वीकृति के बाद भी अन्ततः इसे गीत क्यों कहा गया ? यह तथ्य अन्वेषण के योग्य है। 'गीत' का अभिप्राय तो 'गेय' रूप में ही अंगीकार किया गया है। तब क्या गीतों (छन्दों) के स्वरूप कभी गेय रूप में भी प्रयुक्त होते थे ? यदि होते थे तो उनका गेय रूप क्या था ? बीकानेर, जसलमेर एवं मारवाड़ के बाड़मेर क्षेत्र की कुछ विशिष्ट पेशेवर गायक जातियों की कुछ लोक गायन-शैलियों से इन गीत प्रकारों का संबंध निकल सकता है। क्योंकि गीत के भाषात्मक रूप और इन गायकों के गेय गीतों में प्रारंभिक समानता के दर्शन अवश्य होते हैं। इतना ही नहीं, छन्दात्मक गीतों में जांगड़ा एक छन्द विशेष है और पश्चिमी रेगिस्तानी लोक गायक जांगड़ा नामक लोक गीत भी गाया करते हैं। दोनों के काव्यगत रूप में अन्तर अवश्य है किन्तु चरण, पद एवं अन्वय में एकता के दर्शन प्राप्त होते हैं। इन गीतों के लय रूप में भी बहुत समानता के दर्शन होते हैं। बहुत संभव है कि लोक गायन शैली की काव्यगत व्यवस्था से अनुप्राणित होकर ही डिंगल गीतों की काव्यात्मक रचना और धर्नै धनै संपूर्ण छन्द शास्त्र का ही निर्माण हुआ हो। शास्त्र-गत नियमाप नियमों की स्थापना के पश्चात निश्चय ही गीतों में से गेय रूप हट गया और वह निष्णात काव्य की ही विधा शेष रह गयी। यहां इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि डिंगल गीतों का पाठात्मक स्वरूप अत्यत महत्वपूर्ण है। यह सामान्य छन्दों की तरह नहीं पढ़ा गया। इसके उच्चार एवं पठन के लिये भी नियम बनाये गये हैं जिसमें लय एवं गति के साथ कंठ के प्रयोग का वैशिष्ट्य भी सम्मिलित किया गया है। गीत के चरण (तुक) या पद (द्वाळ) के उच्चरित पठन में 'स्वांस' के अद्भुत प्रयोग किये गये हैं।

राजस्थान के छन्दोमय साहित्य और गेय रूप की चर्चा के साथ उन छन्दों का वर्णन भी प्रासंगिक होगा जो लोक गीतों की गेय शैली के भी अंग रहे हैं। इनमें प्रमुख छंद दोहा एवं सोरठा माने गये हैं। दोहा एवं सोरठा तो राजस्थान के अलिखित या मौखिक साहित्य की मुख्य छंदोमय अभिव्यक्ति का साधन रहा है। साथ ही साथ उसको लोक गायन शैली में भी प्रमुख स्थान मिला है। 'दोहे

देना 'एक विशिष्ट गायन शैली का नियामक बन गया है। इतना ही नहीं, इस लोक गायन रूपों में अनेक ऐसे कामचलाऊ प्रयोग दिखाई देते हैं, जहाँ दोहे छंद की विधा के साथ अन्य चरणों को जोड़कर पूरा रूप ही एक प्रकार बना लिया गया है। यहीं कहीं स्वतंत्र दोहे के गायन में चार एक टेक की स्थायी पंक्ति (चरण) को जोड़ कर पूरे गेय रूप की रचना कर ली गई है। मनरिया बामण नामक गीत इस प्रवृत्ति का एक प्रमुख उदाहरण है।

राजस्थानी लोक वार्ता के सर्वांगीण अध्ययन के लिए दोहे और सोरठे के रूप को भी आत्मसात करना उचित होगा। भारत के पश्चिमी क्षेत्र की लोक संस्कृति में दोहे छंद ने मुख्य स्थान प्राप्त किया। दैनन्दिन कार्यों में अथवा अभिव्यक्ति में विविध रूप में दोहों का प्रयोग प्राप्त होता है। जन सामान्य ने इस छंद की धार्मिक एवं लयात्मक अवस्था के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लिया है जिससे वे अत्यंत सहज रूप से या तो दोहे की रचना कर लेते हैं अथवा उन्हें प्रयोग में ले आते हैं।

भारतीय छंद शास्त्र में भी दोहे का महत्वपूर्ण प्रयोग प्राकृत अपभ्रंश काल में प्रारंभ हुआ। शास्त्रज्ञों की स्वीकृति तो इस छोटे से मात्रिक छंद को बहुत बाद में मिली। किन्तु धीरे धीरे यही छंद अपनी संक्षिप्त शक्ति और सूक्ष्म व्यंजना के कारण संपूर्ण साहित्य पर छा गया। मुक्तक एवं प्रबंध दोनों प्रकार के काव्यों में इस छंद ने अपना प्रभुत्व कायम कर लिया।

दोहे के जो रूप राजस्थानी में प्रचलित हैं वे इस प्रकार हैं —

नाम	प्रति चरण में मात्राएं				तुक विधान
	१	२	३	४	चरण क्रम से
दूहो	१३	११	१३	११	द्वितीय चतुर्थ
सोरठो	११	१३	११	१३	प्रथम - तृतीय
सांकळियो [बड़ो दूहो]	११	१३	१३	११	प्रथम चतुर्थ
तूंबेरी (मध्य मेळ दूहो)	१३	११,	११	१३	द्वितीय तृतीय
चरणा दूहो	१६	११,	१६	११	प्रथम-तृतीय द्वितीय चतुर्थ
पंचा दूहो	१२	११,	१२	११	द्वितीय चतुर्थ
खोटियो दूहो	१३	२३	१३	२१	प्रथम-तृतीय, द्वितीय चतुर्थ
लोडो दूहो	११	१३,	११	६	तृतीय - चतुर्थ

इन स्वरूपों के अलावा राजस्थानी छंद शास्त्र ने तो प्रस्तारादि भेद विशेषों को लेकर काफी संख्या में दोहों के नाम गिनाये हैं। किन्तु गणित से उत्प्रेरित

छंदोव्यवस्था का सृजनात्मक अथवा लोक साहित्य में महत्व प्रस्थापित नहीं हो सकता है ।

राजस्थान के मरुस्थलीय क्षत्र में दोहों का गायन विधान लोक संगीत का प्रमुखतम प्रयोग है । ये दोहे रोमांस , प्रेम नीति , प्रतीक कथा प्रशंसा आदि के लिय मौखिक साहित्य एव गेय रूप में प्रचलित हैं । जहां तक इनके गेय रूप का प्रश्न है – ये अधिकतर पेशेवर लोक गायक जातियों की सपदा है । ये गायक अपने मुख्य गीत की भूमिका के रूप में ' दोहे ' देते हैं और तत्पश्चात लयपूर्ण ढाली में गीत प्रस्तुत करते हैं । इनके कुछ गीत ऐसे भी होते हैं जो दोहे के रूप को ज्यों का त्यों कायम रखते हुए गेय होते हैं । टेक रूप में या गीत के मुखड़ [बन्दिश] के रूप में एक अन्य पक्ति प्रचलित रहती है । ये दोहे गद्य कथा-कथन शैली के साथ भी गाये जाते हैं । ढोला-मारू , नागजी नागवन्ती, बींझा सोरठ आदि गद्यात्मक कथाओं के साथ ऐसे ही गेय दूहे या सोरठे प्रचलित हैं । राजस्थान की कुछ घुमक्कड़ जातियों में दोहे के प्रत्येक चरण के साथ कुछ गेय शब्द जोड़कर गाने का स्वरूप भी प्रचलित है । उपरोक्त सभी रूपों में दोहे या सोरठे का प्रयोग मौखिक साहित्य या सगीत की परंपरा में ही मिलता है । जहां शास्त्रज्ञ कवि ने दोहे को अंगीकृत किया है–वहां राजस्थानी साहित्य के महत्व पूर्ण शब्दालकार वयण सगाई एव असरोट आदि अत्यत महत्व पूर्ण माने गये हैं ।

सोरठ शब्द को कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में समझना अनिवार्य है । यों तो सौराष्ट प्रदेश को सोरठ कहा ही जाता है । और वस्तुत यह प्रदेश - वाची शब्द ही है । परन्तु इसी नाम से एक राग भी प्रचलित है अर्थात् सोरठ राग । सोरठ राग और सोरठ प्रदेश का सबध अत्यत निकट है । इसी प्रकार सोरठ से सबंधी सोरठा छंद शास्त्र का शब्द है । साथ ही साथ सोरठ नाम की एक नायिका भी है जो बींझा नामक नायक से प्रेम करती थी । बींझा सोरठ क प्रेम की कथा प्रसिद्ध ही है । इस प्रकार सोरठ शब्द के प्रयोग से प्रदेश राग, छन्द और नायिका विशेष ' के चार अर्थ प्राप्त होते हैं । इन सभी संज्ञात्मक अर्थों को बड़ी सतर्कता से प्रयोग में लाना आवश्यक है । सोरठ राग के लिये कहा गया है

सोरठ राग सुहावणी , जे कोई सुणने आय ।
चतर हुवै तौ उठ सुण , मूरख सोवण जाय ।।

अथवा सोरठ राग सुहावणी मीठ्यौ आधी रात ।
मूरख सोवण उठ बसे , चतर सुणण न आत ।।

इसी प्रकार सोरठ नायिका के लिये कहा है

सोरठ गढ़ सूं ऊतरी, गायन री झणकार।
धूजे गढ़ रा कांगरा, धूजे गढ़ गिरनार॥

जिण संचे साग्ठ घड़ी, घड़ियो राय नैं तार।
क तो संचो गळ गयो, [क] मर गया लुहार॥

सोरठ टाळी आम री, गूयो बटघो आय।
पीन सवार उडम कर, रग म भीजवी जाय॥

और जब इसी सोरठ के नाम से छंद वर्णन मे देखिन होता है तो कहा जाता है

सोरठियो दूहो भलो, भल मरवण रो साथ।
जायन छाई घण भली, तारां छाई रात॥

सोरठियो दूहो भलो, कापड़ो भलो गुपेन।
ठाकरियो दाता भलो, घोड़ो भलो कुमैत॥

उपरोक्त सभी रूप मुख्य तथा राजस्थान के मौलिक साहित्य एवं लोक सगीत की विशिष्टतम संपदा है और जिस सपदा स राजस्थान क शास्त्रीय सम्मत काव्य एवं साहित्य ने बहुत शक्ति एव संबल प्राप्त किया है।

लोक संगीत — राजस्थान के लोक गीतों को सांगीतिक विश्लेषण की दृष्टि से हम मुख्यतया दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम तो व लोक गीत जो सामूहिक रूप से, पारिवारिक क्रिया कलापों, अनुष्ठानों पर्वों एवं उत्सव आदि अवसरों पर गाये जाते हैं। इन गीतों को गाने वाले स्वयं परिवार व समाज क ही स्त्री-पुरुष होते हैं। दूसरे वे लोक गीत हैं जो पेशावर लोक गायकों द्वारा किन्हीं विशिष्ट लोक वाद्यों के साथ गाये जाते हैं। इस श्रेणी के लोकगीत सांगी तिक दृष्टि से कुछ उन्नत दशा के द्योतक होते हैं और उनमें धुनों का वभिन्य भी अधिक होता है।

जो लोक गीत परिवार या समाज के कंठों एवं कल्पना पर निर्भर करते हैं—उन्हें संगीत की ही दृष्टि से बाल गीत, आदिवासी गीत एवं अन्य गीतों के रूप से विभक्त किया जा सकता है। क्योंकि ये तीनों प्रकार के लोकगीत सांगी तिक विधा में एक दूसरे से विभिन्नता लिये होते हैं। इन तीनों ही प्रकार के लोकगीतों के शाब्दिक गठन अथवा पद्यात्मक कल्पना के स्वरूप में भी अन्तर भेद होता है। बाल गीत सहजतम होते हैं और स्वरों की दृष्टि से दो से पांच स्वरों के बीच में बसते हैं। गीत का पाठ पूर्व निश्चित नहीं होता। स्वतः स्फूर्त रचना-तत्व इसका एक मुख्य गुण होता है। इसी प्रकार आदिवासियों के गीतों का पाठ भी पूर्व-निश्चित नहीं होता। वे गायन के समय ही पंक्तियों के रच लेने की सहज क्षमता को काम में लेते हैं। यही कारण है कि आदिवासियों के

गीतों में प्रत्येक सामाजिक एवं भौतिक परिवर्तन का प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। बाल गीतों से आदिवासियों के गीत संगीतात्मक दृष्टि से विकसित होते हैं। धुनों का वैविध्य और कल्पना का शब्दमय संसार भी उन्नत होता है। सामाजिक रूप से अन्य गाये जाने वाले गीत महिलाओं पुरुषों के गीतों में उप-विभक्त किये जा सकते हैं। पुरुषों के गीतों की संख्या अत्यंत सीमित ही होती है। उधर महिलाओं के गीतों की संख्या असीमित है। संगीत की दृष्टि से महिलाओं के गीत स्वरों, धुनों एवं लयों की दृष्टि से भी विविधता लिये होते हैं। किंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सामूहिक गीतों का पाठ बहुत कुछ निश्चित एवं स्थिर होता है। ये गीत किसी पंक्ति से प्रारंभ होकर पंक्ति पर समाप्त होते हैं। यों इन गीतों में भी परिवर्तन, परिशोधन एवं विभिन्न पंक्तियों का आगम अथवा लोप भी होता है। किंतु इन स्थितियों में भी गीत में एक सुनिश्चित पाठ अवश्य रहता है।

राजस्थान के लोक संगीत में पेशेवर लोक गायकों की संगीत शैली को आत्म सात किये बिना एक बहुत बड़ा अंश छूट जाता है। राजस्थान की लगभग सभी बड़ी या छोटी जातियों के अनुष्ठानों रीति-रिवाजों एवं अन्य मनोरंजन के अवसरों के लिये कोई न कोई जाति गायन पेशे के साथ जुड़ी हुई है। राजपूत, जाट गूजर, महाजन, मुसलमान, भांबी बावरी, चारण या अन्य कोई भी जाति हो — सभी की अपनी अपनी गायक जातियां हैं। इन जातियों में हिन्दू तथा मुसलमान ढोली, नगारची, सरगरे, फदाली, ढाढ़ी, मिरासी, लंगे, मांगणियार विभिन्न जातियों के भोपे कामड़ हुडकल, जागे आदि हैं। समाज शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से यह संभवतया बहुत महत्वपूर्ण है कि अन्ततः किस प्रकार जातीय परंपराओं के साथ ही लोक संगीत का यह पक्ष उत्पन्न हुआ और आर्थिक रूप से अपने इसी कार्य [संगीत] पर निर्भर रह सका। इन जातियों ने राजस्थानी लोक संगीत को सर्वाधिक सुरक्षित रखने में सफलता प्राप्त की और साथ ही साथ अपनी धरती की सांगीतिक सुवास को उन्नत भी बनाया।

पेशेवर लोक गायकों ने राजस्थान में लोक-वाद्यों को जीवित रखने में जबरदस्त योगदान दिया। यह आश्चर्य जनक सांगीतिक तथ्य है कि राजस्थान में प्रायः सभी संगीत वाद्य किसी न किसी गायक जाति से संबंधित है और यह उन्हीं की 'सुरक्षा' में आज तक प्रचलित रह सके हैं। यदि हम शुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो संगीत वाद्यों को भरत मुनि की धारणा के अनुसार चार विभागों में बांट सकते हैं। ये विभाग हैं १ तत वाद्य — अर्थात् तार से बजने वाले वाद्य २ सुषिर वाद्य अर्थात् फूंक से बजने वाले वाद्य, ३ अवनद्ध वाद्य अर्थात् चमड़े से मंढे हुए वाद्य एवं ४ घन वाद्य अर्थात् विभिन्न धातुओं से बने हुए या वस्तुओं

से बने हुए घर्षण या आघात से बजने वाले वाद्य।

ये चारों ही मुख्य वाद्य प्रकार राजस्थान के लोक संगीत में साथ प्राप्त होते हैं। केवल इतना ही नहीं, इनके जितने भेद विभेद हो सकते हैं वे सभी वाद्य भी इस प्रदेश में प्राप्य हैं। यहां इस तथ्य की ओर भी संकेत कर देना आवश्यक है कि आज जो संगीत वाद्य राजस्थान प्रदेश में प्राप्य हैं — उन्हें केवल राजस्थानी वाद्य के नाम से संबोधित नहीं किया जा सकता। ये सभी वाद्य भारत ही नहीं विश्व की संपूर्ण संपदा के ऐतिहासिक प्रतीक हैं जो अपने कालक्रम में किन्हीं देशों में काल-कवलित हो गये और किन्हीं देशों में आज भी जीवित हैं।

यहां राजस्थान के सभी वाद्यों का विवेचन संभव नहीं है। अतः कुछ प्रमुख वाद्यों की ही चर्चा की जा रही है। सबसे पहिले तत वाद्यों में जंतर एवं कामायचा का विवरण दिया जा रहा है। जंतर नामक वाद्य गूजरों के भोपे बजाते हैं। यह वाद्य वीणा के प्रकार का होता है जिसमें एक डांड [दांग] और दो तूंबे होते हैं। वाद्य पर सितार की भांति पर्दे लगे रहते हैं। इस वाद्य को नखों के आघात प्रकार से बजाया जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आघात से बजाये जाने वाले वाद्यों [सितार वीणा सरोद] को ऊपर से अनुरणित किया जाता है लेकिन जंतर की बनावट ऐसी होती है कि जिसमें तारों को नीचे की तरफ से गुंजित किया जाता है। इसी प्रकार इस वाद्य पर जो मेरु होता है—वह भी सीधा खड़ा रहता है। यह व्यवस्था अन्य किसी भी वाद्य में नहीं मिलती।

जंतर का वादन गूजर जाति के भोपे करते हैं। ये लोग इस वाद्य की सहायता से 'बगड़ावतों' जैसी बृहद लोक गाथा गाते हैं। इसका वादक गायन के साथ साथ नृत्य भी करता है। यह वाद्य ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार थोरियों या भीलों के भोपों का रावण हत्था नामक वाद्य भी संगीत की दृष्टि से महत्व पूर्ण है। इसका वादन घोड़ों की पूंछ के बाल के तारों पर होता है जिससे अधिकांश वाद्यों के गज बनते हैं। इसकी ध्वनि अत्यंत गंभीर होती है।

तत वाद्यों में कामायचा का स्थान भी मनन के योग्य है। यह वाद्य हमें मध्य एशिया की संस्कृति के निकट पहुंचा देता है। यह एक गज से बजने वाला वाद्य है और इसे बजाने वाले बाड़मेर जैसलमेर क्षेत्र में मांगणियार नाम से संबोधित किये जाते हैं। यह गज से बजाये जाने वाला वाद्य है। इसके मुख्य तार तांत के होते हैं। गज काफी लंबा होता है और इसके वादन के प्रकार से गायन शैली पर भी प्रभाव पड़ता है।

तत वाद्यों में सिंधी सारंगी, गुजरातण सारंगी, तंबूरा या निसाण या

वीणो , पानी सारंगी , चिकारा आदि अनेक और वाद्य भी मिलते हैं। यहां पुन कह दें कि ये सभी वाद्य विशिष्ट गायक जातियों द्वारा ही बजाये जाते हैं।

सुषिर वाद्यों में मुरली , पावा या सतारा , नड़ , पूंगी व उनके प्रकार , मशक , बांकिया , तुरही आदि प्रकार के बाजे आते हैं। इनमें सतारा [पावा] और नड़ संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण ज्ञात होते हैं। सतारा दो बांसुरियों का वाद्य है और दोनों बांसुरियां एक साथ ही मुंह में रहती हैं और बजाई जाती हैं। होठों से दो फूंकें निःसृत होती हैं। किंतु उनमें एक बांसुरी पर धुन बजाई जाती है और दूसरी से केवल श्रुति ली जाती है। इस वाद्य को रेगिस्तान क्षेत्र के भेड़ या पशु पालक बजाते हैं। मुख्यतया इसमें संगीत के रूप में अलंकार या पल्टों का ही वादन किया जाता है। यों यह वाद्य उच्चतम संगीत अथवा राग - वादन के काम में भी आ सकता है। कुछ अन्य पेशेवर गायक जातियां इसका धुन के लिये भी प्रयोग करती हैं। इसी प्रकार 'नड़' नामक वाद्य भी संगीत की अत्यंत प्रारंभिक स्थिति को पहिचानने के लिये महत्वपूर्ण वाद्य है। यह वाद्य एक लंबे व पतले बांस की तरह के वृक्ष से बनता है और टेढ़ी बांसुरी की तरह बजाया जाता है इसमें कांच की शीशी की भांति फूंक दी जाती है और इसमें केवल पल्टों या अलंकारों का ही वादन हो सकता है। इसमें केवल चार ही छेद होते हैं। किंतु लंबाई के कारण उनका घोष बहुत गंभीर होता है।

अवनद्ध वाद्यों में ढोलक , ढोल , चंग डफ जैसे वाद्य गिने जाते हैं। ये वाद्य यों विश्व भर में ही अपने विभिन्न रूपों में प्रचलित हैं। राजस्थान के अवनद्ध वाद्यों में डेरू एक महत्वपूर्ण वाद्य है। यह वाद्य माताजी के स्थानों [थान] एवं लोक गाथाओं के साथ काम में आता है। इस वाद्य को कालबेलिये भी बजाते हैं। यह डमरू के आकार का वाद्य होता है और उस पर चमड़े को कसने वाली रस्सियों को दबाने से भिन्न भिन्न लयात्मक ध्वनियां निकाली जाती हैं। एक हाथ रस्सी के दबाव पर और दूसरे हाथ में पतली लकड़ी होती है – जिससे लयपूर्ण ध्वनियों को उत्पन्न किया जाता है। यह वाद्य लयों के अत्यंत सुन्दर पेटर्न्स बनाने में समर्थ है।

घन वाद्यों में मंजीरा ताल दो छोटी लकड़ियां, कांच, थाली घंटी, कटोरे जैसे वाद्यों को माना जाता है। ये वाद्य परस्पर घर्षण या आघात से संगीतात्मक लय उत्पन्न करते हैं। इसी वर्ग में मोरचंग एवं भोराळिया जैसे वाद्य भी आते हैं। दोनों वाद्य बहुत ही आनन्ददायक और मनोरंजक हैं। ये वाद्य प्रकार विश्व भर में प्रचलित हैं। योरोपीय देशों में इसे ज्यूजहार्प कहा जाता है। दक्षिण भारत में इसे 'मुखचंग' कहा गया है। मोरचंग लोहे का बना हुआ एक वाद्य है जिसमें एक पतली लोहे की रीड होती है जो फूंक के प्रभाव से ध्वनि उत्पन्न

ती है और उसी रीढ पर अंगुली के आघात से लयपूर्ण अम आती है। इसी कार घाराळिया बांस का बना वाद्य है जिसे होठों में पकड कर बजाया जाता है। क मोरचंग के ही आकार प्रकार का होता है। लय के लिये धागे का काम लिया जाता है। यह वाद्य मुख्यतया काळबेलियों [संपेरा जाति] के पास मस्ता है।

राजस्थान में अभी लगभग अस्सी प्रकार के वाद्य प्रचलित हैं और सभी ाद्य अपने प्रकार से राजस्थान के लोक संगीत की सेवा कर रहे हैं। इन वाद्यों ी सुरक्षा का मुख्य कारण यही रहा है कि उन्हें विशिष्ट जातियों ने अपनी जीविका का साधन बना रखा है। अब ज्यों ज्यों आर्थिक प्रश्न विकट होने लगेगा या ही त्यों ये वाद्य लोप होने लगेंगे।

लोक संस्कृति एवं राजस्थानी—हमने उपरोक्त पृष्ठों में राजस्थान प्रदेश के गठन राजस्थानी भाषा एवं उसकी छंदोमय व्यवस्था और राजस्थानी लोक संगीत को विहंगम दृष्टि से देखा। इसके पश्चात एक तत्व जो प्रमुखतम बनकर सामने आता है—वह है क्या राजस्थान नामक प्रदेश में हमें सांस्कृतिक एकता का आभास मिलता है ? यदि यह आभास मिलता है तो उसका आधार कहां है और उसे किस प्रकार अनुभूत सत्य पर स्थापित किया जा सकता है।

इस तथ्य या सत्य के निरूपण के लिये सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न भाषा का है। भाषा ही मनुष्य की वह सर्वोच थाती है जिससे मानववंशीय समूहों को राष्ट्रीयता अथवा प्रादेशिकता की सीमा में बांधा जाता है। राजस्थान प्रदेश की भाषा राजस्थानी है—यह कह देने से वर्तमान समय में किसी को संतोष नहीं होता। क्योंकि स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद भारत में जिस प्रकार भाषावार प्रान्तों का गठन हुआ और उसके लिये संघर्ष हुआ—उसके कारण राष्ट्रीय चेतना के प्रति सजग व्यक्ति चौंक गये और उन्हें भय लगने लगा है कि कहीं भारत की राष्ट्री मता ही खंडित न हो जाय। भाषायी प्रांतों की मांग के पीछे प्रादेशिक संकीर्णता के तत्व उभरते दिखाई दे रहे हैं और वे हमारे वृहत् देश को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं—ऐसा सतही तौर पर दिखाई देता है। किन्तु भाषावार अथवा सांस्कृतिक एकता के आधार पर प्रदेशों का निर्माण व उसके जरिये भारतीय विकास की कल्पना ही वह दृढ़ आधार प्रदान करने में समर्थ है जो भारत की एकता को कृत्रिम रूप से नहीं अपितु वास्तविक रूप से स्थापित करने में सशक्त है। यदि यह आधार नहीं लिया गया होता तो विसंडन का क्रम अधिक उग्र और विनाशकारी होता। यह समस्या भारतीय राष्ट्र के लिये चाहे नये रूप में मर्म हो किन्तु विश्व के अनेकानेक वृहत् देशों ने इस समस्या को सुलझाया है और उसका परिणाम ऐतिहासिक रूप से हमें उपलब्ध हैं। यदि हम उन परिणामों

का, पूर्वाग्रहों को छोड़ कर, अध्ययन करें तो पता चलेगा कि संस्कृति की अपनी विशिष्टताओं के मानवीय विकास क्रम में एक स्वतंत्रता का भाव अपेक्षित है। यदि यह स्वतंत्रता उस संस्कृति को नहीं मिलती है तो उसे दमन कहा जाता है और दमन के विरोध में विद्रोह और हिंसा का साम्राज्य फलने लगता है। अतः विश्व के दार्शनिकों एवं लोकतंत्रीय विचार धारा के विद्वानों ने संस्कृति की एक इकाई को अपनी नैसर्गिक आवश्यकताओं के साथ, एक स्वर से स्वीकार किया है।

किन्तु यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या संपूर्ण भारत एक सांस्कृतिक इकाई नहीं है? इसका उत्तर है कि भारतीय संस्कृति एक इकाई है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों के पुष्प अपने विभिन्न रंगों में पुष्पित हुए हैं — किन्तु उनका मूल एक है। डाली, पत्ते और पुष्पों के प्राकृतिक गठन में विभेद है। भारत विभिन्न संस्कृतियों के बीच एकता का एक महान देश है। इस विराट सत्य की स्वीकृति के उपरान्त जब हम लोक संस्कृति के विषय पर आते हैं तो प्रत्येक टहनी और पुष्प को स्वस्थ व नैसर्गिक सौन्दर्य प्रदान करने का प्रयत्न प्रारंभ हो जाता है और तभी हमें 'विभिन्नता' का भय ग्रस्त कर लेता है। वस्तुतः यह भय व्यर्थ है और जहाँ इस तथ्य की स्पष्ट स्वीकारोक्ति नहीं है — वहाँ हमें भारतीय संस्कृति के एकता के तत्वों को प्रकाश में लाना जरूरी है।

राजस्थान का प्रदेश भी भारतीय संस्कृति के विराटत्व में अपने ही प्रकाश पुंज से आलोकित है। इस प्रकाश-पुंज का अभिव्यक्त रूप राजस्थानी भाषा या वाणी में उच्चरित हुआ है। इस प्रदेश का यह दुर्भाग्य रहा है कि स्वतंत्रता की स्वर्ण वेला के समय अनजाने और अनायास ही अपनी भाषा को मान्यता नहीं दिला सका। यह मान्यता भी कौनसी? हमारे द्वारा बनाये गये संविधान की एक सूची में। किन्तु भारत के विद्वान एवं दिग्गज संवैधानिक विद्वानों ने यह स्पष्ट संकेत संविधान में छोड़ा कि ज्यों ज्यों विभिन्न भाषाएं विकसित होती जायेंगी — उन्हें राष्ट्रीय भाषाओं की सूची में मिला लिया जायेगा।

लेकिन वास्तविक समस्या राजस्थानी भाषा की संवैधानिक मान्यता नहीं है। उसकी समस्या तो है कि वह भाषा के रूप में मानी भी जाय अथवा नहीं। इसमें आग्रह है पूर्वाग्रह है और दुराग्रह है। किन्तु यदि हम इन सभी आग्रहों को छोड़कर सोचें तो स्पष्ट हो जायेगा कि भारतीय भाषाओं के उदय काल [अर्थात् ७ वीं ८वीं शताब्दी] से ही राजस्थानी का अस्तित्व बनने लगा था और साहित्य के इतिहास क्रम में अटूट रूप से चलता रहा। इस तथ्य से कोई भी विज्ञ विद्वान इन्कार नहीं करता। लेकिन एक प्रश्न को फिर भी उठाया जाता है कि संपूर्ण राजस्थान में एक टकसाली भाषा का रूप नहीं है। उसके किस रूप को स्वीकार किया जाय? इस प्रदेश में अनेक बोलियां हैं — किस बोली को भाषा

मानलें ? राजस्थानी भाषा का जो विघटनात्मक स्वरूप है, उसे मूल देकर यह सहज ही मान लिया जाता है कि राजस्थानी नामक कोई भाषा नहीं है। लेकिन भाषा विद् इस बात को मानते हैं कि किसी भी भाषा को भाषा मानने के लिये पहली आवश्यकता है कि उसकी अपनी बोलियां हों। आज हिन्दी स्वयं भी विभिन्न बोलियों के अस्तित्व के साथ अपने को भाषा मनवाने में सफल हो सकी है। इतना ही नहीं जिन जिन भाषाओं को संविधान में मान्यता मिली है--उन सभी भाषाओं की अपनी अपनी बोलियां हैं, उनके रूप भेद हैं, उच्चारणगत तथ्यों में अन्तर हैं। अत इस तर्क में भी वजन नहीं है कि बोलियों की गणना के आधार पर राजस्थानी भाषा के अस्तित्व से मना किया जाये।

हम यदि राजस्थानी भाषा के व्याकरणगत रूप को भलीभांति देखने का प्रयास करें तो ज्ञात होगा कि जसलमेर से लेकर ढूंढाड़ तक और गंगानगर से लेकर हाड़ौती क्षेत्र तक बोली जाने वाली भाषा में न केवल एकता है अपितु वह संस्कृति की दृष्टि से एक उन्नततम विधा है। इस भाषा के संज्ञा रूप, एक वचन व बहु वचन रूप काल के रूप, कृदन्तों के रूप एवं क्रियाओं के प्रकारों म न पूर्ण रूप से केवल साम्य है अपितु एक प्रकार के नियमों पर सचालित हैं।

भाषा की इस एकता को राजस्थान की लोक संस्कृति के अध्ययन से तो पृथक किया ही नहीं जा सकता। जब लोक कथा, लोकगीत कहावतें मुहावरे, रीति रिवाज, जातीय गठन कल्पनाएं अनुष्ठान त्यौहार देवी देवता शकुन, मान्यताएं, विश्वास आदि आदि तथ्यों को देखते हैं तो सारा राजस्थान एक सत्व की तरह आंखों में घूम जाता है। विशेषकर वे कलात्मक अभिव्यक्तियां जिनका आधार भाषा ह [यथा कथा गीत] — उनको लिखित रूप देते है तो समानता का विस्तृत रूप एकदम स्पष्ट हो जाता है। इस लिखित रूप को यदि हम प्राचीन एवं मध्ययुगीन राजस्थानी के लिखित साहित्य के नियमोपनियमों से सचालित कर सते हे तो सभी बोलियों का विभेद समाप्त हो जाता हे। यह आश्चर्य की बात नहीं माननी चाहिये कि आज के संपूर्ण राजस्थान में लोकगीतों' की भाषा म उसके व्याकरणगत गठन में एवं सांगीतिक आवेग में सुस्पष्ट एकता ह।

यह लोक संस्कृति का अध्ययन राजस्थान के किसी भी अध्येता को अपने ही तर्क और विवेक से इस बात का मानने के लिये मजबूर कर देता है कि राजस्थान की संस्कृति का पुण्य एक ही ह – उसमें विभाजन नही ह उसमें विघटन नहीं ह उसमें अन्तर नही है और जो कुछ ह वह एकत्व लिये हुए ह।

३

लोक गीत

लोक गीत — हमारे यहां लोक गीतों की परंपरा बहुत पुरानी है। वाल्मीकि और व्यास, भास और कालिदास तथा कबीर, तुलसी व सूर की कविताओं का तो समय निश्चित है, पर गीतों की रचनाओं का कोई समय निश्चित नहीं है। वेदों के मंत्र दृष्टाओं का तो पता है पर गीतों के रचयिताओं का पता नहीं है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अनेक स्थानों पर गीतों के गाये जाने के उल्लेख मिलते हैं। किन्तु इनकी उत्पत्ति का समय और स्थान उपलब्ध नहीं होता। यह गीत रचने वालों की दृष्टि से अनाम और व्यक्तित्व की छाप से मुक्त होते हैं। किन्तु ऐसे सुन्दर एव सरस गीतों की रचना करके समाज नाम ग्राम और समय की चिन्ता किये बिना अपनी अभिव्यक्ति कर लेता है। परन्तु गीतों का सृजन मानव उत्पत्ति के साथ ही हुआ ज्ञात होता है। इनकी प्राचीनता का पता हमें संस्कृत के आदि ग्रंथों से मिलता है। ऋग्वेद में गाथिक शब्द है। यह गाने के काम में लिया गया है। वैवाहिक गीतों के लिये नराशसी अथवा रैमी नाम के शब्द रूप भी मिलते हैं। उक्त समय की सारी पद्य-बद्ध गाथाएं मंगल अवसरों पर गाई जाने वाली जान पड़ती हैं। ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथों में इस समय की अनेक गाथाओं से लोक गीतों की साकारता के प्रमाण मिलते हैं। ब्राह्मण ने ऋक को देवी से और गाथा का मानवी से संबंधित बताया है। अतएव गाथा शब्द के संबंध से लोक गीत की प्राचीनता का पूरा पता लग जाता है। महाभारत के आदिपर्व की बहुत सी गाथाओं के रूप भी अति प्राचीनतम हैं। गीत उल्लसित लोक-मानस से निकलने वाली अटूट धारा है जिनका लोक प्रतिभा द्वारा विभिन्न अवसरों पर सृजन एवं गान होता आया है। यह कार्य पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों न अधिक किया जान पड़ता है। गीतों की अनाम रचना करने में महिला समाज की अपनी विशिष्टता तथा अपना योगदान रहा है। स्त्रियों द्वारा गात गाये जाने का वर्णन श्री सोमदेव ने ११ वीं शताब्दी के अभिलाषार्थ चिंतामणि ग्रंथ में भी किया है। संगीत रत्ना

रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता। निर्वैयक्तिक तत्व की महत्ता उन्हें समूह परक बनाती है। तभी लोक गीतों की संज्ञा इन्हें मिलती है। इनका यही गुणा त्मक तथ्य कला गीतों के तथ्य से भिन्न है।

प्रोफेसर किटरिज और जेम्स ग्रिम लोक गीतों का निमार्णकर्ता जन-समूह को ही मानते हैं। आदिम मानव समाज, नृतत्व शास्त्र एवं समाज विज्ञान के विज्ञाता भी पर्याप्त प्रमाणों से इस बात की पुष्टि करते हैं कि मानव प्रारम्भ से ही समूह में रहता आया है और उसने अपने मूल भावों की अभिव्यक्ति सदा सामूहिक गीतों में की है। विश्व भर के कार्य और उत्सव लोक गीतों से पूर्ण होते हैं। शास्त्रीय संगीत के विद्वान, गीतों को लयबद्धता एवं भाव सबलता का प्रमाण मानते हैं। वे सारे संसार के लोक गीतों की धुनों में भारतीयता का संमिश्रण एवं सार पाया जाना सिद्ध करते हैं। विश्व के लोक गीतों का लक्षण बताते हुए एक पाश्चात्य विद्वान लिखते हैं – "फ्रान्स के गीत या तो सुन्दर [स्वादु] होते हैं या नाटकीय जर्मन गीत बोझिल एवं हृदय-स्पर्शी सामान्य योरोपीय गीत गेय गुनगुनाने योग्य पुष्ट एवं असम्बद्ध रूसी गीत उदास और मनगढ़ स्पेनी मंद और स्वप्निल तथा हिब्रू गीत आध्यात्मिक और प्रभावशाली होते हैं। अमरीकी नीग्रो गीत विलक्षण, सुन्दर एवं गहरी मार्मिकता लिए होते हैं'[1]

/हिन्दी साहित्य कोष के संपादकों ने अपने विशद ग्रंथ में लोक गीत नाम द्वारा १ लोक में प्रचलित गीत २ लोक निर्मित गीत ३ लोक विषयक गीत आदि अर्थ संकेत दिये हैं। फिर लोक गीत का स्पष्ट विवेचन करते हैं और लोक सृजनकर्ताओं के निर्वैयक्तिक गीतों को लोक गीत बताते हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण लोकाभिव्यक्ति है। >

लोक गीत लोक के लिये अपार ज्ञान के स्रोत हैं। वसुधा पर मानवता का अभ्युदय गीत शिक्षा का ही अमृत फल है। इसी साहित्य केन्द्र से हमें सारी कलाओं की व्यंजनाएं मिलती हैं। लोक गीत हमें समाज-सापेक्ष नियम सिखाते हैं नीति बताते हैं एवं अपने कार्य में ध्यान केन्द्रित कराते हैं। इनमें बुद्धि को *सत्यय की ओर ले जाने वाली एक* महान शक्ति है। भारतीय लोक अति प्राचीन समय से गीत गाता आया है। उनमें गीता का अपना गृहस्थ है और उसमें उनका अनुगामिनि परिवार है। वह व्याकरण के संज्ञा शब्द की भांति आदमी, जानवर जाति स्थान और गुण आदि प्रत्येक वस्तु की संश्लिष्ट गौरव गाथा लिये हुए है। वास्तव में गीत मानव जीवन के छाया-स्वरूप पुरातन संगी हैं। उसके हर पग के साथी हैं। फिर भी कभी कभी कोई भारतीय साहित्य शास्त्री लोक गीत समूह काव्य को देखकर नाक भौंह सिकोड़ते दिखाई देते हैं और गीत संग्रह के

१ भारतीय लोक साहित्य—श्याम परमार

हानि - लाभ विषयक प्रश्न भी पूछ लेते हैं। किन्तु ये प्रश्न उन्हें रसिक विचार से ही करने चाहिये क्योंकि उसीने भारत भूमि को तमाम दुनिया से अनुपम बनाया है। मनुष्य के लिए प्रकृति के उन्माद से उन्मत्त होना स्वाभाविक ही है। जब प्रकृति का रूप सौन्दर्य ही आकर्षक एवं मनमोहक हो तो उसका दास [मनुष्य] कब कुंठित रह सकता है ? अस्तु, मैं यहां उन सब महानुभावों की शंका का समाधान लोक गीतों की उपादेयता का महत्व बताकर करना चाहता हूं।

गीतों में विवाह और जन्म के अवसरों को बड़े सरस ढंग से गाया जाता है। इसलिए गीतों द्वारा मानव रीति रिवाजों का सरल रहन-सहन ही सामने आता है। उनमें न औसर है, न दहेज, न पर्दा है, न अनमेल विवाह है। केवल अलौकिक आदर्शों के ही पाठ मिलते हैं। मातृ पितृ भक्ति, आज्ञापालन, पतिव्रत धर्म, भाई बहिन का प्रेम, पति-पत्नी का सुखी जीवन, सतीत्व की रक्षा, मीति के बोल, सरल शिक्षा, धीरज और साहस, धूरता - वीरता आदि की अनेक कोमल कथाएं गीतों में उच्च आदर्शों सहित व्यक्त हैं। गीत का मानव चरित्र के गठन पर प्रभाव पड़ता है। क्योंकि वे उनके अभिन्न मित्र हैं। और वे साधुता की ओर ही ले जाते हैं। गांव के वृद्ध स्त्री पुरुषों से वार्तालाप किया है और वे जानते हैं कि गीतों से उनमें कैसी नीतिमयता आ जाती है। गीतों को सुनकर जब हम अपने चरित्र को टटोलते हैं कि हममें ये गुण कहां तक विद्यमान हैं और फिर उन्हें धारण करने का प्रयत्न करते हैं। सास-बहू की कलह, देवरानी जेठानी तथा ननद-भौजाई की लड़ाई और नव वधू के साथ दुर्व्यवहार करने वाली स्त्रियों को सन्मार्ग दिखाने के पथ प्रदर्शक हैं। गीतों में दुष्टों के कुकर्म की सजा को सुनकर तो कितने ही व्यक्ति गिरते गिरते बचते हैं। कौन सा ऐसा स्त्री पुरुष होगा जो गीतों की पवित्रता और स्वच्छता सुन लेने के बाद अपने चरित्र को सशक्त बनाने के लिए प्रेरित न हुआ हो ? इनकी त्याग विराग भावना से चरित्र शुभ गुणों से भरने लगता है। यह प्रभाव बालक, युवा और वृद्ध पर अनायास ही पड़ता रहता है। लोक गीत मानव - मात्र के अनुपम आदर्श हैं। जिससे इन्हें हृदय में स्थान दिया गया है, सफलता उनकी अपनी सीख है।

लोक गीतों का अध्ययन करने से हमें अपने देश के रंगीले स्थान, सुन्दर वस्तुएं, कला-कारीगरी और रीति प्रथाओं का परिचय मिलेगा। जिनसे कवियों, लेखकों, नेताओं और कलाकारों को पर्याप्त लाभ होगा। इनके संग्रह संपादन से मौखिक एवं विस्मृत-साहित्य की रक्षा हो जायेगी और भारी जाति के बुद्धि विवेक तथा रचना विधान के पवित्र तत्वों की अन्य कवियों से तुलना करना सम्भव होगा। कविता की नवीन विधाओं पर लोक गीतों की सरसता का प्रभाव भी उनके लिपिबद्ध होने से ही पड़ेगा। आधुनिक कविता की कृत्रिमता की अपेक्षा लोक गीतों की

स्वाभाविकता का असर मानव मात्र पर अधिक शीघ्र एवं स्थायी होगा। इसके द्वारा जन-साधारण को भी प्रभावित किया जा सकता है। इन गीतों में असंख्य सुन्दर, अनोखे, सरल एवं उपयोगी शब्द मिलते हैं, जिनको प्रकाशित करवा देना ही राष्ट्रभाषा की उन्नति में श्रेष्ठ सहयोग है। हिन्दी साहित्य में प्रवाद, पहेलियों, कहावतों, और चटपट मुहावरों की अभी अत्यन्त आवश्यकता है। लोक नाटकों और उनकी शैली से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इन नाटकों में अनेक मान वीय परिस्थितियों के सफल चित्रण मिलते हैं। प्रेमी को पाने का प्रयत्न, विघ्नों के बाद फल प्राप्ति, विश्वासघात, दुर्घटनाएं, सौतिया डाह, पहेलियों द्वारा सौभाग्य निर्माण पुनर्जीवन की कल्पना, स्वर्ग-नरक, भूत प्रेत, डायन-स्यारी, परीलोक, पशुओं की मनुष्य सेवा, प्रतिज्ञा की दृढ़ता, भावृत्ति, श्रुवक, सख्या, वचन, लोक साहित्य के गंभीर तत्व हैं। संस्कृत शास्त्रियों व वैदिक वाङ्मय का मुंह फुलाकर अभिमान रखने वाले लोगों ने अपनी पेटपूर्ति के लिए दुनिया को बहुत गुमराह किया। उन्होंने धर्म के नाम पर अन्य लोगों को मूर्ख बनाने की सदव चेष्टा की है। प्राचीन शिक्षा शास्त्रियों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने जन साधारण को पढ़ने से रोका है। बाहर जाने से मना किया है। छुप छिप कर पढ़ या बढ़ जाने पर उसका सर्वनाश करवाया है। केवल कबीर नानक, रैदास, मीरां जैसे भक्ति संप्रदाय के उन्नायक संत ही इसके अपवाद हैं।

वैदिक धर्मावलम्बियों ने अपने आप को सर्व-सर्वा बनाये रखने के लिए प्रत्येक संस्कार को वैदिक मंत्रों से पूर्ण करने का विधान प्रचलित किया है। जन साधारण के लोकाचार को बंद करने का भारी प्रयत्न भी किया है। मगर प्रतिभा पर किसी जाति या वर्ग विशेष का अधिकार नहीं रहता है। प्रकृति का न्याय मानव मात्र पर एक जैसा होता है। तभी तो यह आचार व्यवहार आज भी ज्यों का त्यों चल रहे हैं।

लोक गीत क्या है — समस्त जन-समाज में चेतन अचेतन रूप में जो भाव नाएं गीत-बद्ध होकर व्यक्त हुईं, उनके लिए लोक गीत उपयुक्त शब्द है। यह शब्द जन समुदाय द्वारा गाये जाने वाले गीत विभागों का एक विशेष परंपरा युक्त गीतात्मक सूत्र है। गीतों की प्राचीनता तथा सत्यता हमें उनके मौखिक रूप से प्राप्त होती है। दादी-पोती और नानी-दोहिती के कथ्य संबंधों में यह अभिव्यक्ति विकसित होती है। भारतवर्ष में आर्य आगमन से पूर्व की मौखिक मूल मात्र-शिक्षा पद्धति वैदिक सभ्यता से भिन्न होती हुई भी मूल सभ्यता के रूप में अमर प्रवाहित एवं सतत् प्रवहशील है। आज भी प्रत्येक मांगलिक मौके पर आचार, परंपरा एवं अनुष्ठान को मनाने के लिए लोक गीत ही श्रेष्ठ माने जाते हैं।

भारतीय लोक साहित्य पृ० २१ डॉ० श्याम परमार

लोक गीत तो मानव-जीवन के वेद उपनिषद् पुराण और महाकाव्य हैं। समव तथा आरंभिक युग के वेद भी आर्य जाति के गीत ही थे। अत जिस प्रकार वेद आर्य संस्कृति के ज्ञानागार हैं, वैसे ही लोक गीत भी हमारी संस्कृति के भव्य भंडार हैं।

लोक गीतों की विशेषता — लोक गीतों की यह विशेषता है कि ये जीवन के साथ एकदम घुले मिले हैं। यह साहित्य जन-समुदाय का हीरक मंडित अमूल्य भूषण है। इसे हृदय का नवसर हार, कंठ का कंठाभूषण और कानों का शृंगार कहा जा सकता है। गीत जीवन के साथ तादात्म्य होकर चलते हैं। लोक इनकी आत्मा हैं और ये लोक की आत्मा हैं। किसी एक के नहीं सारे लोक का अपनत्व इनमें निहित है। गीत जनता की मौलिक भावाभिव्यक्ति है, लिखित साहित्य नहीं। लिखित होने पर तो उन पर देश व काल की छाया दिखाई देने लगती ह। मगर जन मानस का सरल स्वभाव उनसे कदापि अलग नहीं हो सकता। वह प्रेम और अभिन्नता को एकनिष्ठ भाव से व्यक्त करता रहता ह। पल पल की पवित्र भावनाएं लोक गीतों में गुंफित हैं। पारिवारिक पोशाक का कौनसा ऐसा आंचल है जो इन गीतों की लोकानुभूति से न गूंथा गया हो। जीवन की मृदुलता और कठिनाइयों की घड़ियां दोनों ही दशाएं गीतों में आकर मिली हैं। ज्ञान की सरलता और सत्यता, विचारों की गंभीरता एवं व्यापकता इन लोक गीतों में ऐसी ओत-प्रोत हो रही है कि इनके कलात्मक महत्व को देखकर आश्चर्य करना पड़ता ह। ये गीत दुख-सुख भरे जीवन का इन्द्रधनुष हैं। इनकी मौलिकता विशेषता आह्लाद आह्वान और मर्म अपने ही निरालेपन में तल्लीन ह।

गीतों का महत्व एवं उपयोगिता — मनुष्य अपने सांस्कृतिक विकास में पीढ़ियों से राग रंग रहस्य, एवं दुख-सुख की बातें लिये हुए चल रहा है। हर्ष और खुशी में उसने गीत गाकर आनन्द मनाया है और दुख व विषाद में भूलकर भी गीत द्वारा उसको सहन कर लेने की शक्ति पाई है। अत कहना पड़ता है कि लोक गीत मानव जीवन को प्रमुदित करने वाली एक अचूक औषधि है। दुख-सुख के समय मानव मन में जैसे भी भाव उठे वे सब रामबाण का काम कर गये। इनसे हमारी रागात्मक वृत्ति जागृति होती है, जिससे सारा संसार प्रिय भी लगता है। लोक गीत न होते तो दुखी और निराशामय संसार होता। लोक गीत विषाद को मिटाने, शोक को समेटने एवं दुख को मेटने वाले नित नये उपदेश हैं। विवाह, त्योहार पुत्र जन्म पर हर्ष का भाव — तो बहिन और बेटी की विदाई पर ये लौकिक-दुख की तीव्रता को सहने की शक्ति देते हैं। कहीं कहीं मृत्यु के अवसर पर भी लोक गीत या भजन गाकर आपत्ति वेला को शीघ्र व्यतीत किया जाता है। राजस्थान में वृद्ध की मौत पर हर के हिंडोले और शिशु की मौत पर 'छेड़े'

प्रचलित हैं। इन विरह गीतों को राजस्थानी मे झुरावा या भ्यरावा कहते हैं।

लोक गीतों के साहित्यिक अरमान भी हैं। ये विशुद्ध भावों से परिपूर्ण हैं। तीज और भात के गीत किसी भी भाई और बहिन को विह्वल कर दें। आलू, आम्बो, इमली, इकपंखियो महल, उमराव, निहाल्दे, नींबू, मारवी, नीमड़लो, नीमडलो, नागजी, नींदड़ली, मड़लो, बावलियो, मदली, पीपली, पपीयो, पद्मामाम्ब, पनजी, मरवो, मूमल, मिरगो, महुवा, सूवरो, सपनो, कुरजां, कसुमो, लहरियो, बल्लो और हिंडोळो आदि राजस्थानी लोक गीतों का महत्व जितना दाम्पत्य प्रेम के लिए संभव हुआ है, उतना किसी अन्य काव्य का नहीं। कितनी ही ऐसी काव्य व्यंजनाएं हैं जो हमारे पारिवारिक संबंधों को सशक्त बनाती हैं। लोक गीत प्रत्येक राष्ट्र की आत्मा होते हैं। ये प्राकृतिक प्रवृत्तियों का परिष्कार करके सुख शान्ति प्रदान करते हैं। सामूहिक लोक गीत मनोरंजक और रमणीय होते हैं। कृत्रिम सौन्दर्य की व्यवस्था के अभाव में मनुष्य को अपने मनोरंजन की स्वयं ही व्यवस्था करनी पड़ती है। छोटे नाळों पर, मोटे टीबों पर, खेतों और खोळों में पगडंडियों एवं पहाड़ों पर, सीर सांझे में ठके-वेके पर, संयोग वियोग में, रम्मत रास के रागात्मक अवसर पर सृष्टि के नाना रूपों के साथ मानव भावनाएं गीत बनकर उनके कंठ से निकलती हैं। खेती में हल चलाते हुए हळवा का गान, श्रम-कार्यों मे रामभणत, कुओं पर दूहों का संगीत, पशु चराते हुए छोरी का गाना और फागुन में धमालें बोलना मानव प्रकृति के नाना रूपों को व्यक्त करते हैं। मनुष्य के इन्हीं गानों का नाम लोक गीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की उसकी उमगों की, उसकी करुणा की उसके रुदन की, उसकी समस्त सुख-दुख की कहानी गीतों में चित्रित है। मानवीय जीवन की प्रसन्नता व मुस्कराहट या क्रोध व प्रेम या राग व विराग का लोक गीतों में सर्वोत्कृष्ट रूप मिलता है। जन जीवन में व्यापक रहने वाली आकांक्षाएं और इच्छाएं जितनी लोक गीतों में स्पष्ट और सजीव होती हैं, वैसी अन्यत्र दुर्लभ हैं।

गीतों में उपमान एवं विशेषण—राजस्थानी लोक गीतों में पारिवारिक व्यक्तियों के उपमान एवं विशेषण बड़े बेजोड़ रूप से उपस्थित किये जाते हैं। उनमें पति को संवरजी, कंवरजी, ढोलामारू, बल्लामारू, गाडामारू पन्नामारू विलासो, मादीलो आंटीलो हठीलो मदछकियो, मनभरियो जैसे अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया है, पत्नी को इन्ही गीतों में, धण, गोरी, मरवण, नाजो, मृगानैणी, मोनितण हनक मिजाजण सदा सुरंगी नार आदि नामों से पुकारा जाता है। पिता को जसधर हुमायम, माता को रातादेई भाई को कोनकंवर और भाभाई को राधा आदि अपनत्व एवं श्रद्धा भरे उपमानों से गाया

जाता है। इनमें बहिन-बहिनोई, सास स्वसुर, जेठ जेठानी, देवर देवरानी, ननद-ननदोई और पुत्र-कन्या आदि के विशेषणों के सुन्दर रूप पाये जाते हैं। स्त्री सौन्दर्य के नखशिख उपमान तो गीतों की जान ही हैं। इनमें स्त्री शृ गार पति शृ गार, अभिवादन, आशीर्वाद के संकेत भी देखने योग्य होते हैं।

गीतों में प्रश्नोत्तर की कला — याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान एवं गार्गी जैसी विदुषी के वाद विवाद की भांति कुछ लोक गीतों में प्रथम प्रश्न करके फिर उसी में सीधा उत्तर दिया जाता है। इस संवादी पद्धति से गीत का रूप निखर जाता है। गीतों का मान और इज्जत भी प्रश्नोत्तर के ढंग से बढ़ती है। यह प्रवृत्ति सामाजिक भावना से संयुक्त होकर विशुद्ध रूप में चलती है और इसी से लोक मानस का सही पता पड़ता है तथा जीवन की विशालता का आकर्षण बढ़ता है। कांवरड़ी, कलाळी, पणियारी, रलाइड़ो, कुरजां सारसड़ी, सुपनो ओळूं, इकथंमियो महल, बायरो आदि जवाब सवाल के श्रेष्ठ गीतात्मक उदाहरण हैं।

पशु पक्षियों को संबोधन — पशु-पक्षी मानव जाति से निकटतम प्राणी हैं। जगत में इनसे पर्याप्त सहयोग मनुष्य को मिलता है। पक्षियों के आकाश में उड़ने की विद्या और ऊंट घोड़ों की शीघ्र संचार कला दुख-सुख के मौके पर मानव को सदा से सहायता देते आये हैं। महाकवि कालिदास ने अपने शृ गार वर्णन में अनेक पशु-पक्षियों को स्थान दिया है। लोक गीतों में भी ये पशु-पक्षी मानव के सुख-दुख की अनुभूति में सरोबार दिखाई देते हैं। काग, कबूतर कुरज तीतर कमेड़ी, सारस, सूवा मिरगो मोड़ी मिरगली, मिनड़ी, कुत्ती गऊमाता, रणकुम बैल, माजणो फरहलो, रीली घोड़ी सिंह, सूकर, रींछ आदि का सहयोग-वर्णन गीतों की एक प्रवृत्ति है। नाम जोड़ना संख्या बताना और बाट जोहना भी राजस्थानी लोक गीतों के कुछ विशिष्ट तथ्य हैं।

लोक गीतों में नारी का स्थान — लोक गीतों के सृजन में जितना महिलाओं ने हाथ बंटाया है, उतना पुरुषों ने संभवतया नहीं। नारी जाति सीधी, सरल एवं भावप्रवण होती है। उसके मृदुल कंठों ने अपने अभावों और भावनाओं की अभिव्यक्ति सुख तथा दुख दोनों मौकों पर गाकर ही प्रगट की है। नारियां पुरुषों की तरह वाद्य का सहारा नहीं चाहतीं। भाई से भेंट करते समय बहिन अपनी जीवन-गाथा गीतों में व्यक्त कर देती है। उसके स्नेहपूर्ण विलाप में भी एक लयपूर्ण संगीतात्मकता होती है। स्त्री गीतों में शृ गार, प्रणय, वियोग तथा वात्सल्य का भाव प्रचुर मात्रा में है। हर्ष, विषाद, प्रेम घृणा, उल्लास-उमंग, करुणा-विलाप भी नारी जीवन के बालिका वधू एवं जननी आदि रूपों में एक एक कर यथा अवसर मिलते रहते हैं। उसके जीवन का धार्मिक स्वरूप लोक गीतों में चित्रित है। वह प्रत्येक उत्सव, त्यौहार, रीति रिवाज, पर्व, प्रथा को मनाने के

लिए गाती है। इन सब के माध्यम से उसका संपूर्ण जीवन ही संगीतमय है।

राजस्थानी लोक गीतों में नारी के दो चित्र प्राय प्रस्तुत हुए हैं। वह एक ओर तो भाव-प्रवीण नागरी, पतिव्रता प्रियतमा, गृह-लक्ष्मी, सती-साध्वी तथा श्रेष्ठतम माता एवं सास है। उसके बालिका, युवती, प्रौढ़ा और वृद्धा के विभिन्न रूप अपनी सीमाओं में पूर्ण हैं। दूसरी तरफ स्त्री का अन्य रूप फूहड़, कर्कशा, कल्हगारी, कामणगारी, छिनाळ, जैमतो, जेठू आदि व्यवहारों से विभूषित भी है। स्त्री अपने सामाजिक संबंधों में माता, ननद, सास, देवरानी जेठानी, मासी, विमाता, सौत आदि कई रूपों में नियोजित है। इन सभी संबंधों के बीच गीतों में उसे सुन्दर उपमानों सहित अत्यंत मनोहर ढग से प्रस्तुत किया गया है। पत्नी-पदमनी, ननद सादरा (सुभद्रा), सास-सावित्री, देवरानी-बाला, भोली-नार, जेठानी-नारादूती, विमाता माई मा, सौक, मा जाई-सी के नामों द्वारा गाई जाती है।

लोक गीतों में महिला जीवन की सभी परिस्थितियों एव अवस्थाओं का अनुपम उल्लेख पाया जाता है। गीत उनके जीवन के बहुत प्रिय साथी हैं और वे बचपन से ही तन्मय होकर उन्हे गाया करती हैं। गीतों के काल्पनिक जगत की अभिव्यक्ति उनकी भावी इच्छाओं की पूर्ति के साथ शिक्षा का क्रम भी बन जाया करती है। नन्हीं बालिकायें लोक गीतों द्वारा अपने जीवन के रहस्यों की पूर्व जानकारी प्राप्त कर लेती हैं। गीतों की क्रियाओं में वे सभी बातें प्रत्यक्ष होती हैं, जो उसे बड़ी होने पर निभानी पड़ती हैं। प्राय देखा जाता है कि बालिकाओं के गीतों में गृहस्थी के कर्तव्य संभाल्ने की सहज स्वाभाविक भावना व्यक्त होती है। एक बालिका गीतों में बड़े चाव से मां की इजाजत लेकर ही ऊंचे मगरे पर जाना चाहती है। वहां से वह पक्की काचरियां लाने की इच्छुक है। उनको छीलकर छाकेगी और भमा को जिमायेगी। भैया उसका भाई है वह भमा की बहिन है—

> ऊंचे मगरे जाऊं ओ माय किरिया काचर लाऊं ओ माय
> छीलर्ण छमकाऊं ओ माय, बीरा नै जीमाऊं ओ माय
> बीरो म्हारो भाई ओ माय हूं बीरा री बाई ओ माय

बालिकाएं अपने छोटे भाइयों को सुलाने या खिलाने के लिए भी ममत्वपूर्ण लोरियां गाती हैं—

> लोई रे भाई लोई थारी मा करे रसोई
> रसोई में भाभा थारो बाप दिल्ली रो राजा
> लोरी म भाई लोरी, तनै दूध भरी कटोरी
> ऊपर सक्कर मोरी।

बालिकाओं के हृदय की भावुकता का परिचय उनके प्रारम्भिक जीवन से ही पाया जाता है। वे नानेरा, दादेरा, गौरी-पूजा, घुड़ला घुड़ला, अम्मा धीवड़ गुड्डे गुड्डी और साथण-सहेलियों से सबधी अनेक भावी विषयों पर दुख-सुख के गीत गाने आरंभ कर देती हैं। बचपन बीत जाने के बाद उनका मिलन बड़ी मुश्किल से होता है। उसी का चित्रांकन इस गीत में है —

बीरा रै बिवाह में बहिन सूं मिलस्यां
बाबल सू मिलस्यां मायड़ सूं मिलस्यां
साथण सू कद मिलस्यां ओ
साथण मेळी बोरी ओ

कीड़ी होस्यां नगरां फिरस्यां
नटणी होस्यां वास्यां चढ़स्यां
साथण सूं कद मिलस्यां ओ
साथण मेळी बोरी ओ

टाटी भोल मजबल बोसी
कद म्हारी भोवड़ी बोरी ओ
मगरै (बोरा) सारै साथण बोसी
कद म्हारी जिवड़ी सोरी ओ
साथण मेळी बोरी ओ

वास्तव में नारी जीवन की यह एक मार्मिक स्थिति है। लड़के बड़े होकर अपने बचपन के साथियों से हर जगह मिल सकते हैं, पर लड़कियां विवाहोपरांत अपनी सहेलियों का कदापि नहीं पा सकतीं। ये पीहर और खेल के गीत उसे बड़ी होने पर भूलने ही पड़ते हैं। बालिका से किशोरावस्था में पहुंच कर उसे अपने नये जीवन के गीत गाने होते हैं। इन गीतों में धना-धनी, सास-ससुर, और देवर-जेठ, नणद भोजाई आदि कुटुम्ब वालों के साथ अपने रहन-सहन और व्यवहारों का वर्णन होता है। कन्या का यह गीत व्यवहार ही उसका गृहरानी या गृह लक्ष्मी बना देता है। रमणी बन जाने पर उसके हृदय में सुमधुर, रमणीय एवं करुण कल्पनाओं के नव्य नीरद उमड़ पड़ते हैं। जिससे हर समय जीवन के अथाह समुद्र में गीतों की हिलोरें उठती रहती हैं। गीतों में स्त्री अपना सारा मन और मस्तिष्क लगा देती है। काल्पनिक वर्णनो मे उन्हें खूब सोचना पड़ता है जिसका प्रभाव उसकी बुद्धि पर पड़ता ही है। यही गीत स्वरों में अनुरंजित होते हैं और उनका सहज स्त्रैण कंठ उनका सहायक सिद्ध होता है।

बचपन से पीहर की धूल में खेलती हुई लाडली बेटी को औरों की होकर विदा होना पड़ता है। तब उसका जीवन एक नया प्रश्न बन जाता है। वह पिता के घर पर पराई बन जाती है। वह पशु की तरह दूसरों के हाथ सौंपा दी

जाती है । फिर तो वह कभी कभी अनजाने मौकों पर ही पुन अपने घर आ सकेगी —

> के मायूमी मैं मोसर-मोसर, के वीरा रै विवाह

कन्या की ससुराल गमन के समय कायल की उपमा दी जाती है। उसे वर क साथ विदा करते समय गीतों की हृदयद्रावक कल्पना से अभिनन्दित किया जाता है —

> बम बंद री म कोयल बन छंड छोड़ कठै चाली ?
> मारै अळ्ळै म बीवाई सुद्दिया भरी, बम बंद री बे कोयल
> थारी लात सहेलियां रमजमी बम बंद री म कोयल

उधर वही कन्या अपने ससुराल पहुंचकर पुन लोक गीतों के द्वारा भाव भगत करवाती है। उसके विवाहित जीवन के प्रत्येक कर्तव्य का उल्लेख इन गीतों में अभिव्यक्त हुआ है।

गीत एक स्फूर्तिप्रद क्रिया है। इसके द्वारा स्त्रियां अपनी अन्तरंग इच्छाओं को प्रकाश में लाकर जीवन की परतंत्रता से थोड़ी देर के लिए मुक्त हो जाती हैं। राजस्थान म नारियां अपन जेठ एव ससुर से बोलती नहीं हैं मगर जब उनके गीत गाने बैठती हैं, तब सारा हृदय खोलकर आगे धर देती हैं। अपने गहने-जेवर तथा मकानादि के अभीष्ट अभावों और अपनी सारी इच्छाओं का निर्भय होकर वर्णन कर देती है —

> सुसराजी म्हानै चोबारी चिणवाची
> बैठे म्हारी कुळ, कुळ बहू जी म्हारा राज
> जमा थी म्हूं ई केर विजावस्यां
> बेजारे री बेटी भरां, बरां नही जी म्हारा राज
> सुसराजी मैं बोली रा मीठा
> थमका मासू ना ना कुं जी म्हारा राज

देवरों को भी मीठे गीतों से खुश कर देती हैं—

> आज तो म्हारै देवरियै मैं सरधी नरमी लागी रे
> उळझळ करतो सीरो करदू रे
> थय लारो कोमी रे देवर म्हारा रे।

ऐसे गीत महिलाओं के सुख जीवन, उज्ज्वल चरित्र तथा प्रौढ़ प्रवृत्तियों के द्योतक होते हैं। नारी क पास तो अपने आप को खुलकर अभिव्यक्त करने का साधन केवल ये लोक गीत ही हैं।

नारी ने अपनी गहरी मनोवेदनाओं को गीतों मे गाकर समाज के सामने रखा है, अपने अन्तस्तल की पीड़ा का प्रगट करने का नारी ने गीत को एक सहज

और सरल माध्यम बना रखा है। मानव का प्रेमोद्यान सदैव नारी की देवसरि के गीतों के नीर से ही सिंचित होकर लहलहाता है । सुख या दुख कैसा ही समय क्यों न हो नारी ने अपना गान विसर्जन नहीं किया । उसने हंसी-विनोद और व्यंग की जो विद्युल्लता बिखेरी है, वह सर्वोच्च साहित्य का काता-सम्मत गुण है। इस प्रकार नारियों ने लोक गीतों में परंपरा, इतिहास और संस्कृति की संपत्ति को अपने कंठ के सहारे सुरक्षित रखा है।

भारतीय नारी परिवार के दैनन्दिन कार्यों में व्यस्त रहती है। इसीलिये वह गृहस्थ के प्रत्येक कार्य को गीत म गाकर मंगलमय भी बना देती है। हर घड़ी के कार्यों में उसके साथ लोक गीत लग रहते हैं। खेती, चाकी चूल्हा, चरखे आदि से ही स्त्री जाति की समृद्धि है। वे चरखा चलाती हुई गाती हैं–

चाल रै चरखला हाल रै चरखला
ठाकू तेरो लोवणी, माल गुलाबी माल
चरकू मरकूं फिरै घमेरो ममरी ममरी चाम

चरखा महिलाओं के लिए एक उत्पादन-क्रिया का साधन है। रूई पैदा करके कारीगरी के साथ कपड़ा बुनना और रंगना उनकी अपनी परंपरा है। ये घरेलु धन्धों के छोटे छोटे कार्य ही नारियों के कल्पना स्रोत हैं। इन्हीं से प्रेरित होकर वे गीत रचना करती हैं और सहयोगी वस्तु एव पात्रों के माध्यम से अपने वर्ग की घटनायें गुम्फित कर लेती हैं। इन लोक गीतों के साथ माताओं की लोरियां, बहिनों का स्नेह और पत्नियों की विरह वेदना बड़ी तिक्त एवं हृदयस्पर्शी स्वाभाविकता से अंकित है। ये लोक गीत इतिहास, भूगोल पिंगल व्याकरण, तर्क और न्याय को आत्मसात किये हुये हैं और प्रकृति व कला का कोई प्रेरक तथ्य इनकी दृष्टि से अछूता नहीं रहा।

शिक्षा के विद्या-मन्दिर–लोक गीत नारी शिक्षा के महान केन्द्र हैं। इनकी शिक्षा को हृदयंगम करने के लिए कोई खास स्थिति, समय एवं व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती। यह तो स्वतन्त्र रूप से हर समय प्रत्येक जन मन में जमा होती जाती है। लोक गीत अनादि काल से भारतीय संस्कृति के अभिन्न तथ्य की भाँति मानव के साथ साथ चलते आये हैं। राजस्थान को तो गीत रत्नाकर कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहां के गीत अपनी प्रादेशिक अभिव्यंजना के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। ये संगीत तथा साहित्य दोनों पक्षों से संपूर्ण होते हैं। उपदेश और नीति की दृष्टि से लोक गीत बड़े गौरवशाली परंपरा के नियामक हैं और यहां की स्त्रियों के लिए ज्ञान कोष का काय करते हैं। इस ज्ञान को ग्रामीण जनता आंखों द्वारा ग्रहण नहीं करके, कानों द्वारा ग्रहण करती है। नारी इन्हीं गीतों से शील, साहस, सतीत्व, सहृदयता एव प्रेम आदि अनेक आदर्श गुणों के

जाती है। फिर तो वह कभी कभी अनजान मौकों पर ही पुनः अपने घर आ सकेगी —

> के थावूंली में मौसर-मोसर के बीरा रै विवाह

कन्या को ससुराल गमन के समय कोयल की उपमा दी जाती है। उसे घर के साथ विदा करते समय गीतों की हृदयद्रावक कल्पना से अभिनन्दित किया जाता है —

> बन खंड री ओ कोयल बन खंड छोड़ कठै चाली ?
> थारै आळे म दीवाळै गुड़िया भरी, बन खड री ओ कोयल
> थारी बात सहेलियां उणमणी बन खंड री ओ कोयल

उधर वही कन्या अपने ससुराल पहुंचकर पुनः लोक गीतों के द्वारा भाव प्रगट करवाती है। उसके विवाहित जीवन के प्रत्येक कसाव्य का उल्लेख इन गीतों में अभिव्यक्त हुआ है।

गीत एक स्फूर्तिप्रद क्रिया है। इसके द्वारा स्त्रियां अपनी अन्तरंग इच्छाओं को प्रकाश में लाकर जीवन की परतंत्रता से थोड़ी देर के लिए मुक्त हो जाती हैं। राजस्थान में नारियां अपने जेठ एवं ससुर से बोलती नहीं हैं मगर जब उनके गीत गाने बैठती हैं, तब सारा हृदय खोलकर आगे धर देती हैं। अपने गहने-जेवर तथा मकानादि के अभीष्ट अभावों और अपनी सारी इच्छाओं का निर्भय होकर वर्णन कर देती हैं —

> सुसराजी म्हानै चोबारी चिणवादो
> बैठे चारो कुळ कुळ बहू जी म्हारा राज
> बबड़ जो म्हैं ई केर चिणावस्यां
> बिजारै रो बेटो बयो बरो नहीं जी म्हारा राज
> सुसराजी थें बोली रा मीठा
> दमड़ा पास्यूं ना ना करो जी म्हारा राज

नटखट देवरों को भी मीठे गीतों से मुग्ध कर देती हैं —

> आज तो म्हारै देवरियै रै सरधी मरजी लागी रै
> घडसाळ करतो सीरो करदूं रै
> पण सारो कोनी रै देवर म्हारा रै।

गीत महिलाओं के तृप्त जीवन, उज्ज्वल चरित्र तथा प्रौढ़ प्रवृत्तियों के द्योतक होते हैं। नारी के पास तो अपने आप को खुलकर अभिव्यक्त करने का साधन केवल ये लोक गीत ही हैं।

नारी ने अपनी गहरी मनोवेदनाओं को गीतों में गाकर समाज के सामने रखा है, अपने अन्तस्तल की पीड़ा को प्रगट करने का नारी ने गीत को एक सहज

और सरल माध्यम बना रखा है। मानव का प्रेमोद्यान सदव नारी की देवसरि के गीतों के नीर से ही सिंचित होकर लहलहाता है । सुख या दुख कैसा ही समय क्यों न हो नारी ने अपना गान विसर्जन नहीं किया । उसने हसी-विनोद और व्यंग की जो विपुलता बिखेरी है, वह सर्वोच्च साहित्य का कान्ता सम्मत गुण है। इस प्रकार नारियों ने लोक गीतों में परपरा, इतिहास और सस्कृति की सपत्ति को अपने कठ के सहारे सुरक्षित रखा है।

भारतीय नारी परिवार के दनन्दिन कार्यों में व्यस्त रहती है। इसीलिये वह गृहस्थ के प्रत्येक कार्य को गीत में गाकर मगलमय भी बना देती है। हर घडी के कार्यों में उसके साथ लोक गीत लगे रहते हैं। खेती, चाकी चूल्हा, चरखे आदि ये ही स्त्री जाति की समृद्धि हैं। वे चरखा चलाती हुई गाती हैं–

> चाल रै चरखला हाल रै चरखला
> दाडू तेरो लोवलो, लाल गुलाबी माल
> चरकू मरकू फिरै चमेरी मथरी मथरी चाल

चरखा महिलाओं के लिए एक उत्पादन-क्रिया का साधन है। रुई पैदा करके कारीगरी के साथ कपड़ा बुनना और रंगना उनकी अपनी परपरा है। ये घरेलू धन्धों के छोटे छोटे काय ही नारियों के कल्पना बोध हैं। इन्हीं से प्रेरित होकर व गीत रचना करती है और सहयोगी वस्तु एवं पात्रों के माध्यम से अपने वर्ग की घटनायें गुम्फित कर लेती हैं। इन लोक गीतों के साथ माताओं की लोरियां, बहिनों का स्नेह और पत्नियों की विरह वेदना बड़ी तिक्त एव हृदयस्पर्शी स्वाभाविकता से अकित है। ये लोक गीत इतिहास, भूगोल, पिंगल, व्याकरण, तर्क और न्याय को आत्मसात किये हुये हैं और प्रकृति व कला का कोई प्ररक तथ्य इनकी दृष्टि से अछूता नहीं रहा।

शिक्षा के विद्या-मन्दिर–लोक गीत नारी शिक्षा के महान केन्द्र हैं। इनकी शिक्षा को हृदयगम करने के लिए कोई खास स्थिति, समय एवं व्यवस्था को आवश्यकता नहीं होती। यह तो स्वतंत्र रूप से हर समय प्रत्येक जन मन में जमा होती जाती है। लोक गीत अनादि काल से भारतीय संस्कृति के अभिन्न तथ्य की भांति मानव के साथ साथ चलते आये हैं। राजस्थान को तो गीत रत्नाकर कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहां के गीत अपनी प्रादेशिक अभिव्यजना के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। ये सगीत तथा साहित्य दोनों पक्षों से संपूर्ण होते हैं। उपदेश और नीति की दृष्टि से लोक गीत बड़ गौरवशाली परपरा के नियामक हैं और यहां की स्त्रियों क लिए ज्ञान कोष का काय करते हैं। इस ज्ञान को ग्रामीण जनता आंखों द्वारा अंगीकृत नहीं करके, कानों द्वारा ग्रहण करती है। नारी इन्हीं गीतों से शील, साहस, सतीत्व, सहृदयता एव प्रम आदि अनेक आदर्श गुणों के

ज्ञान एवं लाभ को प्राप्त करती है। छोटी-छोटी बालिकायें माताओं से अपने भावी वधू जीवन में पृथक पृथक प्रकृति वाले लोगों के साथ पृथक पृथक परिस्थितियों में रहने की बातें इन लोक गीतों का गुंजार सुन सीखी हैं, जो नये जीवन में प्रवेश करने पर उन्हें सुखी गृहस्थ की नारी [रानी] बना देने में समर्थ होते हैं। वह मां का प्यार, बहिनों का दुलार, सखी-सहेलियों का प्रेम भूलकर श्वसुर, पति, सास और जेठानियां आदि से लाड़प्यार तथा दुलार को पाने की अधिकारिणी बन जाती है। वह अपने शिष्ट व्यवहार से सारे घर को सम्पन्न, यशस्वी एवं मंगलमय कर देती है। सचमुच राजस्थान की नारी घर की शोभा, शृंगार, त्याग और तपस्या की देवी है। धरती की भांति सहिष्णु, गंगा की तरह निर्मल, हिमालय की तरह अडिग और शरत् बाबू के शब्दों में मंदिर की भांति पवित्र है। सद्गुणों से संपन्न महिलाओं की उक्तियां भी गंभीर और चारित्रिक महत्ता को व्यक्त करती हैं। उनमें छिछोरपन या हलकापन कभी नहीं आ पाता। पीहर से विदा होती हुई एक वधू की मनोभावना को संवादात्मक ढालों में इस प्रकार गाया गया है

> भंवर करहला थारा मारूजी पाछा मोड़,
> राजीड़ा ढोला ओळूं घणी आवै म्हारा बाबोसा री।
> सुन्दर गोरी ओळूं थारी धरी रे निवार
> चम्पक वरणी, बाबोसा री ओळूं सुसरोजी थारी भांगसी।
>
> भंवर मारूजी घुड़लाजी पाछा फेर
> राजीड़ा ढोला ओळूं घणी आवै म्हारी माय री।
> सुन्दर गोरी ओळूं थारी धरी रे निवार
> मिरगा नैणी माऊजी री ओळूं सासूजी थारी भांगसी।

राजस्थानी में ओळूं याद को कहते हैं। इस गीत में पत्नी पति से प्रार्थना करती है कि केवल एक बार प्रियतम अपने ऊंट को लौटा लो। राजन! मुझे अपने पिता की बहुत याद आती है। पति उसको विश्वास दिलाता है कि चम्पकवरणी प्रियतमा, तुम पिता की याद छोड़ो, पिता की कमी आगे तुम्हारे श्वसुरजी पूरी कर देंगे। फिर वह अपनी मां की बात कहती है। तब वह पुनः कहता है कि मां की कमी तुम्हारी सासूजी पूरी कर देंगी। इस तरह नव वधू को अपने नवीन जीवन में कर्तव्यों की याद भी दिला दी जाती है और उसके नये परिवार में ही अपने परिवार का समाहार होना आवश्यक बना दिया जाता है।

एक अन्य गीत में सास एवं बहू का सुखद संवाद है। इस गीत में नव वधू अपने परिवार रूपी आभूषणों की उपमाओं में ससुराल के संबंधों को पूर्ण आत्म समर्पण के साथ व्यक्त करती है

म्हारै आंगण आंबो मोरियो
पसवाड़ै की पसरी गज बेस
सहेल्यां म्हें आंबो मोरियो
म्हारा सासूजी पूछे बहू थारै महलां रो मरम बताय
सहेल्यां म आंबो मोरियो ।
सासूजी महलां की महलां कोई करी
महलां म्हारा देवर जेठ ।
सासूजी महलां की म्हारो सब परिवार
सहेल्यां म्हें आंबो मोरियो ।

इसी गीत का एक अन्य रूपान्तर है

मधुबन रो आंबो मोरियो
ओ तो पसरियो आखी मारवाड़
बहू रिमझिम महलां ऊतरी
आई कर सोळा सिणगार,
सासूजी पूछनी बहू म्हारा
महलां पहर सिणगार
मधुबन रो आंबो मोरियो
म्हारा सुसरोजी गढ़ रा राजवी
सासूजी म्हारा रतन भंडार
मधुबन री मे आंबो मोरियो

मधुबन का यह आम्र मौर खिल आया है। वह सारे मारवाड़ में फैल गया है। सुखी संपन्न कुटुम्ब का प्रतीक यह आम्र वृक्ष है। सोलह शृ'गार करके बहू महल से उतरी तब सासू ने कहा बहू अपना शृ'गार तो हमें बताओ? तब मुस्कराकर बहू कहती है मेरे ससुर गढ़ के राजवी हैं और सासू रत्नों की भंडार है। इसी तरह सारे परिवार की सराहना मधुबन के आम्रमौर की भांति फैली हुई बताकर बहू कहती है कि वह सासू की कोख पर न्यौछावर है। तब सासू कहती है कि बहू मैं भी तुम्हारे बोल पर बलिहारी जाती हूं कि तुमने सारे परिवार को इस स्नेह से दुलराया है।

स्त्री का सच्चा आभूषण तो उसका परिवार ही है और पति की सेवा ही उसका शृंगार है। तुलसीदासजी ने भी कहा है—

एक ही धर्म एक व्रत नेमा, काय वचन मन पतिपद प्रेमा।

लोक गीतों की शिक्षा तुलसीदासजी की कविता की व्यापकता की तरह राजस्थान के प्रत्येक घर और गांव की नारियों में व्याप्त है। वह एक किसान की झोंपड़ी से लेकर राजमहलों की महारानियों तक यही उज्ज्वल संदेश देती है।

गीत रचना में नारी का योग—घर गृहस्थी के सांस्कृतिक एवं पारिवारिक लोक गीतों की रचयिता प्रायः नारियां ही हैं। इन्होंने भांति भांति के अवसरों पर अनेक प्रकार के गीत रचे हैं। नारी के गीतों में करुण रस के मनोज्ञ झरने प्रवाहित हैं। इनकी भाषा बड़ी सरल एवं सरस होती है। स्त्रियों ने अपनी वृत्तियों के अनुरूप, सहज स्फूर्तिवश, औपचारिक एवं स्वयं के मनोरंजनार्थ इस साहित्य का निर्माण किया है। प्रकृति प्रेम तो इनमें कूट कूट कर भरा हुआ है और स्वाभाविकता इनका अविच्छिन्न गुण है। यहाँ आदर्श गृहस्थी का चित्र स्पष्ट रेखाओं में अंकित मिलता है। ये गीत मानव इतिहास के सुनहरे अनुभव हैं। अधिकांश लोक गीतों के सृजन का श्रेय नारियों को ही प्राप्त हो सका है। यह देवताओं एवं सिद्ध कवियों द्वारा सृजन किया हुआ साहित्य नहीं, ग्राम स्त्रियों के मुखारविन्द से निःसृत अपौरुषेय वाङ्मय है, जिसका तात्पर्य लोक साहित्य से है। अतः लोक साहित्य में विविध स्त्रियों के गीतों के अटूट खजाने भरे हुए हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे सांस्कृतिक गीत अपौरुषेय वाङ्मय कहलायेंगे। गीत ही क्या, अधिकांश कथायें, कहावतें पहेलियां भी इसी वाङ्मय के अन्तर्गत आती हैं। पर गीतों का सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से पूर्ण अध्ययन होना चाहिये। क्योंकि समाज द्वारा सदियों से सताई जाने वाली स्त्री जाति के इन वैविध्य पूर्ण रत्नों का अब उनके स्वर, लय, टेक, चरण एवं काव्य आदि की सृजन क्रिया का मूल्यांकन किया जाना अत्यन्त आवश्यक बन गया है।

लोक गीतों के महिला समाज द्वारा सृजन किये जाने के विषय में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशित 'क्यूं दीनी परदेस' की भूमिका में विजय दानजी देथा ने लिखा है 'लोकगीतों की कल्पपूर्ण अभिव्यंजनाओं का सर्जक कौन है और वह सृजक स्वयं को किस प्रकार इतनी सदियों से छिपाये हुए चले आ रहा है। लोक गीतों में वर्णित विषयों की महत्ता, कल्पनाओं की अनाखी सूझ बूझ, अलंकारों का सहज ताना-बाना और उनकी अभिव्यक्ति के सामाजिक दायित्व को आत्मसात करते हुए क्या हम सृजक के अस्तित्व का आभास नहीं लगा सकते? लोकगीतों रूपी भव्य महल के असंख्य गवाक्षों में से किसी एक गवाक्ष में बैठकर क्या हम अपनी कल्पना से इस महल के वैभवशाली स्वामी का पता नहीं लगा सकते? सच है कि कला में कलाकार अदृश्य है! किन्तु अदृश्य होने मात्र से ही कला का कारण अस्तित्व विहीन नहीं होता। वस्तुतः कलाकार के अनुभूतिमय और संवेदनशील मन में ही कला का जीवन प्रश्रय पाता है और कलाकार अपने को कितना ही छिपाने का प्रयत्न करले उसके अस्तित्व की झलक निरपेक्षतम कला में भी मिल ही जाती है।

तब लोकगीतों का निरपेक्षतम एवं अदृश्यतम सर्जक कौन है? कहने को

मृत्यु इत्यादि सोलहों संस्कारों के अनुसार।

निश्चय है कि ये सभी वर्गीकरण लोकगीतों की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक हैं और सभी में सम्यक्‌ स्थिति का अभाव ही मिलता है। कहीं वर्गीकरण में परस्पर सहज विभागों को ले लिया गया है तो कहीं उसे अनेक विभागों में बांट गया है। जहां विभागों का अभाव है, वहां वर्गीकरण की सुविधा का लाभ नहीं मिलता और जहां विभाजन को बढ़ाया गया है, वहां समान प्रवृत्तियों का पुनरावर्तन भी हो गया है। ये सभी वर्गीकरण के स्वरूप मुख्यतया उसी सामग्री से संबंधी मानने चाहिये जो विशिष्ट संग्राहक एवं विद्वान ने एकत्रित की है और अपने अध्ययन की मुख्य प्रवृत्ति को स्थापित करने की दृष्टि से उसमें उल्लिखित किये हैं।

अतः राजस्थानी लोक गीतों के विषय और प्रकारों का वर्गीकरण करना कोई साधारण प्रयास नहीं है। इनके असंख्य विषय और अनन्त प्रकार हैं। विभिन्न क्षेत्रों तथा जातियों के लोक गीतों में प्रकार ढूंढने पर प्रतीत होता है कि राजस्थान के सभी प्रदेशों और जातियों के लोक गीतों में अधिकांशतः समानता है। अतः लोक गीतों का सामान्य वर्गीकरण होगा। [विषयानुसार गीतों का विभाजन] सामाजिक गीत, संस्कारों और रीति-रिवाजों के गीत, धार्मिक विश्वासों के गीत, वैलासिक रस सृष्टि के गीत और काम के गीत। गेय शैली की दृष्टि से यही वर्गीकरण हो सकता है १ सामूहिक गीत २ एकाकी गीत ३ नृत्य गीत ४ नाट्य गीत और ५ ख्याल गीत। गायक-गायिकाओं की दृष्टि से लोक गीतों के तीन भेद कर सकते हैं– १ महिलाओं के गीत २ पुरुषों के गीत ३ बालक और बालिकाओं के गीत। भारतीय विद्वानों ने अपने अपने दृष्टिकोण से लोक गीतों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भारतीय गीतों को ११ श्रेणियों में विभक्त किया है। श्री रामचन्द्र भालेराव ने गीत संग्रह की योजना में एक बार चार विभाग किये थे अर्थात प्रथम संस्कार विषयक द्वितीय माहवारी, तृतीय सामाजिक व ऐतिहासिक चतुर्थ विविध गीत। इस योजना में ९० प्रकार के गीतों की सूची थी। ब्रज लोक साहित्य के विद्वान डॉ सत्येन्द्र ने गाने के उद्देश्य को लेकर सरस गीतों को दो भागों [अनुष्ठान संबंधी और मनोरंजन संबंधी] में बांटकर गायन के समय के मुताबिक विभाजन किया है। इनके वर्गीकरण में पांच विभाग मान्य हैं। डॉ शंकरलाल यादव ने लोक गीतों को लघुगीत और प्रबंध गीत नामक दो श्रेणियों में बांटा है। फिर लघु गीत के पांच प्रकार और प्रबन्ध गीत के [लोक गाथात्मक] चार प्रकार लिखे हैं।

सीता, दमयन्ती तथा लीला ने अपने धूलि धूसरित मणियां नामक लोक गीत विवेचन-ग्रंथ में गीतों के ६ खंड करके उनको १४ प्रकार में विभक्त किया

है। डॉ श्याम परमार लोक गीतों को मुक्तक और प्रबन्धक दो श्रेणी मानने के बाद उनके पांच प्रकार बताते हैं। श्री कृष्णदेव उपाध्याय ने संस्कारों को महिलाओं की अवसरोपयुक्त भाव भंगिमाओं से निखरे माधुर्य, संगीत एवं ऋतु परिवर्तन से पैदा हुए गीतों के भेदों की दृष्टि से भोजपुरी लोक गीतों का वर्गीकरण किया है। श्री रामसिंह और उनके साथियों ने राजस्थानी लोक गीत साहित्य को पुरुष गीत और स्त्री गीत दो भेद बताकर इनके साथ बाल गीत नामक तीसरा भेद भी किया है। फिर इन तीनों के उपभेद भी बताये हैं। नरोत्तमदासजी स्वामी ने इन भेदों के बीस स्थूल प्रकार और २२६ सूक्ष्म भेद बताये हैं। श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने सात तथा श्रीमती स्वर्णलता अग्रवाल ने भी राजस्थानी लोक गीतों को विभिन्न प्रकार से विभाजित किया है। डॉ स्वर्णलता अग्रवाल ने संस्कार संबंधी गीत, व्यवसायिक गीत, अवसर के गीत एवं कलात्मक अथवा मनोरंजन संबंधी नाम से चार श्रेणियों में राजस्थानी लोक गीतों के करीब ५० प्रकार सम्मिलित किये हैं। श्रीमती अग्रवाल का यह विषय वर्गीकरण सन्तोषजनक नहीं है। श्री ओमप्रकाश ने बाल गीत, स्त्री गीत और पुरुषों के गीत नाम से मालवीय लोक गीतों का तीन प्रकार से वर्गीकरण किया है।

श्री मनोहर शर्मा ने राजस्थानी लोक गीतों में पौराणिक प्रकारों पर एक शोधपूर्ण निबन्ध लिखा है। उन्होंने धार्मिक सामाजिक और ऐतिहासिक प्रचलित नाम प्रकार भी बताये हैं। श्री गींदाराम वर्मा ने राजस्थानी लोक गीतों का महत्व सामाजिक पारिवारिक और संगीत तीन प्रकार की दृष्टि से माना है। उन्होंने शेखावाटी के लोक गीतों का भी वर्गीकरण किया है, जो नीचे दिया जा रहा है- १ त्यौहारों के लोक गीत २ पर्वों के लोक गीत ३ सामाजिक एवं पारिवारिक सन्तों एवं ऐतिहासिक वीर पुरुषों के गीत। श्री देवीलाल सामर ने लोक गीतों को ६ प्रकार से समझने का प्रयास किया है। साथ ही उन्होंने निम्नलिखित तीन और प्रकार सम्भव बताये हैं- १ मरुभूमि के गीत [बीकानेर, जैसलमेर आदि के गीत] २ पहाड़ी प्रदेश के लोक गीत [डूंगरपुर, उदयपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, सिरोही और आबू आदि क्षेत्र के गीत] ३ चंबल तथा बनास की समतल भूमि के लोक गीत [कोटा, जयपुर, भरतपुर, अलवर, करौली तथा धौलपुर आदि के गीत]

सूर्य करण पारीक

आज से तीस वर्ष पूर्व स्वर्गीय पण्डित सूर्यकरणजी पारीक ने राजस्थानी लोक गीतों में क्षेत्र विस्तार की कल्पना निम्नलिखित तालिका लिखकर की थी। तालिका इस प्रकार है १ देवी देवता और पितरों के गीत २ ऋतुओं के गीत ३ तीर्थों के गीत ४ व्रत, उपवास और त्यौहारों के गीत ५ संस्कारों के गीत ६ विवाह के गीत ७ भाई बहिन के गीत ८ साली सालेभियों के गीत ९ पति-

पत्नी क प्रेम क गीत [संयोग वियोग] १० पनिहारियों के गीत ११ प्रेम के गीत १२ भरवी पीसन के गीत १३ मालिराओ के गीत १४ चरन क गीत १५ प्रभाती गीत १६ हरजस १७ चमार्स १८ दरा प्रेम में गीत १९ राजकाज गीत २० राज दरबार, मजलिस, शिकार, बाग क गीत २१ जम्मे क गीत २२ गिडपुरुषों क गीत २३ वीरों के गीत एवं ऐतिहासिक गीत २४ व्यालों के गीत, हास्यरस के गीत २५ पशु पक्षी संबंधी गीत २६ शान्त रस क गीत २७ गावों के गीत २८. नाटय गीत २९ विविध। यह तालिका गीत प्रेमियों क लिए अत्यन्त प्राह्य है। हम इसम जन्म क गीत, नारी क शील ओर साहस के गीत, सती प्रथा क गीत, खाद्य पदार्थों के गीत, पक्षियों के संदेश गीत, हवियारों गीत आदि जोड़कर कुछ विषय और आप लोगों क समक्ष रखते हैं।

लोक गीतों की उत्पत्ति के दृष्टिकोण स पाश्चात्य विद्वान प्रोफेसर किट रिज ने परम्परागत लोक गीत, चारणी लोक गीत, साहित्यिक गीत और विकृत लोक गीत नाम के चार भेद बताये हैं। उक्त चार विभागों को ढोला मारू रा दूहा की साहित्यिक आलोचना करते हुए संपादकों ने काम म लिया है। मारिया लीच ने युरोस्लाविया के गीतों के पुरुष व नारी के रूप म दो ही भेद बताये हैं। परन्तु फाकलार के साधारण वर्गीकरण में ६ भेद किये हैं। १ बालकों क गीत २ सगाई और विवाह क गीत [लव, कोर्टशिप एंड मेरेज] ३ मृत्यु संबंधी गीत ४ कामसरिक गीत ५ नृत्य गीत और ६ वलासिक गीत। राजस्थान के लोक गीतों के लिए यह वर्गीकरण भी निर्दोष नहीं है।

राजस्थान मे मेले, त्यौहारों, देवी देवताओं सिद्ध पुरुषों, ऐतिहासिक व्यक्तियों, सतियों, शक्तियों और भावों, चारणी देवियों तथा आइयों, पितर पितरानियों संबंधी गीतों के अनेक प्रकार उपलब्ध होते हैं। अतः उनके वर्गीकरण के साथ विषय विभाजन तालिका का होना भी अनिवार्य है। भिन्न भिन्न समयों पर भिन्न भिन्न गीत गाये जाते हैं। उन सबकी विधाओं का वैज्ञानिक प्रकटीकरण होना चाहिये।

संस्कार संबंधी गीत— १ जन्म के गीत — गर्भाधान और सीमन्तोन्नयन के गीत जन्म से पहले के हैं। इनका शास्त्रों में भी नाम आता है। प्रसव के गीतों का तो बहुत ही प्रचलन है। इनमें नौ महीनों का सांगोपांग वर्णन मिलता है। नामकरण के समय पीढ़ा, घेवर, घूघरी दाई, मजवायन, सूंठ-गूंद पीला, पोपला मूल, जच्चारानी आदि विषयों से संबंधी कई मनोहर गीत गाये जाते हैं। इसके बाद जडूला, अन्नप्राशन, झडूले और कर्ण-छेदन के गीत गाये जाते हैं। इस तरह से समाज म बच्चा जनने वाली जच्चा का गीतों द्वारा भारी स्वागत किया जाता है। देश के अन्य स्थानों मे कन्या-जन्म हर्ष एवं उल्लास का विषय नहीं

माना जाता, मगर राजस्थान में 'ओधो लार मेह अर बेटो लार बेटो' की कहावत प्रचलित है। 'धी बिना धरम किस्यो' की कहावत चलती है। इसी आशा की वजह से कहीं कहीं यहां कन्या - जन्म पर भी गुड़ बांटना, गीत गाना आदि खुशी के कार्य किये जाते हैं। सभ्य घरों में लड़की को छोरी कहकर नहीं पुकारा जाता। भूल से नाम आ जाने पर माताएं एक दिन का व्रत रखती हैं। उसको बाई या कुंवरी कहा जाता है। लोक गीतों में कन्या के लिए धीवड़ या धीया शब्द का प्रयोग अधिक होता है। हमारे यहां धीवड़ को दादी द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से लोरियां भी दी जाती हैं। उदाहरण स्वरूप उनकी कुछ पंक्तियां नीचे लिख रहा हूं –

दीन

गोरी बाई मोरी माय ब्याई गौरी
दूध भरी कटोरी ऊपर सक्कर भोरी
इण राजबहिन रै कारणें, ओ साजन आया बारणें
फाकसिया करै ही नहीं, मामसिया मनै ही नहीं, मा री माक नम ही नहीं
मूधा कबै मतीजी देस्यां पण गहणा घणा लेस्यां।
सैर सोनो ओ थारी बाई म्हानै दो।
सेर सोनो बाळां म्हारी धीवड़ नीं दिखाळां।

१. बाई थे बाई तूं थारै मती बाई थारै सोनै रा केस कठर लेसी काई
बाई थे बाई तूं थारै मती बाई, थारा कसरक कूंण्या तोड़ लेसी काई
बाई थे बाई तूं थारै मती बाई, थारै साळूड़े री कोर कतर लेसी काई
१ बाई रा काकसिया किस्या? हाथां में कड़ी कड़ीसा रावतियो जिस्या।
बाई रा मामसिया किस्या? हाथां में कड़ी कुवाड़ा भोलड़िया जिस्या।
दूर कुतिया दुर बाई कुत्ता बाणियै री हाट में पाड़ी कुत्ता
बाणियो बूढ़ो डोकरो बाई रै सारै डोकरो खोपरियै में कांकरिया
बाई रा काका ठाकरिया, ठाकरिया ठकराई करै, हाटां बैठ बड़ाई करै
कुतियो सोवै कांटां में बाई सोवै हाटां में, कुतियो सोवै आकां में
बाई सोवै काका में कुतियो सोवै भामा में, बाई सोवै मांमा में।

राजस्थानी लोक गीतों में कन्या जन्म के अवसर को अशुभ नहीं निराशा जय जरूर मानते हैं। माता का वही खान - पान, मगर पिता का अर्थ संग्रह के लिये अभी से ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है और फिर उसी कन्या का भारी लाड प्यार से पाल कर सम्बन्धी को सौंपते हुए बड़ा विनम्र बनना पड़ता है। तभी तो किसी ने कहा है – बेटो बाई रे जगन्नाथ, बारां हेटे मामा हाथ। परिणामत राजस्थानी गीत जगत में अम्बा को पुत्री न जन्मने का आदेश रहता है। प्रत्येक परिवार पुत्र - जन्म के लिए लालायित होता है। देखिये गर्भिणी को मो

मास की अवस्था, दोहद, मनरळी तथा हँस पुरवाते हुए पति देवता पत्नी को पुत्री न जनमने के लिए कड़ी धमकी देते हैं, सो नीचे के गीत में बड़ी विशदता सहित वर्णित है—

सुसरै री बण साई कजाली
सुरती कंदोई री साई भो राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

सळ सब करती घेवर सीर्जे
म्हारी बीवड़ी तरसें भो राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

ले घेवरिया बीमण बैठी
बाहर सूं राजन आया भो राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

मोई हेटें घेवर लुकाया
मोरी धण थोड़ो सांमो भो राज
म्हारो मन रळियो घेवर मे।

मोई मीचे घेवर राजन
सासू नै मा कहज्यो भो राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

जे थें गोरी पूत जलमस्यो
घेवर और सुवाऊं भो राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

जे थें गोरी धीव जलमस्यो
घेवर कोई करस्यूं भो राज
म्हारो मन रळियो घेवर मे

गर्भिणी स्त्री को विभिन्न स्वाद की चीजें खाने की इच्छा रहती है और कुछ चीजों को वह कतई नहीं पा सकती है, इस गीत में नारी को घेवर खाने की इच्छा है और बड़ी मिन्नतों व प्रयत्न के साथ घेवर बनाती है। लेकिन खाने की तैयारी करते ही उसके पति सामने आ जाते हैं। नारी सहज ही घेवर को छिपाने का उपक्रम करती है। किंतु पति से यह क्रिया छिपती नहीं। तब वह कहने लगती है कि मैंने घेवर तो बनाया है लेकिन मेरी सास को यह बात मत कहना। लज्जा वश ही वह घेवर को छिपाने का प्रयत्न करती है। इस पर पति ने हँसते हुए कहा कि अगर उसके पुत्र हुआ तो वह किसी को घेवर की बात नहीं कहेगा। लेकिन यदि पुत्री का जन्म हो गया तो वह निश्चय ही सास के सामने घेवर की बात प्रकट कर देगा। इस गीत में स्त्री सुलभ सहज स्वभाव की जन्म विषयक मान्यता

पर प्रकाश पड़ता है।

(जी म्हो) धन मुहूर्त पिव पिसँगों
तौ दोय बच्चा मे मतो उपाइयो।
(जी म्हो) पिया ज म्हारै बसमेमी जीव
तो किसड़ा लाड लडावस्यो जी।
(जी म्हो) गोरी थे थारै जसमेमी जीव
तो खाट पिछोकड़ै पलावस्यां जी।
(जी म्हो) साह थारै सूण का जी
तो पड़दो दस्यां काळी कांमळी जी।
(जी म्हो) मुख सै कदैई नीं बोलस्यां
तो म्हे सिवावांपा चाकरी जी।

गर्भिणी को राजस्थानी में दो जीवों वाली कहते हैं। उसकी इच्छा का मन रळी, उस करना और हूस पुरवाना कहते हैं। हिन्दी में इसको दोहद, उकाई तथा हरियाणा में इसको ओजणा कहते हैं। राजस्थानी में हूस [गर्भिणी की इच्छा] के अनेक गीत हैं, जिनमें गर्भिणी अपने सास ससुरादि से भाँति भाँति की खट्टी मीठी वस्तुएं मांगती है। पर उसकी बात को सब टाल देते हैं। केवल पति ही उसकी इच्छाओं का तृप्त करते हैं। इस तरह के गीतों में मेवर, केर, मतीरा, फलियें एवं खोर की इच्छा पूर्ति के गीत उद्धृत हैं

मेवर व अन्य हूंस का क्रमिक गीत

पैमो मास क बच्चा रांजी मैं सामियी
म्हारो मन पड़ग्यायो बाय
म्हारो मन हरक्यो मेवर में।
मा तो हूंस भली छ भर री नार
थारी सुसरोंजी पुरावै ओ राज
म्हारो मन हरक्यो मेवर में।
दूजी मास क बच्चा रांजी मैं सामियी
चाटियें मन रळियो राज
म्हारो मन हरक्यो मेवर में।
था तो हूंस भली छे वर री नार
थारी पाड़ौसण पुरावै ओ राज
म्हारो मन हरक्यौ मेवर में।
मछुमी मास क बच्चा रांणी मै सामियी
म्हारो नींबुड़ा मन रळियो राज

म्हारो मन हरख्यो पेवर में।
म्हा तो हुंस भली छे घर री नार
थारो देवरियो पुरावै म्हो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।

चोथी मास म जच्चा रांधी मैं लापसी
म्हारो लिचड़ली मन रछियो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।
म्हा तो हुस भली छे घर री नार
थारी भाभीसा पुरावै म्हो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।

पांचवी मास म जच्चा रांधी मैं लापसी
म्हारो खोपरियो मन रछियो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।
म्हा तो हुंस भली छे घर री नार
थारो नणदोई पुरावै म्हो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।

छठो मास म जच्चा रांधी मैं लापसी
म्हारो बेवरियो मन रछियो म्हो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।
म्हा तो हुस भली छे घर री नार
थारो माऊजी पुरावै म्हो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।

सातवीं मास म जच्चा रांधी मैं लापसी
म्हारो साचड़ली मन रछियो म्हो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।
म्हा तो हुंस भली छे घर री नार
थारो माऊजी पुरावै म्हो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।

आठवीं मास म जच्चा रांधी मैं लापसी
म्हारो पेमड़ियै मन रछियो म्हो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।
म्हा तो हुंस भली छे घर री नार
थारो रामदयो पुरावै म्हो राज
म्हारो मन हरख्यो पेवर में।
नवो मास म जच्चा रांधी मैं लापसी
म्हारो हीरैयै मन रछियो म्हो राज

म्हारो मन हरख्यो मेवर में।
भा तो हूंस भसी छ मर री मार
थारी सासूजी पुरावे ओ राज
म्हारो मन हरख्यो मेवर में।
दसवो मास व बच्चा रांमी नै सायियो
म्हारो पीछीयै मन रळियो ओ राज
म्हारो मन हरख्यो मेवर में।
भा तो हूंस भसी छै मर री मार
थारो सीरोजी पुरावै ओ राज
म्हारो मन हरख्यो मेवर में।

केर को हूंस का गीत

लाग्यो वन में पसी को मास पड़ छायां सुहावै
ओ म्हारै ससुराजी रै हाथ री पी।
भा तो हूंस भसी छै भर मार थारो ससुरोजी पुरावै
ओ बड़भागण बच्चा थारी मनरळी।
भावै मन में फीका रोटी बाळ कैरिया तो भावै
ओ बच्चा रांमी नै छापर वाळै ताल रा।

मतीरे की हूंस का गीत

सुसराजी आगै बीनडी
म्हांनै भावै ओ सुसराजी हरियो रे मतीरो
लाल मतीरो गुमाव गिरी री
भावै ओ म्हांनै सुसराजी हरियो रे मतीरो
सळ सळ करतो सीरो ये लावो
म्हारी कुळ बहू कांई लाग्यो ओ सरद मतीरो।
जेठजी आगै अरज बहू री
म्हांनै भावै ओ जेठजी हरियो रे मतीरो
लाल मतीरो गुमाव गिरी रो
भावै ओ म्हांनै जेठजी हरियो रे मतीरो
कच कच करतो पेवर में लावो
कुळ बहू म्हारी कांई लाग्यो ओ सरद मतीरो
भाभजी रै आगै अरज गोरी री
कोई भावै ओ कोडी रा बोला हरियो रे मतीरो
चढिया भाभजी ऊजली ओ रात
सूरज ऊगायो मथुणा वेतड़ो म्हारा राज
लागी कोडी रो होली कोरा मराय

भावै जिवण खावी म्हारी गोरी मन हरिया मतीरा

थै जुग जीवो म्हारा बसतेवजी रा डीव
थै म्हारी राणी रे पुराई जी म्हारा राज
थै जुग जीवो बड सजना री बाई
थै तो म्हारो वंश बधावी जी म्हारा राज

गर्भवती का मतीरा खाने की इच्छा हो गई। उसने अपने ससुर, जेठ, देवर सबसे मतीरा मंगाने की विनती की। मगर सर्द मतीरे प्रतिकूल जान कर सबने खीरा, पैवर आदि खाने के लिए कहा। अन्त में उसने अपने पति से कहा पति आधी रात का ही चढ़े और मतीरों का भारा भर लाय।

फळिया को हुस का गीत

ऊंचे धोरे चंवळा बाया, उग्या गोट मगोळ
हरी हरी फळियां आवे ओ राज
हरी हरी फळियां घी में तळियां
फळियां बडी सुवाद ओ राज
गोरी नै फळियां भावे।

रसोई बैठया सासूजी म्हारा
गोरी मन पळका कोरयूं पड़िया ओ राज
म्हे तो आवो बैठा म्हारा
जाय थारो मोजायो नै पूछो ओ राज
गोरी नै फळियां भावे।

मैलां में बैठ्या मोजायां म्हारा
गोरी मन पळका कोरयूं पड़िया ओ राज
म्हे तो आवो देवरिया म्हारा
जाय थारी दासी बांदी नै पूछो ओ राज
गोरी नै फळियां भावे।

सेज बिछावता दासीजी म्हारा
गोरी मन कोरयूं कुम्हलाया ओ राज
अेक अेक कोसियै दो दो सुता
अमूंबी व रतन उपायो ओ राज
गोरी नै फळियां भावे।

बार की हुस का गीत

सास पिसणकी विलोवणें
सूती ये कोई कूर्म काज
देवर म्हांनै बोरिया भावे।

बारै सूं म्हारा सुसराजी प्रापा
माज बहुवड़ क्यूं सूत्या प्रो राज
भंवर म्हांने बोरिया भावै ।

सारक बोरारा वाबो म्हारी बहुवड़
बोरां री रुत काहू म्रो राज
भंवर म्हांनै बोरिया भावै ।

जन्म से पूर्व के इन गीतों के पश्चात् जन्म का सुअवसर आता है । पुत्र के जन्म पर थाली एवं पुत्री के जन्म पर सूप बजाया जाता है । इसी समय के कुछ गीत इस प्रकार हैं

कंवळै तो ऊभा राजीड़ा री कुळ बहू मन कसमस दूखै छै पेट
पीड़यां को घण री बमधगें जी
सासुजी म्हारा भाळा भोळा मगहल बाई राजकुंवार
म्हारी चिन्ता कुण करसी म्हारा भ्रो राज
देरांणी जेठाणी मांढणी कणधी म्हारी माय बसै परदेस
म्हारी चिन्ता के करसी म्हारा भ्रो राज
धोरै भी मांवसी भोरड़ी क्यां में सूत्या बसुदेवजी रा छोल
म्हारी चिन्ता के करसी भ्रो राज

अंगूठो मोड़ जगाणिया बालो बाई सोवरा रा वीर
बासी तो करदयो भोवरो जी म्हारा राज
झटपट सूं पेच संवारिया मुळकत सियो कमाल
मोस्यो गोरी घण भोवरो
बोस्यो पिलंग नीवार रो म्हारा राज
जपस्यो बोरी साहप पूठ खिलतो फूल गुलाब सो
बधाई माहली में बेमी विराज्यो जी राज
मह धक बीळै म्हारी माय , माहबी मोसो बोलियो
बरसी माता तई कांरियो हुयी हुयी चांव उजास
बेलड़ियो जलमियो जी म्हारा राज
भली करी भगवान माहबी रा चिन्ता हो गया जी म्हारा राज

प्रसव वेदना की सूचना देने में संकोचशील पत्नी की व्याकुलता बढ़ जाती है । यह लज्जा के वश संकेतों से पति को वस्तु स्थिति का निर्देश देना चाहती है । ऐसी ही मार्मिक अवस्था का गीत है

गाढ़ी सी मार मारेळी सो पेट
पीड़ चलै उतावळी जी
पीड़ चलै जो घण मुळ मुळ जाय
कहै भंवर सूं बीनती जी

रोक रुपयो हाथ कसुमा कांचळी जी
बे बारे खसम पूत दाई माई नै कांई देवो जी
पांच रुपया रोक पीळो दाई नै गोठरी जी

थें ही जच्चा राणी री मांय जायो मीं उतावळा जी
झिर-मिर बरसै मेह, गळियां में है कीचड़ो जी

दाई माई नै बुहलै चढ़ाय, धाप उपाळा होय चाल्या जी
आया दाई डोढ्यां रै मांय सुमन दाई नै ममा हुया जी
आया दाई आंगणियै रै मांय जेनड़ बीमो जसमियो जी

मनी रै करी मनवार, दाई म्हारै कांई करियो जी
आंगण सूतो थे मूंठ दाई माई जोरटी जी

दाई माई री बड़ी पेट जच्चा राणी लाज मरै जी
दाई माई री दुखे मांव जच्चा राणी सुप मर जी

बाई में बियाई थाय पिछोकड़े कूकगी जी
धीड़ हर्के तो दाई धोड़ म्हारी कुतड़ी काबणी जी
हुबै म्हारा देवर जेठ, दाई माई नै बो बकता जी

कुसायो जेनड़ियै रो बाप, बका सूं म्हे कोस करया जी
पांच रुपया हाथ पीळो दाई नै गोठरो जी
सुमनी जेनड़ियै रो बाप नुगरी जच्चा है भणो जी
थे दाई घरां पधार जरसोधी कुसावस्यो जी।

पींपळा मूळ का गीत

डूंगरियै रै लारै पास मनवेली हाळी हळ खड़ै जी
और तो बावै तिल बाजरी माल्जी बाव पींपळो जी

ऊग्यो उग्यो गोळ-मथोळ, पीपळा मोळ उग्यो मोबाक जी
लाया-लाया पोट धुराय पड़ोस्यां साथ सुवादयो जी

कूट्यो कूट्यो ऊंखळड़ी री कोर झीणै से साळू सूं छाणियो जी
भेयो भेयो हिरण्यां रै दूध, रतन कटोरै घोळियो जी
रतन कचोळो सुसरैजी रै हाथ सुसरोजी ऊभा बीनवै जी

बहवड़ थो म्हारै बंश सावणा री बीच पींपळा मोळ पीजो म्हारी बहुजी
सासै सासै म्हारी मास कसम छी बीम पींपळा मोळ लागै म्हानै चरचरो जी
जेनड़ियै नै धावै ठंडो बाढी दूध, थांनै तो धावै भणी नींदड़ी जी

इस तरह से_रतन कचोला सासू, जेठ, जेठानी के हाथ से दिया जाता है और बजाय सवाल किये जाते हैं। फिर रतन कचोला देकर पति के हाथ से पीपळा मूळ पिलाया जाता है।

रतन कचोळो म्हारै माल्जी रै हाथ, माल्जी ऊभा बीनवै जी

जोरी मे म्हारी बड़ा छाजना री बीच, पीपळामोळ पीयो म्हारी जोरजी बी
जेनड़ियें में भावें ठंडी बाजी बूच बांमें मस भावें नीवड़ी बी
बामें बामें साल कमल री बीम, पीपळामोळ सामें म्हांमें बरजगो बी
बीनी बीनी झाबोड़ी चाब बटकाय पीयो जोरी पीपळी बी ।

पीपळामूळ पीने के लिए बहुत मनुहारें की गई तब जाकर जच्चा ने इसको पिया । इन गीतों के द्वारा पुत्रवती माँ का मान - सम्मान किया जाता है । नाम करण संस्कार पर गाये जाने वाले गीत—

बादळां सूं ऊठ सखी
पाटड़ां पग मेल सखी
सूरज री मुख देख सखी
म्हारी सरब सखी

राजन री मुख देख सखी
बाई माई बेग बुलाय पिया
पीरें में म्हरब बुलाय
म्हारी सरब सखी

दादी नें बेग बुलाय
सोवन थाळ बजावसी
म्हारी सरब सखी

भुवाजी नें बेग बुलाय
साथां रे सखिया पुराय
म्हारी सरब सखी
राजन री मुख देख सखी

इस तरह से गीत को भुवाजी, सासूजी, बहिनजी, भौजाईजी आदि करके बढ़ावा दिया जाता है ।

जातक के जन्म हो जाने के बाद जच्चा पुनः अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाती है । उसे विनोद और मनोरंजन का जीवन प्राप्त हो जाता है । मान मनुहार और नखरों का यह गीत इसी नवीन स्थिति का द्योतक है

पड़बसियो [घास से छापा हुआ छोटा मकान]
म्हांनें बी जोड़ी रा ढोला पड़बसियो चिनाय पड़बसिये पोढ़ण री मन में बामबी बी म्हारा राज !
पड़बसियें बे म्हारी सिरपामेंबी, पीवरियें में पौढ़, म्हा पर जोड़ी बी महनर माळिबा बी म्हारा राज !
म्हांनें बी जोड़ी रा ढोला बीचड़ली रंगाय बीचड़ली बीमण री जच्चा रामी में बामबी बी म्हारा राज !

चौपड़ली म गोरी बम पीवरियै में बीम, म्हां पर चीमी मी काढ़
चौपटा जी म्हारा राज !

सूती जो जोड़ी रा ढोला सुखभर नींद, सूती मैं सपनो म्हांनै
आइयो जी म्हारा राज !
आयो जो सपना में म्हांनै नौसै रो हार, छोळा मासा री मायी म्हांनै
सांकळी जी म्हारा राज !
हुसी जे मिरगानैणी थारै लाडण पूत भेकज होसी सुपनी
चौपड़ी जी म्हारा राज !

थै हो गोरी म्हारी हुकम हुलदार हुकम करो तो रसोड़यां
मा बड़ूं जी म्हारा राज !
थैं जो जोड़ी रा ढोला क्यांनै ही पधार रसोड़यां में स सूची म्हारा
सी रह्या जी म्हारा राज !

थै हो मिरगानैणी हुकम हुलदार, हुकम करो तो ओरै मूं
मा बड़ूं जी म्हारा राज !
थै थो जोड़ी रा ढोला क्यांनै ही पधार ओरै में बैठजी
सी रह्या जी म्हारा राज !

थै जो मिरगानैणी हुकम हुलदार हुकम हुवै तो महलां
मा बड़ूं जी, म्हारा राज !
थै थो जोड़ी रा ढोला क्यांनै ही पधार, मैलां में म्हारी बेनड़-बीमो
सी रह्यो जी, म्हारा राज !

थै थो जोड़ी रा ढोला कायरिया चोर, चोरीला बेनड़ रा पीळा
पोतड़ा जी म्हारा राज !
थै जो मिरगानैणी म्हारी नखराळी नार इतरा तो नखरा
मैं करया जी, म्हारा राज !
थै थो जोड़ी रा ढोला दिल रा दरियाव, इतरा तो नखरा म्हारा
थै सह्या जी म्हारा राज !

सचमुच शिशु ही दाम्पत्य प्रेम की ग्रंथि है। एक पुत्ररत्न के जन्मने पर संसार स्वर्गोपम, समृद्धि और सम्मान का स्थल बन जाता है।

शिशु जन्म के साथ ही माता पिता को उसके भावी जीवन-पथ की चिन्ता प्रारंभ हो जाती है। बालक के भाग्य में क्या बदा है? वह सुखी रहेगा क्या? उसे कहीं दुःख, संताप और कष्ट की यात्रा तो पूर्ण नहीं करनी है। नवजात शिशु के भाग्य-लेखन के लिए ही बेमाता का सहारा ढूंढ लिया गया है। राजस्थान में यह मान्यता है कि शिशु जन्म के छठे दिन बेमाता रात्रि को घर आती है और शिशु के भाग्य को लिख जाया करती है। बेमाता के लिखे 'आंक' कभी मिटाये नहीं जा सकते। बेमाता के विषय में एक ऐसी मान्यता भी है कि

वह शिशु को कभी हंसाती है और कभी रुलाती है। यदि हम नवजात शिशु की मुखाकृति को कुछ समय तक ध्यान से देखें तो ज्ञात होता है कि वह कुछ क्षणों के लिए मुस्कराता है और ठीक बाद में रोने-सा भाव उसके मुंह पर आ जाता है। मांस पेशियों की यह क्रिया ही बेमाता के हंसने-रुलाने के विश्वास में बदल गई है। मां का कहना है कि जब बेमाता बालक को कहती है — मां मर गई तो वह रोता है। दूसरे ही क्षण जब बेमाता कहती है कि वह जिन्दा है तो वह मुस्करा देता है। इस प्रकार शिशु के जन्म और बेमाता का चिर संबंध जुड़ गया है। अतः इस अवसर पर बेमाता के अनेक गीत भी गाये जाते हैं। दो गीतों के उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं

सब गांवड़ला दूठ्यां मांव काळू सुवायो
सब बाइडला दूठ्यां, बाद लांडां री सुवायो
सब कूखड़ली दूठी
कूखड़ली माता देवकी री सुवाई

बेमाता के गीत कृतज्ञता ज्ञापन स्वरूप गाये जाते हैं। ब्रज में बेमाता को बेह कहते हैं। बेहु विधि का द्योतक है। पुत्र जन्म बेमाता की ही कृपा का फल है। ऐसी जनसाधारण की धारणा है। अन्य उदाहरण है

कुण सुणेगी बीणती कुण सुणेगी बीणती,
कोई बेमाता आगे पुकारं कूखड़ली सावळ हुसी।
राम सुणी बीणती राम सुणी म्हारी बीणती
मां म्हारी बेमाता सुणी ए पुकार कूखड़ली सावळ हुई।

अर्थ — कौन सुनेगा मेरी विनती? ए मेरी मां किसके आगे पुकार करूं? मेरी कोख वैरण हो रही है। तेरी विनती राम सुनेगा। बेमाता के आगे पुकार। तेरी कोख सौभाग्यशालिनी होगी। धन्य है बेमाता का जिसने अबला की विनती सुनी! धन्य है विधाता को जिसने उसकी कोख को पुत्रवती बनाया।

बालक के जन्म के बाद जननी को राजस्थान में सीरा, गूंद के लड्डू, अजवायन, सूंठ आदि से बने पौष्टिक पकवान खिलाये जाते हैं। एक दो मास तक उसके खानपान का पूरा ध्यान रखा जाता है। पुत्र जन्म तो खुशी का बड़ा कारण होता है। महीनों तक पारिवारिक लोग गुड़ बटवाते हैं और गीत गवाते हैं। जन्मोत्सव के ये गीत धमड़िये या हालरे कहलाते हैं। हिन्दी में इनको मोहर और ब्रज में सोभर कहते हैं। इनमें आनन्द बधावे, जच्चा की इच्छा, पुत्र कामना, पीड़ा और नाना भांति के नेगों के गीत होते हैं। पुत्र कामना के गीतों में भैरूंजी के एक दो गीत यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं

भैरूजी काठै तो गयां री बाई गूजरी

मांग रळाक दूरा कांड
काशी रा वासी चढ़ती असवारी म्हारी हेली सांभळो

छिवपिय तो रांधूं लापसी
मांग मुरै गायां री पीव
काशी रा वासी चढ़ती असवारी म्हारी हेली सांभळो

बारा मण रा रांधूं बाकळा
कोई तेरे बाणां री तातो दाल
काशी रा वासी चढ़ती असवारी म्हारी हेली सांभळो

तेल सिन्दूर भर वाटको
कांई मथरी मथरी ढाळूं थारे धार
काशी रा वासी चढ़ती असवारी म्हारी हेली सांभळो

सोनावे रै मारग पिमाऊं
थारी देवरी देवूं थारी बरसोदी जात
भैरुजी बेक तो भरज म्हारी म्हारी हेली सांभळो

सासू तो केवै म्हारी महवड़ बांझड़ी
परण्योड़ो स्यावै स्हौड़ी सोक
बकसिये रा सीरी चढ़ती असवारी हेली सांभळो

सासू नै करबूयो गूंगी बावळी
परण्योड़ै री मरज्यो नूंवी नार
बकसिये रा सीरी चढ़ती असवारी हेली सांभळो

भरूंजी करैमन भीवो म्हारी दूबा कांवळी
काळूजा करैमन सीव्यो कांवो काळ सूं
काशी रा वासी अमर बधावूयो थीं जुग में पालणी

देरांणी जेठांणी जुग में बोलै बोलणा
बसारै हीरै पूतब पालणै
सोनावे रा भैरूं मक तो पुत्र बिन म्हे कुळ में बांझड़ी

पुत्र काम के बिना स्त्री अपने जीवन को असफल मानती है। वह इसी चिन्ता में सदैव झूरती रहती है। जप-तप, व्रत उपवास, जादू-टोने एवं देवी देवताओं की पूजा उपासना म लगी रहती है। पुत्र होन पर स्त्रियां बच्चा को तरह तरह के गीत सुनाकर प्रमुदित किया करती हैं। कामना गीतों में भरूंजी के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं—

ऊंची नीची धो भैरूं सरवरिया री पाळ
पणीड़ी भरै नवली पिणिहार
हार दै हार दै हरखिसा भैरूं।

हारलई रै पूग्यो चौसठ चार
पासी रै मड़ो रो मोरी रो हार
हार वै हार वै चम्प चौसटा रा राजा
हारला रै कारणै म्हारा सुसराजी कमाया
सुसरोजी कमाया सापू दवै म्हानै गाळ
हार व हार वै भीमळिया भेई
हारला रै कारणै म्हारा जेटमा कमाया
जेठाणी पुरा होवण चाय
हार वै हार वै हरतिमा भेई

पुत्रोत्पत्ति के समय राजस्थानी गीतों म गाजूमो, गूपरी आदि गीत भी प्रसिद्ध हैं। म जन्म पर गाये जाते हैं और गृह स्वामी दिल खोलकर खर्च करता है —

रण चढ़ण कंकण बंधण पुत्र बधाई चाव
ऐ तीनू दिन त्याग रा कांई रंक कांई राव

माई, ब्राह्मण, नाई सास ननद और देवरानी-जेठानी, ढाढ़ी-ढोली इन सबके नेग होते हैं। इन सबने जच्चा राणी की सेवा चाकरी की थी। अतएव सब नेग लने के सब हकदार हैं। इनमें ननद नेग के गीत बड़े सुन्दर होते हैं। बधाई के बधावों में चदर हार पोमचो, चुनड़ी, पूंबिया, भूरी झोट, धोळी गाय, मोहर, रुपया, झोळी भर मोती आदि वस्तुएं मांगी जाती हैं। पुत्र जन्म के छठ दिन, छठी का संस्कार सम्पन्न किया जाता है। इस दिन बेमाता बच्चे का सौभाग्य लिखने को घर आती है — ऐसा विश्वास है। घर की सफाई, रातीजगे और नाम करण संस्कार नवमे दिन किये जाते हैं। पंडित यज्ञ कराता है, भाट या सेवग कुटम्बियों के लिए बुलावा देता है। मिष्ठान्न पकाया जाता है। भोजन के लिए दसौटण या, सिर धोवण नाम से सबको जिमाया जाता है। बच्चे के लिए भूवा टोपी, रुपये खोपरे आदि भेंट में आते हैं। नव शिशु के लिए खाती पालना चमार तागड़ी कुम्हार कलस आदि लाते हैं। भाट वंशावली बनाता है। ढाढ़ी यश गाता है और गीतेरणें गीतों से सम्मान प्रदान करती हुई सहानुभूति प्रकट करती हैं। बच्चा के पीहर से छुछक आता है। जिसमें सबकी भेंट होती है और सभी के लिए गीत गाये जाते हैं। इन सब में जलवा पूजन के समय का एक पीळा नाम का गीत बड़ा प्रसिद्ध एवं मधुर है।

दिल्ली शहर सूं सायबा पोत मंगाय दो, हाथ पचीसां गज तीसां
गाढ़ा मारूजी पीळो रंगावो।
गढ़ रै बीकाणै रो सायबा रंगारो बुलावो बूंदी रो बंधारो बुलावो
अपणै आंगणियै सायबा कूंड खुदावो आप मानड़िया बैठ रंगावो

पल्ला तो पल्ला सायबा मोर पपीहा बीच में चांदी री चांद कुरावो
बापरी ओढ़ी रा दोय छैला बुलामनो हे हे फटकारा खूब मूघा रो
रंगियो रंगायो सायबा हुवै रे तैयारी, जच्चा नैं पड़द में पकड़ा यो
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा पाटै जी बैठा पीळै नै जोसीजी सरायो
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा रसोयां पधारया पीळे नै सासूजी सरायो
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा पळिडै पधारया देरांणी जेठांणी मुख मोड़यो
वे म्हारा मामीसा क्यूं मुख मोड़ी, पीळो म्हारै पीवर सूं आयो
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा महलां पधारया सारली पाड़ोसण निजर लगाई
मांस्यां नीं बोलै जच्चा मुळकई नीं बोलै, जच्चा री राजन बिलखी डोलै
बिलखी सहर री सायबा वेद बुलावो जच्चा री माड़ बिमारो
ताव नहीं छै मथुवा नहीं छै, सारली पाड़ोसण निजर लगाई
सारली पाड़ोसण सायबा उठै रे बुलाय दो जच्चा नैं धुचकारो दसावो
मांस्यां मत बोली जच्चा मुळकै मत बोली मोरी री राजन हरख्यो बोल
तूं रे वेदां रा वेटा बड़ो रे ठगोरो मूर्ख राजन नैं ठग लीनी
वे म्हारी जच्चा रांणी बिलता मांगो मोळै राजन नैं बिलत दिखाया
म्हे तो मारूजी थारी मनड़ी लेवा छां, प्यारा हो या दुप्यारा
वे म्हारी जच्चा रांणी लपा पियारा, वेगड़ सूं इधक पियारा
जच्चा रांणी पीळो मत मोड़ो थे

[प्रत्येक पंक्ति के बाद 'गाड़ा मारूजी पीळो रंगावो' का पुनरावर्तन होता है] पीळो नामक गीत बहुत प्रसिद्ध है। पीळ चार प्रकार से गाये जाते हैं। पीळे की भांति एक बोरा [वैवाहिक गीत] भी बड़ा कारुणिक होता है। ब्राह्मण जाति में लड़के के विवाह पर अनेक के गीत भी गाये जाते हैं।

संस्कार गीत २ विवाह के गीत – संस्कारों में जन्म के बाद विवाह ही महत्व-पूर्ण सस्कार क्रम है। यह केवल प्राकृतिक नियम ही नहीं, किन्तु मनुष्य समाज द्वारा एक स्वीकृत विधान भी है। इसमें वैदिक आचारों से कहीं अधिक लौकिक आचारों का प्रभाव रहता है। विवाह संस्कार जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। नगर निवासियों से लेकर जगली जातियों तक में इसकी मान्यता व्यापक है। यह प्रथा विश्व भर में बड़े आनन्दोत्साह के साथ मनाई जाती है। सभी देशों में इस सस्कार के लिए सुन्दर गीत मिलते हैं। महिलाएं मौके मौके के गीतों से विवाह को रोचक मांगलिक एवं कारुणिक बना देती हैं। विवाह का बीज वपन सगाई से होता है। लड़की वाले अपने ब्राह्मण या भाई के साथ मुद्रा भेजते हैं। इसमें कुछ सिक्के, गहने, कपड़े मिठाई और फल रहते हैं। लड़के को पाट पर बैठाकर यह भेंट दी जाती है। गुड़ बांटा जाता है। मीठे चावल पकाये जाते हैं और औरतें बनड़ा नामक गीत गाती हैं। विवाह के मांगलिक कार्यों का आरंभ चौकणी कोथळी से होता है। चौकणी कोथळी [द्रव्य, भेंट] के साथ लग्नपत्रिका सहित

कन्या पक्ष की ओर से बियाह की लग्न तिथि लिखी होती है। इसी दिन से बहन बेटियां बुलाई जाती हैं तथा वर और कन्या की माताएं अपने अपने भाइयों को न्योतन जाती हैं। पांच सात दिन पहिले बान या बिरद बैठती है। तेल चढ़ाना या हाथ पीले करने का अनुष्ठान पूरा होता है। एक दो दिन पहिले रातीजगे के गान होते हैं। इन सब अनुष्ठानों को स्त्रियां गीतों द्वारा पूर्ण करती हैं। उबटण पीठी, मेंहन्दी, तेल, मोळ, कांकण डोरा विनायक, मूंगणी, बेह, चौरा टोपना, बनड़े, हथणी आदि अवसरों पर अनेक गीत गाये जाते हैं। गीत ही से भात या मायरा की जीमणवार होती है। फिर वर निकासी होती है। फिर लड़के को बींद [दूल्हा] बनाया जाता है। फिर वर निकासी होती है। इस समय टोरड़ी, घोड़ा आदि के बड़े मनोहर गीत गाये जाते हैं। इससे प्रथम वह [वर] अपनी मां का स्तन पान करता है। यहां पर दूसरे को न्योछावरें डाली हैं। बींद के विदा होते समय उसकी बहिन वर वाहन की मोरी पकड़ती है। इस तरह से राजस्थानी दूल्हा की विवाह के लिए बिदाई होती है।

आगे जान [बरात] कन्या के ग्राम में पहुंचती है। तब कन्या पक्ष की ओर से सामने पड़मान आती है। मेल के साथ कलेवा जलपान करवाकर जान को निश्चित स्थान पर ठहराते हैं। एक बराती मांडे [बेटी वाले के घर] में वर की बधाई लेकर जाता है वहां उसकी स्त्रियों द्वारा गीतों के साथ पिटाई भी होती है। भोजनोपरान्त सायंकाल के समय तोरण सहेले होते हैं। राजस्थानी में इस टुकाव भी कहते हैं। कहीं कहीं बरातियों का भी इस समय स्वागत होता है। तोरण के समय दही देना आरती करना, गायरड़ी घमकाना आदि मंगल गीतों के साथ सासू के द्वारा संपन्न किये जाते हैं तब कन्या पक्ष की स्त्रियां बड़े स्नेह से वर को घर में ले जाती हैं। इस समय केवल एक नाई ही वर के साथ रहता है। इसके बाद वह मुख्य संस्कार होता है जिसे चवरी या फेरा कहते हैं। यह संस्कार वेद मंत्रों की साक्षी के साथ पंडित लोग संपूर्ण कराते हैं। मगर गायिकाएं भी साथ साथ अपने मधुर गीतों द्वारा रस बरसाती चलती हैं। फेरे उठने पर वर के पिता को बरात के डेरे पर बधाई भेजी जाती है। तब दूल्हा जाकर अपनी बरात में सम्मिलित होता है। इसके बाद मीठी-हाथ, परिचय, मुंह देखाळी आदि के गीत भी होते हैं। दूसरे दो दिनों में भात या जीमणवारों के गाली गीत दहेज की वस्तुओं का सजाना आदि के गीत और बरात को विदा करने के व्यवहारी गीत गाये जाते हैं। इसके साथ कन्या की कारुणिक विदाई भी बड़े समवेत गीतों के साथ होती है। इसके [कन्या के] साथ एक छोटे भाई को भी भेजा जाता है। वह भी बहिन के ससुराल में गीत सुनता है। यदि कंवारा होता है तो उसको काली कुती का गीत भी गाया जाता है।

विवाहित होने पर उसको मधुर गालियां सुनाई जाती हैं। मात्र एक सुरीली गाली का नमूना नीचे पेश किया जा रहा है

> माटै कार भरी तळाई हां क हां रे साल।
> समैधी मैं कूटै वर री लुगाई हां क हां रे साल।
> रोवत कूकत म्हारै आया, हां क हां रे साल
> म्हारै कांमडी के कुचकारया, हां क हां रे साल।
> आयो म्हारा निमळा सबी, हां क हां रे साल।
> कण थांनै मारया, कण थांनै कूट्या हां क हां रे साल।
> घर री तिरिया बार पड़ी है हां क हां रे साल।
> मांगूं रोटी, तांगै चोटी हां क हां रे साल।
> मांगूं पापड़ दे पड़ापड़ हां क हां रे साल।
> मांगूं चावळ बोलै कावळ हां क हां रे साल।
> मांगू दाळ काढै गाळ, हां क हां रे साल।
> मांगूं सीरो, मारे कीरो हां क हां रे साल।
> जी मांगूं जूतां सूं कासै, हां क हां रे साल।
> रातड़ी मैं रात्यूं रोयो हां क हां रे साल।
> प्रात काटर कीकै चढ्यो हां क हां रे साल।

वर के घर वधू का गीतों से स्वागत होता है। उसका मुंह देखना, गोद में लेकर नाचना, पग पकड़ाई करवाना, कोथळी में हाथ डलवाना, जुआ खिलवाना, देवी देवताओं के ले जाना, छापें लगवाना आदि रीतें गीतों के साथ ही चलती हैं। वर-वधू के वयस्क होने पर सुहाग रात की रस्म भी गीतों द्वारा अदा की जाती है। नहीं तो दो दिन ठहरकर वधू अपने पीहर चली जाती है। बींद भी अपने ससुराल मांड़े झांकने के लिए वापिस आता है। अत दो दिन बाद दोनों [वर वधू] वापिस वर के घर पहुंच जाते हैं। कई जगह इस समय मुकलावा या गौना भी कर देते हैं।

देवताओं के मनाने के गीत—ये विवाह से महीने भर पहले ही प्रारम्भ कर दिये जाते हैं। इनमें सर्व प्रथम विनायक [गणपति] के निमन्त्रण पूजा वाले गीत होते हैं। स्थानाभाव के कारण कुछ गीतों के अंश भर दिये जा रहे हैं

> मह रमत भंवर सूं आयो विनायक
> करी मैं अणिन्ती विड़दड़ी
> विड़द विनायक दोनों ही आया
> माय तो उतरिया हरियै बाग मैं
> ढूंढत ढूंढत नगरी की बूझी
> घर तो बतायो माइडी रै बाप री

बेटा थी उठावे थारी पालकी, कोई पोता थी करै रे कंधोल
थी मो बडभागण ऊभा थे रहग्यो, करम्म री ढोवळी
किणनै थे सूंप्या चोकी चूतरा, किणनै थे सूंप्या घर बार
बेटा नै सूंप्या चोकी चूतरा, बहुवां नै घर बार
थाम उतारया बडेरा थानै भोमका, काप रही बनराय
सूं प्रभु कांपे थे बनरी माकडी म्है हा पूर्ब थी री माय
बेटा हो पोता थारा सिधारया, होग्यो थानै बैकुंठा रा बास
थावळ री राधा बडेरां थानै ऊगळा मसम काळापुर री वाड
पोळी तो पोथा थानै लडकडी, कोई ठीबण तीस बरतीस
पोहर उगंतो बडेरां थानै पातियो बीमो भी कुबे थी री माय

बूढ़ों [स्त्री पुरुषों] की मौत पर हर का हिंडोला गाया जाता है। इस गीत के साथ सभी बहिन बेटियें रोती भी रहती है। मृत्यु एक अवश्यम्भावी तथ्य है, उसे स्वीकार करके ही जीवन की गति चल सकती है। इसलिये मृत्यु में ही जीवन का संदेश छिपा हुआ है। ऐसा ही दूसरा गीत है

थांनें राम थी बुलावै थो बडेरा थे मायनै सूं बारै आव
आवोला द्वारका
थे दस दिन मगवत भीरज धरो म्हारा कबरां नै भवां समझाय
थे दस दिन भगवत धीरज धरो म्हारी माया नै मेळ सुळझाय
थे सूपग्यो हो कबरां इस्याकारी म्हारी पीढी बीग्यी सूधार
थांन प्रभु थी बुलावै बडेरा थे मायनै सूं बारै आव
थे दस दिन भगवत धीरज धरो म्हारी बहुवां नै देवां समझाय
सूंपो थे बहुवां इस्याकारी म्हारी ताळा कूंची सेवो मीं संभाळ
थांनै राम थी बुलावै थो बडेरा मायनै सूं बारै आव
थे दिन दस भगवत धीरज धरो म्हारी बीनडल्यां नै देवां समझाय
सूंपो थे बीनडल्यां मायकी म्हारी गुवाडी दीग्यी बगाण

[प्रत्येक पंक्ति के बाद 'आवोला द्वारका' की कड़ी दुहराई जाती है]

शोकावस्था में भी सरल रीतियों सहित लौकिक तत्वों के सूक्ष्म विधि विधान होते हैं। बाप दादे की मृत्यु पर बेटों, पोतों को बाल कटवाने पड़ते हैं। पति की मृत्यु पर स्त्री की चूड़ियां तोड़कर उसके साथ भेजी जाती हैं। मृत व्यक्ति को डोरे तागड़ी उतार कर नहलाते हैं। फिर नवीन कपड़े [खापण] ओढ़ा दिया जाता है। सुहागिन स्त्री की मृत्यु पर मोली मिमिये, चूड़ियां, काजल आदि करके उसे पीला या कसूमल ओढ़ना ओढ़ाते हैं। सबके वक्ष पर आटे का पिंड और पैसा रख देते हैं तथा श्मशान के निकट स्थान पर जल का कलश फोड़ते हैं। यदि मृत्यु पंचकों में होती है तो घास के पूलों की पुतली बना कर साथ जलाई जाती है। श्मशान में पहुंचकर जलाने की जगह पर उल्टा श्रीराम लिखा जाता

भंवर म्हांनें पूजण दो गिणगोर

बहियां में चुड़लो ल्याव भंवर म्हारे बहियां में चुड़लो ल्याव
ओ जी म्हारे गजरा बैठ पुवाय
म्हारा सांईंया सिरदार म्हांने खेलण दो गिणगोर

पगल्यां में पायल ल्याव भंवर म्हारे बिछिया रतन जड़ाव
ओ जी म्हारी चूंदड़ी इचक रंगाव
म्हारा बादीसा सिरदार म्हांने पूजण दो गिणगोर

म्हारी राव रंगीली गिणगोर म्हाँ पूजण द्यो गिणगोर
म्हारै हियां री सिणगार, थांनें म्हाँ पूजण द्यो गिणगोर
खेलण दो गिणगोर भंवर म्हांने पूजण दो गिणगोर

ओ जी म्हारी सैयां जोवे बाट
भंवर म्हांने खेलण दो गिणगोर

इसी तरह परदान पावना, लाल किवाड़ो, जवारों और साढ़ी के गीत बहुत सुन्दर होते हैं। इनमें ब्रह्मायण जी के दो पुत्र ईसरदास और कानीराम तथा रोवां और सूरजमल नाम आते हैं। नवरात्र और रामनवमी इसी मास के उत्तर पक्ष में आते हैं। वैसाख शुक्ल तृतीया को अक्षय तृतीया पूजन होता है। राजस्थान में यह पर्व कृषकों का माना जाता है। जेठ में निर्जला एकादशी और अषाढ़ में सुद नवमी के धार्मिक एवं मांगलिक दिन होते हैं।

सावण पहली सुद नवूं घण बरसै घण बीज
होवा धोरा सामली भेळी करस्यी बीज।

सावण में तीज का त्योहार बहुत प्रसिद्ध है। बालिकाओं के मेहंदी, चूड़ियां, झूले और गुड्डे गुड़ियों का विवाह विशेष शोभनीय होता है।

सावण रा मतरह मवा माव मीलड़ी तीज,
भाव तपरहू तोल दै, के मारगी बीज।

रक्षा बंधन, गुरु पूर्णिमा और श्रावणी भी इसी मास के मान्य पर्व हैं। भाद्र पद से जन्माष्टमी, गोगा नवमी और जलझूलनी एकादशी मनाई जाती है। अनन्त चतुर्दशी भी इसी मास का पर्व है। आश्विन में फिर नवरात्र, दशहरा, शस्त्र पूजा और सीलटांस के दशम शुभ माने जाते हैं। कार्तिक में कार्तिक स्नान कार्तिकेय पूजा, करवा चौथ, अहोई अष्टमी और तुलसी पूजन होता है। इस मास में दीपावली और देवोत्थान एकादशी के पर्व भी प्रसिद्ध हैं। इसमें गाय धन पूजन और लक्ष्मी पूजन होते हैं। मिगसर पोष में संक्रांति पर्व आता है। माघ में बसन्त पंचमी और फागुन में शिव रात्रि का उत्सव मनाया जाता है। इसके उत्तर पक्ष में होलिकोत्सव मनाया जाता है। लड़कियां होली के साथ गोबर

के भरभोलिये चलाती हैं। स्त्रियां पानी का लोटा भरकर खेत सींचती हैं। लड़के फेरे देकर खोपरे खाते हैं। कृषक आज के दिन कुश्ती खेलते हैं और सेजा गाते हैं। अगले दिन गहर या धूलेंडी मनाते हैं।

साल के आरम्भ में देवी-देवता अधिक पूजे जाते हैं। राजस्थान में माताओं के बहुत से मंदिर हैं। कालू की कालिकाजी, पलू की माताजी, देशनोक की करणी माई, सुदद में इन्द्र बाई, सिन्धु मोरखाने में सहुआई माता, बीकानेर में नागणेचियांजी और ओसियां में ओसियां माता विशेष प्रसिद्ध हैं। झूंझणे और गठजोड़े की यात्रा के लिए दूर दूर से चलकर यात्री आते हैं। उनके द्वारा जोत और त्रिशूल का मंगल कार्य मनाया जाता है। सच्चियाय माता और नगर कोट की ज्वाला का भी विशेष महत्त्व है। इनके सिवाय जमवाय माता, सकराय माता, जीण माता, खीमेल माता, शिलादेवी, नाग पोचिया का नाम लिया जा सकता है।

इन माताओं के अतिरिक्त एक विशेष माता मनाई जाती है जिसका नाम है – शीतला माता। राजस्थानी में इसे सेढ़ळ माता भी कहते हैं। इसका मढ़ नोखा ग्राम में है। शेखावाटी में बाघोर की शीतला विख्यात है। इस माता का भक्त कुम्हार और वाहन गधा माना जाता है। इसका त्यौहार ठंडा बासी खाकर मनाते हैं। इसके त्यौहार को बासीडा कहते हैं। यह चेचक की अधिष्ठात्री देवी है। इसके कई गीत हैं। इन गीतों में बच्चों की चेचक से रक्षा करने की प्रार्थना की जाती है। जैसे–

सेढ़ल माई माता देस में म माय देस में मे माय
मड़सठ मंडिया पलाण मोरी माय
बरप्या राजा रावजी म माय, रावजी मे माय
बरपी टाबरियां री म माय
सेढ़ळ बोर्के म्हारी तीरथ री मे माय तीरथ री मे माय
हाथ कूंडाळी पग नेवर मे माय
नवनेवज कर धोकस्यां मे माय धोकस्यां मे माय
टाबरियां मै ठंडा खोला देय मोरी माय
उरी रै उरी कर मीसरी म माय मीसरी मे माय
उरी करी परिवार मोरी माय
उरी रै उरी कर मीसरी मे माय मीसरी म माय
उरी संस्करता री पोळ मोरी म्माय

१ माता सेढ़ळ माई देस में
माता मड़सठ मंडिया पलाण
म्हैं सेढ़ल रा बालीडा
बीरै खुणराव मैं तुठी पंचकुली

माता म्हारी रै सोने री सघर कुण चढ़ावै थे माय
चढ़ावै रामेसर री भायीरथ पर्दै सकड़ भवानी अ माय

आगे इस देवी के गीत में नाम लेकर इसे चढ़ाया जाता है। पुरुषों के कथात्मक गीतों में बाळूड़े का गीत बड़ा मनोहर एवं मार्मिक है।

गीत बाळूड़ो–

मना म्हारा बाळा माई के आयो इक साल, बाळूड़ो म्हारो चाकरी गयो
हां रै बाळा गयो मुगमर्द देस नौकरी करियां आयो
हां रै बाळा माया कमाई सस चार, मा सुरता बरण देस नै गई
मना म्हारा बाळा पंसोड़ो आयो बिसवासीच, दूजोड़े बार्यं बहन रै गयो
मना म्हारा बाळा बीरै मैं आवतो देख बहन चारी पांणी नै चाली
मना म्हारा बाळा बीठो माया री कनै चोर बीरै सू बहनड़ चोर री मिली
मना रै बाळा गयो दिक्खण रै देस, बहनड़ न आवो काइ तो ल्यायो
मना अ बाई बहनड़ नै ल्यायो दिखणी चीर जोगे मैं दिखरण पामड़ी ल्यायो
मना थे बाई, भाणजियां नै कमकमी चीर भाणजड़ा नैनद मोळिया ल्यायो
मना म्हारी बाई, बीरे नै मुरक्या बोल बहनड़ न म्हाराज मूंग्या ल्यायो
मना म्हारा बीरा रैज्या तू अकज रात भोजनियां म्हारा जीमतो सरी
मना रे बाळा गई मोदीड़े री हाट मोदीड़ा छोगो तोलतो सरी
मना थे लिक्खू के आयो आमण आयो बीर, कुणां रो सिवरम पांवणो आयो
मना रे मोदी मी आयो जामण जायो बीर नहीं तो सिवरम पांवणो आयो
मना म्हारा बाळा रांध्या है चावळ भात, छाळी बहनाई जीमनै रह्या
मना र बाळा उरळा चावळियां री खीर मुट्ठी भर खांड मिरत मचो
मना म्हारा बाळा, पूंगी में ढाळी ऊंची खाट भोरै मैं बीरा सुख भर सुतो
मना म्हारा साजन सारा छाई है मोमळ रात परण्योड़ा म्हारी परज सुतो
मना म्हारा परण्या बीरै नै सेवां आपां मार तो माया आखी आपणै रैवै
मना म्हारा परण्या माया है लाख हजार बनां मैं बुनियां ब्याज भरै
मना थे रंडी पूत लगाऊं चोय चार कुळ मैं बहनोई कुण तो करै
मना म्हारा देवर बीरै नै सेवां मापां मार तो सारो धन आपणै रवै
मना म्हारा बाळा देवरियै पकड़या दोनूं हाथ सिमळूड़ी चालो मोबी बरपो
मना म्हारी बहनड़, भरकै तू जीवतो छोड़ जो सारी धन उनै ही दियो
मना म्हारा बाळा देवरियै पकड़या दोनूं हाथ सिमळूड़ी मायो काट तो दियो
मना रे बाळा धड़ तो नाखी है कुवै मांय सर माया माची कोठी मैं धरयो
मना म्हारा बाळा मूव नै हुम्या दिन चार, मायड़ र बाळो सपनै मयो
मना म्हारी माता मूवां नै हुम्या दिन चार बाळूड़ो बांगो मार तो दियो
मना रे सपना पड़ग्यो मी माळ पंपाळ बाळूड़ो मेरो चाकरी गयो
मना म्हारी माता नहीं बहनोई की नै चोठ जामोड़ी तेरी करम करया
मना म्हारी माता धड़ तो नाखी है कूव मांय धन माया मायी कोठी मैं धरयो

भलो ये माता हाथ लीनी है तिरसूळ, टीबाळू मायड़ भरा ती चढ़ी
भलो मेरी बेटी, पायो नी आमण आयो बीर, मायोड़ी भाई कुमीर्ये पड़ी
भलो म्हारी माता आयो हो आमण आयो बीर, सौदागर बाळी पाछी ही पयो
भलो म्हारी बेटी गोलो नी राजड़ किवाड़, कोठी म मेरो भरम पयो
भलो ये माता, पैं खोल्या राजड़ किवाड़, मायड़ नै माथो हुंसतो मिल्यो
भलो ए बेटी, भारी हत्यारी पापण रांड, बाळूडो मेरो मार दो लियो
भलो ये माता कुवै सूं धड़ लीनी काढ़ माथो धड़ दोनूं जोड़नै दिया
भलो म्हारी माता मिळग्या भाई भोळा सिभू नाथ, बाळूडो झट अमर कियो
भलो म्हारा बाळा बाळी जोपण री उपदेश, मा बेटो दोनं गांव नै गया
भलो म्हारी माता नहीं बहनड़ नै देवूं दोष सिरपोड़ा मेरा करमां रा टळे

यालूड़ा नौकरी से धन कमा कर वापिस घर लौटता है। रास्ते में बहिन के यहां ठहरता है। बहिन अपने भाई को देवर की सहायता लेकर मार डालती है। उसका सिर अपनी कोठी म छिपाकर, धड़ [शरीर] कुए में डाल देती है। तथा सारा धन हजम कर जाती है। मगर देवी इस घटना को प्रकट करके यालूड़े को पुनः प्राणदान देती है। इस कथा का वालूड़ के गीत में वर्णन है। विशेष कारणों से मरे हुए अनेक सेवकों को पुनः जीवन दान देने के कथात्मक अगणित गीत मिलते हैं। इस चमत्कारिक गीतों में बादशाह की कैद से देवी द्वारा मुक्त किये जाने के कुछ गीत भी मिलते हैं। थोड़ा दूसरा उदाहरण देखिये—

कुछ दमी राजा मडीचन्द राजा कुछ छन में महाय कियो
जागो सूर्य जोत बाळी तेरै भवन में उजियाळी
यह दिलड़ी सूं चढ़ियो है मुगल को, मडीचन्द नै कैद कराई।
हाथां रो पगां में बीर बेड़ी बसाई पछै दिव दोप चढ़ायो
जागो सूर्य जोत बाळी तेरै भवन उजियाळी।
काळा पाड़ा सूं माजी सिंह पलाण्यो भर भमतां री भटा पधारै।
सिंह चढ़ी माता हाथ्मा मारै मे दे मडीचन्द बारै मारै
हाथां पगां री बेड़ी कटाई गळ सूं तोक कटाई
जागो सूर्य जोत बाळी तेरै भवन मे उजियाळो।
पकड़ पछाड़्यो तेरै बादशाह नै की हुरमां मटका भरै
जागो सूर्य जोत बाळी तेरे भवन में उजियाळी।

एक राजा को मुगल बादशाह ने कैद कर लिया। तब राजा ने देवी का स्मरण किया। देवी जेल के द्वार खोल कर भक्त को मुक्त कर देती है। बादशाह और उसकी हुरमें घबराकर देवी की शरण में आते हैं। इस तरह के चमत्कारिक गीत काफी मिलते हैं। उक्त दोनों गीत जोपे माता जी के जागरण में गाते हैं।

कथात्मक गीतों म पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के द्वारा गाये जाने वाले गीत अधिक हैं। इनमें सहधण माता और जीण माता के गीतों की कथा भी बड़ी अमर

एक उदाहरण है। गीत सैंसण माता का —

उत्तर दीखण सूं दोय मुनिवर आया हो   आय उतरिया हरियै बड़ हेठै
ढूंढत ढूंढत संतां नगर ढिंढोळ्यो सैंसण माता रो बतायो घर जिस्यो
ऊंची सी मेडी माता अगम झरोखा   बैठ झबरको माता रै बारणै
म्हारा सासूजी थे साधां रै पधारिया   मुनिवर गोचरी पधारिया जी
मोरो बेरायो माता लाडू बैराया   मोदकिया बैराया बळ भाव सूं जी
लाडू बैराया माता पळजी बेराई   घेवर बैराया बळ भाव सूं जी।
दाल बेराई माता चावळ बैराया   खीच बराया बळ भाव सूं जी।
साग बैराया माता फलका बैराया, पापड़ बराया बळ भाव सूं जी
भोमा बैराया माता पातरा बैराया, टोपसियां बेराई बळ भाव सूं जी।
सुण सुण ए म्हारी आस पाड़ोसण   म्हारी सासूजी नै मत कहियो जो
भून्य सिरी रो हक लाडू देस्यूं   मळे कसूंबा कांचळी जी
गूंद गिरी रो लाडू नदी बहाड़ूं   कांचळी फाड़ धजा करावूं जी
म्हारी जीम बाई घर   घर घाले जी   कद थारी सासू आवै घर मैं बहू
इमैं म्हारी सासूजी घरां पधारिया, पाड़ोसण दौड़ सामी गई जी
सुण सुण ए म्हारी सास पाड़ोसण   थारी बहुअ साध बेराइया जी
देई ना लोक्या देवता ना घोक्या   सै सूं पैल्यां साध बैराइया जी
उठो बेटा हठीसिंह सपूत म्हारा, बेगी लो काढ़ो घर री कुळ बहू जी
कांई रै बिगाड़ियो माता कांई रै उजाड़यो   किण विध काढ़ो घर री कुळ बहू जी
थारो बिगाड़यो बेटा सारो ही उजाड़यो   सारा सूं पैल्यां साध बराइया जी
काळा बळदां सूं रथ जुड़ायो, काळा वसतर पैराइया जी
उठो बेटा सिवकरण उठो बेटा देवकरण, थारी दादी देमूठो दे दियो जो
पीवर ना छोडी थानें सासरै ना छोडी   अस रोही में छोड्या बेकला जी
सिवकरण बेटा नै भूख लग आई   देवकरण नै तिसाइयो जी
सूकी डाळ्यां दूध भर आयो   सूका रूंखां रै फळ हुया जी
इमैं म्हारा सासूजी रसोयां पधारिया   रसोयां रा आमा रतन जड़्या जी
घोरो संभाळ्यो दाळ भात संभाळ्या   सारी तेवड़ सूनी होड़ी हो रही जी
उठो बेटा हठीसिंह रथ जोड़ावो   बेगी लो ल्यावो घर री कुळ बहू जी
बहू बिना म्हारो मांगणियो मळोळो   पोता बिना आसळ बिरंगी जी
बोळै बैठा री रथ में पौंच्या   थानें थारी सासू बेठै करया जी
थे सेवो देवकरण थे सेवो सिवकरण   म्हे नहीं आवां थारै बारणै जी
पाट पहरस्यां सूवो पहरस्यां   मळै नहीं आवां थारै बारणै जी
सातवी बांवता आगी आस्यां, मळै नहीं आवां थारै बारणै जी
सतरम आस्यां माता सैंसण कुवास्यां, कुळ में आयो बधारस्यां जी
बैठा जोता पत तप बळ देस्यां, महीमाळा लोक पुगावस्यां जी

साधुओं को सारी चीजें सैंसण माता ने बैरादी, मगर ये सब बातें पड़ौ

सिन के नजर में आ गई। लाख प्रलोभन देने पर भी पड़ौसिन ने उसकी सास से साधुओं के परोसने की सारी बात कह डाली। सासू ने अपने बेटे से शिकायत की। और बहू का घर से निकालकर बाहर छोड़ आने की बात कही। बेटे का यही करना पड़ा। न पीहर न सासरे, जंगल के अन्दर आकर सेंसण माता को छोड़ा। वहां उसके पुत्र देवकरण शिवकरण को भूख प्यास लगी। सत के कारण पेड़ पौधे फूल गये। पाछ सासू के भंडार भी भर गये। अब तो सेंसण माता को वापिस घर बुलाया गया। किन्तु सेंसण माता ने कहा –

सोनियै पीढ़लां धरती पर पीढ़लां भलै बजै म्हारा बारै बारवें की।

सेंसण तपस्या के कारण माता कहलाई। जन धर्म के तेरा - पंथी सम्प्रदाय में सेंसण माता की भारी मान्यता है। जन मन्दिरों में प्रायः सेंसण माता की मूर्ति स्थापित होती है। श्रावकों में वास [उपवास], दो दिन, तीन दिन, पंचोला एवं अठाई तथा क्रम से महीने भर तक निराहार तपस्या करने वालों को सेंसण माता ही बल देती है, ऐसी उनके धर्म में गाढ़ी धारणाएं हैं। इन उपवास रखने वालों की जब तक तपस्या चलती हैं, उनके घर रात्रि को अन्य गीतों के साथ 'सेंसण माता' का उक्त गीत भी गाया जाता है। अंत में तपस्या पूर्ति के दिन [पारणा करने दिन] यही गीत गाती हुई महिलाएं तपस्या करने वालों को माता के मंदिर में ले जाती हैं। इसकी भांति एक जीण माता भी भावज द्वारा पीड़ित होकर पहाड़ों की गुफाओं में जाकर तपस्या के द्वारा प्रसिद्ध देवी हुई है। जीण का भाई पहाड़ों में मनाने जाता है तब बहिन कहती है –

हरसा भाई म्हारा रे सिखर चढोड़ो रे सूरज मुड़ चले
समय मी चढोड़ो मुड़ जाय भावज रा बाया बोल मावोड़ी रे पाछी ना मुड़ै।

इस गीत का कुछ भाग राजस्थान भारती भाग एक अंक १ में और पूरा गीत मरुभारती वर्ष १० अंक दो में छपा है।

तपस्या गीतों की भांति शील और साहस के कथात्मक गीत भी राजस्थानी लोक साहित्य की आन है। सुपियार दे डूंगर बेना बाई, चन्द्रावळी, निहालदे, जसमल सजना जणणी, उम्ली भीयणी आदि के गीत प्रसिद्ध कथानक हैं। इन गीतों की नायिकाओं ने अपनी आन पर हंसते हंसते मृत्यु का आलिंगन किया है। ऐसी इनकी करुण कथाएं हैं। नभी तो जनता इनके गीत गाती है। नारी साहसान्वित पातिव्रत्य धर्म की हिलोरें बड़े वेग से प्रवाहित होती हैं। उनकी भाव लहरियां दृढ़ता, सबलता और बड़े धैर्य के साथ तरंगित होती हैं, जिनमें अनेक राजा महाराजाओं की लालसा विलीन हुई है। ऐसी ऐसी सती नारियां अपने पति के समक्ष राजा ही क्या सुर तक का तिरस्कार कर चुकी हैं। वे अपने स्वामी के सामने

किसी को कुछ भी नहीं मानती। घर, खेत और पशु सब सराहने योग्य हैं और उन सब पर उसे अभिमान है। अपनी वस्तुओं के आगे वह दूसरों को धन सम्पत्ति और रूप-यौवन को तृणवत् समझती है। इन गीतों में नारी का चरित्र कठिन परिश्रम करके अपने आत्मबल द्वारा औरों के ऐश्वर्य को सहज ही ठुकरा देता है।

देखिये एक जसमल का गीत—

राजाजी तो कायर ओकळ्या मे
जसमल भिलती ओवानै वेगी आव
प्यारी म्हांनै लागी ओडणी ए
जसमल थां पर रीझ्यो राव राव खंगार

बसवानै देख्या ए जसमल ओरियौ ए
जसमल खिलवानै देख्या समद तळाव
जिमवानै देख्या ए जसमल बाजरी ए
जसमल दुयवानै देख्या ओळो गाय

ओढ खोदै ओडणी ढोवे ए
जसमल फूलरिया तो बांधै ओळी पाळ
थोड़ी थोड़ी ढोवी ए जसमल ढोकरी ए
जसमल पतळी कमर बळ खाय

राजाजी तो बैठा है पाळ तळाव री ए
जसमल घुग घुग कांकरड़ी सी बाय
मतना बावो राजाजी कांकरी ओ
थांमी राजा बैठे म्हारा देवर जेठ
अकल घर्लूंणा राजवी ओ
ठरलयोड़ा ठाकर मूस्यो मूस्यो राव खंगार

किनड़ै उम्मारै थारो घर घणी ए
जसमल किसड़ै उम्मारै देवर जेठ
सांवळी सूरत म्हारो घर धणी ओ
थांमी राजा भाम जुमाई देवर जेठ

कई तो मराबयू थारो घर धणी ए
जसमल कई तो मराबयू देवर जेठ
मारतो मरायै बाजूं रांडकी ओ
थांमी राजा देवर जेठां सूं हुवै कुनाव

राजाजी बुलावै ए जसमल ओडणी ए
जसमल महल ओवण म्हारा माय
कांई तो ओवा थारै महला री ओ
मूस्या राजा म्हांनै म्हारी छपरया री कोड

रि

राजाजी सुहार्डै म जसमम मोडणी ओ
तनक मिजाजण कंवर ओलप म्हारा साथ
काई तो ओलांमा थारै कंवरां री ओ
मोळा भूपत म्हानै म्हार ओडड़ियां री कोड

राजाजी सुभाव पे जसमम ओडणी ओ
उनळदंती रानियां ओलप म्हारी साथ
काई तो ओलांमा थारी रानियां रो
कांमी राजा म्हानै म्हारा ओडणियां री कोड

राजाजी सुभाव में जसमण ओडणी ओ
रेसम र जी ओढ़णिया ओलण म्हारा साथ
काई तो ओलांमा थारा ओडसा ओ
पापी राजा म्हानै म्हार राठणियां री कोड

ओडणियां सबी है पूरी सांझ री ओ
कुबधी राजा ओड सजपा है उजळी रात
नाम पड़ी कुवडा मुमें ओ

कुमती राजा ओड ऊजळी पाल्यां जाय
इसड़ी थे आंपती जसमम ओडपो ओ
केसर बरणी डरा थारा देवतो सुहाय

तू म्हारा बोरिया सोभागियो रे
मोळा बोरा थां पर मीटी जसी किम थार
तू म्हारी डिसड़ी सोभागणी ओ
पड़ी खिलड़ी थां पर ओपा जसमां पाव
तू म्हा ी कुसड़ी सोभागणी ओ
सूपी लिबड़ी जसमल राळपा ठर्ग टूक

सो ओड़ा री हांणियां ओ
ठरपोडो राजा फौज बणायर चढ़ियो बार
बांकड़ आवतो नरपत नावड़पा ओ
बमनै राजा जसमां रा पकड़पा दोनूं हाथ

मूं तू राजाजी थारी पीवड़ी ओ
बाबस राजा पे म्हारा जळहर पामी बाप
मरप मारग में मच गई ओ
थोरी थारो हाथां में माप दुधार

जनमी ही रंग महल में ओ
बाबम राजा दीनी मनै ममशरीयै विराप
तू म्हारी परती देई बगाड़ी ओ

जीवड़ली में बोल्यो भारी पाप
ये थोड़ै चढ़यो भावूं वे
मोमी माता किसड़ै मुख जाऊं राव लंगार

[राजा के पद में 'प्यारी म्हांने लागो ओळमो ओ' और क्षत्राणी के पद में ठरक्योड़ा राजा भूल्यो भूल्यो राव लगार' के वाक्य बार बार दुहराये जाते हैं]

गीत क्या है ? गीता के अट्ठारह अध्यायों का सार है। सुख सम्पत्ति में शील सयम का पालन करना कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु दुर्बल परिस्थिति मे उसकी रक्षा करना बड़ा कठिन कार्य है। जसमा के उज्ज्वल विचारों से राजा का हृदय साफ हो गया। उसने फौज को भर वापिस लौटाकर स्वय ने वहीं जीवित समाधि ले ली। राजस्थान में मांगलिक अवसरों पर यह शिक्षाप्रद गीत गाया जाता है। ऐसा दूसरा गीत कलाळी का प्रस्तुत किया जा रहा है

गीत कलाळी—

बादळगो भंवर जी चढ़यो गिगनार, हां भो भंवर जी
कोई फिरत्यां व्हे भाई चढ़ रै बागरै जी राज
सूत्या पना मारू सुख भर नींद हां भो भवर जी
कोई सुपनें में दीठी नार कलाळ री जी राज
जाड़िया सेठा मारू, ढळती मांझल रात हां भो मवलकिया जी
कोई किण तो उगायी कलाळी रै देस में जी राज
बूझ्यो पना मारू गायां रा ओ गुवाळ हां भो भायेलां रे
म्हांनै देस बतायो मसत कलाळ री जी राज
बायों कंवरसा बावै जैसलमेर हां भो मवलकिया जी
थारै जीवणी तो बाजी देस कलाळ रै जी राज
बूझ्यो भंवर माळीड़ै रौ पूत हां भो माळीका जी
म्हांनै बाग बतायदो मसत कलाळ री जी राज
यो ही छै भंवर जी कलाळी री बाग हां भो बागीसा जी
कोई आंबा तो पाक्या नींबू रस भरया जी राज
बूझी पना मारू पांणी री पणिहार, हां भो सहेल्यां जी
म्हांनै पोळ बताओ मसत कलाळ री जी राज
सूरज सांमी कलाळी री पोळ हां भो मवलकिया जी
है मेळ मजरको कलाळी रै बारनै जी राज
पोळीड़ा रे भाई पोळ तो उघाड़ हां भो पोळीड़ा जी
कोई बारै तो ऊभा सिगरथ पांवणा जी राज
पोळ कुलफ रो प्यारा जी दीवै नाहीं खोल हां भो भंवर जी
कुण पोळयां में सूतो पूत कलाळ री जी राज

कोसों में कसाळी प्यारी सजड़ किवाड़ हां मो कसाळी जी
थारै बाहर तो ऊभो है बेटी राज रो जी राज
होळै भंवर जी धीमा मधरा बोल, हां मो मदछकिया जी
कोई पोळ्यां में सुसरो जी सूत्या सांभळै जी राज
सुसरै जी मैं बकसावां कसाळी गांगड़ला रो थाट हां थे नसराळी जी
कोई अेक दिरसी धूभो बापरो जी राज

धुड़ला भंवर जी पाछा थारा फेर हां मो बादीला जी
म्हारी आंगण तो फूटै है जड़ियो काच रो जी राज
आंगण में कसाळी देऊं रतन जड़ाय हां मो कसाळी जी
थारा बाप रा बुड़ावूं आभा हींगळू जी राज

होळा भंवर जी धीमा मधरा जी बोल हां मो मदछकिया जी
कोई सेज्यां में सूत्यो पूत कसाळ रो जी राज
थारै बे भंवर नैं देऊं दोय भारी परणाम हां मो कसाळी जी
कोई अेक गोरी दूजी सांवळी जी राज

थे छो कसाळी राणी इमक सरूप हां मो मदवाळी जी
थानै घाल तो पटां में प्यारी मे घरूं जी राज
पटां में पाना माफ तेल फुलेल हां मो रंग रसिया जी
कोई नार पराई संग में मा घरै जी राज

थे छो कसाळी प्यारी इमक सरूप हां मो कसाळी जी
थानै घाल नैणां में प्यारी मे घरूं जी राज
नैणां में बादीला सुरमैक री रेख हां मो दिनाका जी
कोई नार बिराणी थारो जीव मधु भूळै जी राज

दीठी कसाळी थण इमक सरूप हां मो मोनेगण जी
थानै पहर गळै में प्यारी मे घरूं जी राज
गळै में छैला माफ कंठी डोरा फेर हां मो भंवर जी
कोई नार पराई थारै संग ना बसै जी राज

थे छो कसाळी प्यारी मधी मो सरूप हां मो कसाळी जी
कोई घाल डबी में थानै मे घरूं जी राज
डबी में भंवर जी रुपिया मोहरां घाल हां मो परदेसी जी
कोई नार पराई थारै साथै मा बसै जी राज

थे छो कसाळी प्यारी इमक सरूप हां मो मिजाजण जी
थानै बांध कड़्यां में सायै मे घरूं जी राज
कड़्यां में कमर जी राखो भंवर कटार हां मो बिलासा जी
कोई नार छैला रो थारै संग ना बंधै जी राज
दीसो कसाळी म्हांनै मधी मो सरूप हां मो मगीजण जी
कोई घाल पनां में थानै मे घरूं जी राज

पवां में पाजमिया क्यों मोचड़ल्यां पैर , हां म्हो नाबीदा जी
थानें मार पराई हरणव ना मिल की राज

कैसा उपयुक्त उत्तर है ? राजकुमार का सारा नशा उतर जाता है और वह सीधा अपने घर का रास्ता ले लेता है ।

राजस्थानी स्त्रियों के गीत, लोक साहित्य की अमूल्य संपत्ति है । उनकी संपत्ति पुरुषों के गीतों की अपेक्षा काफी विशाल है । जन्म , विवाह , व्रत, त्योहार और अनुष्ठानिक गीतों के अतिरिक्त जिन अनेक कथानकों के प्रवेश इन गीतों में पाये जाते हैं वे उन्हीं के [स्त्रियों के] जीवन से अवतरित हुए हैं । विषय पात्रा के माध्यम से स्त्रियां अपने वर्ग की घटनाएं गुम्फित कर लेती हैं । अपने सजातीय हृदय की उथल-पुथल, सुख-दुख संयोग वियोग आदि भावनायें भिन्न भिन्न स्थानों पर गीतों के रूप में व्यक्त कर देती हैं । इन गीतों में भव्य भावों का अशेष भण्डार भरा रहता है ।

नारी जाति की विराट आत्मानुभूति गीतों की प्रत्येक कड़ी पर जड़ी हुई है । इनके पावन मन की महानता जीवन क्षेत्र के पग पग पर जागृत है । बालक के लिए मां की सुमधुर लोरियां, प्रियतम के लिए विरह में तड़पने वाली नववधू की तड़पन , विधवा की कसक , कन्या का हास्य , झूले की बहार , पति पत्नी के मिलन विरह की कथा, उलाहना, पहेलियां आदि मानव जीवन से एकात्म हैं । उनके हृदय से निकल कर बाल विवाह, वृद्ध विवाह एवं अनमेल विवाह के सरलोद्‌गार भी अपने विवेकपूर्ण परिणाम तक पहुंच गये हैं । इनकी रागात्मक व्यंजना सम्पूर्ण कलाओं में प्रकट होकर लोक प्रिय बन गयी है । अब मैं दो छोटे कत विषयक लोक गीत आपके सामने प्रस्तुत करता हूं । ये जन जन में प्रचलित एव अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना से ओत प्रोत हैं और जगह जगह अलग अलग नामों से मुखरित होते हैं । पहिले एक दुलजी नाम का बाल-विवाह विषयक गीत लिख रहा हूं ।

इस बाल-विवाह की कुरीति के कारण लोक गीतों में पति को पत्नी द्वारा शिशु की तरह हुलराया - दुलराया जाता है । दुलजी गीत में बाल विवाह प्रथा की खिल्ली एवं उपहास दर्शनीय है , ऐसे गीत जवाई के लाड़-प्यार के लिए गाये जाने वाले गीतों में शुमार किये जाते हैं । बाकी शील और साहस क गीतों में भी ये गीत गिने जा सकते हैं ।

गीत दुलजी—

दुलजी छोटो सो छोटो म्हारा स्याणा रे छोटो सो
बड़ले रा पान चकाचक बोल्या , दुलजी नैं मलपी हिंडोळो रे दुलजी छोटो सो
बड़ले रै डाळे मोटा लेबै रेशम री तणियां री डोरी मांडपी रे

बाप कहता राह बटाउड़ा, कुलजी नै छोटी देई रे
कोई सासे थारे भाई भतीजो, कोई थारे छोटोड़ो देवर रे
ना म्हारे सासे भाई भतीजो, ना म्हारे छोटोड़ो देवर रे
म्हारे बालम को वर हरयो बेलण सूं वर छोटो रे
सासूजी री जायो ननद बाई रो बीरो म्हां कुलजी रो ढोली रे

आधी आधी रात पहर रो तड़को, कुलजी मांगे दही रोटी रे
सासूजी सूता बाईसा सूता कठै सूं लाऊं दही रोटी रे
सासूजी म्हारा सूता कै जागो, बेटो थारो मांगे दही रोटी रे
छींके पड़ियो दही रो कुलड़ियो, चूल्हे पड़यो आधी रोटी रे

आधी आधी रात पहर रो तड़को, कन्दोई हाट खोली रे
म्हांने साहू म्हारी बाईसा नै बछेरो, [म्हारे] कुलजी नै घेवर खंडाई रे
आधी-आधी रात पहर रो तड़को, सोनीड़े हाट खोली रे
म्हांने नाथ बाईसा नै तिमणियो, [म्हारे] कुलजी नै डोरो पचलाई रे

आधी-आधी रात पहर रो तड़को म्हारे दरजीड़े हाट खोली रे
म्हांने अंगियो बाईसा नै कांचळी [म्हारे] कुलजी नै घोळो छींट लाई रे
छोटो छोटो मत कोई कैज्यो छाटकियो मदन मुरार रे
आधी आधी रात पहर रो तड़को मोचीड़े हाट खोली रे
म्हांने चूंदड़ी बाईसा न घाघरो कुलजी नैं पेची रंग लाई रे
छोटो छोटो मत कोई कैज्यो छोटकियो सूणां री सोपारी रे

पति बच्चा है, दाम्पत्य जीवन की बातें वह क्या जाने ? परन्तु उसकी युवा स्त्री बड़ी मतवाली है। वह अपनी खिन्नता प्रसन्नता को रोकने में असमर्थ होकर अपार हृदय-वेदना को उल्लास मुस्कराहट में परिवर्तित कर देती है। वह अपने छोटे पति के लिए छोटी गुड़िया जैसी बहू भी ब्याह देने की किसी संबंधी से प्रार्थना करती है —

आधी आधी रात पहर रो तड़को सर्राफी हाट खोली रे
म्हांने लोंक म्हारी बाईसा नै नाथी कुलजी नै छोटी लाडी लाई रे
छोटो छोटो मत कोई कैज्यो छोटकियो दो दो नारयां राखै रे

[इस गीत की प्रत्येक पंक्ति के बाद 'कुलजी छोटी सी' का पुनरावर्तन होता है।]

इस गीत में नैराश्य विहीन हृदय का बेधकर विरह की मूक पुकार, अनोखी मनोल्लासता के साथ प्रतिध्वनित होती है। पति के छोटे होने से थोड़े दिनों के लिए अभाव होता है। वह अभाव मीठी आशा एवं अनुपम उम्मीद के सहारे पलता है। वह अल्प समयोपरांत नारी के मनोमालिन्य को अपने यौवन की प्रबल धारा में बहाकर प्रियतम से एकाकार कर देता है, अतः पति की लघु वय

का गरुण होते हुए भी मधुर है। क्योंकि उसमें प्रियतम के वयस्क होने का दीर्घ सुख अन्तर्हित है। अतः इन गीतों में मनोवैज्ञानिक तथ्य दृष्टव्य है। जिस प्रकार प्रातः काल की पंखुड़ियां आल वाल में बिखर जाती हैं, उसी प्रकार छोटे कन्त की नारी हास्य परिहास में विलम कर पति की लघु वय के दारुण समय को गीत गाकर व्यतीत कर देती है। उसके यौवन प्रसग के प्रत्येक अग पर गीत बन जाता है। आगे आप छोटे बालम का ऐसा ही एक और गीत देखिये —

बालम छोटो सो—

बारा बरस री बालमी पच्चीसां ब्ळ गई नार बालम छोटो सो
मस्ती कळपां री बादरो, बो सावण में झुक जाय

सातीड़े रै जातां होसो हठ पकियो म्हनैं गाडुलो घड़ावे नार
गाडुलो घड़ावे थांरी बापजी म्हारै सासा मनी मारे भरतार
छोटो छोटो तू मत करे अब रात मरद री कांम मोटो होय जासी

दरजीड़े रै जातां होसो हठ पकियो म्हनैं टोपली सींवादे नार
टोपलो सींवावै थारी माऊजी म्हनैं सासां मती मारे भरतार
छोटी छोटी गोरी मत कर तू रात मरद री कांम, आजार परण्योड़ी

सुनारां मे जातां होसो हठ पकियो, म्हनैं साडुड़ा तुळादे भरतार
साडू तुळावे थारी वीरोजी, म्हनैं सासां मती मारे भरतार
पांनीड़े मे जातां होसो हठ पकियो म्हनैं मोती घड़ावे भरतार
मोती मेलै थारा बापजी म्हनैं सासां मती मारे भरतार

गजरस झूम सावन में थूं कठै भचायो म्हारी बीर
म्हारो योवन खिल रह्यो थांरी बीरी डर झुक जाय भोळी मणरोकी
मन मन री मर कमी नहीं, म्हारै झूमै भूरी म्होट मोटी हो जासी
गजरस पाटी मैं सेवूं पन मो दुख सह्यो न जाय बालम छोटो सो

यौवन का सुख वाह्य साधनों में नहीं मिलता। वह तो अन्तःकरण के उपकरणों से ही प्राप्त होता है। पर छोटे कन्त की स्त्री ऐसे आशा अन्य समय को हास्य परिहास तथा गीत-गान द्वारा बड़ी सरसता से बिता देती है। वह बड़े ही धीरज के साथ कहती है—

म्हारि जोड़ी बनती सी बनसी
कुंभ जुग कंकरी मैल बणायी
बैठण री रुत जासी
घुग घुम कळियां सेज बिछाई
पौढ़ण री रुत जासी
म्हारी जोड़ी बनती सी बनसी

आखिर छोटे कंत को नारी जोड़ी बना ही लेती है मगर बूढ़े की स्त्री की

जोडी बनती नही, दिनोदिन बिगड़ती जाती है।

इस तरह के गीतों में जुवार मल, काळ्यों, मेघूड़ो, ढोलो, काळो, मांमण में गिड़ो सेस, चोढो फो महों स्याम आदि गीत मिलते हैं। इन सब में अनमेल विवाह की हंसी समाज की कुरूपता तथा रूढ़िवादिता की भयंकरता के दिग्दर्शन होते हैं। 'बड़ो बहू बड़ा भाग, छोटी बनड़ो बड़ो सुहाग' की कहावत पर कुठाराघात है। ऐसे गीतों में से जुवार मल के गीत का कुछ अंश भी पढ़िये —

मैं मेरी मां के लाडली, जुवार मल मैं परणाई — जुवार मल डावड़ो
पीसत मोई पोवत मोई पांमोई में बाला जी जुवार मल पांगळो
हाथम कसियो कांधे मेळो सिर पर बाली जी जुवार मल को पावणूं
भादो सो गैलो हरियो सी पीपळ बे बड़ बाल्यो जी जुवार मल को पावणूं

लोक साहित्य का आदर्श और ज्ञान, मानव व्यवहार में छाया की भांति साथ साथ चलता है। यह रिकार्ड बजने, रेडियो सुनने और सिनेमा देखने की तरह हमारे दिल दिमाग का सौक्य मात्र साधन नहीं वरन जन जन की मनोरंजित एवं जागृत व्याख्या है। जीवन के हर एक पहलू का परम प्रतिष्ठित गौरव है। समाज की ऊंची से ऊंची चोटी से लेकर नीची से नीची श्रेणी तक में इसकी शिक्षा का प्रसार है। वह केवल इने गिने प्रयायुक्त विषयों के पीछे ही नहीं रहता, वह तो लोक के शाश्वत स्वस्थ एवं निश्छल अभिव्यंजनास्वरूप मानवीय तत्वों का ही प्रदर्शन करता है। उसका वास्तविक लक्ष्य जीवन के जटिल मार्ग का रसमय निर्देशन करना एवं भव्य भावों को सरल भाषा में उतारकर अपने पवित्र सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करना है।

ये लोकगीत जन-जन के मुख से उद्भूत होकर पीढ़ी-दर पीढ़ी को सदुपदेश देते हैं। राजस्थान के जन जीवन की ये अभिव्यक्तियां उसकी सच्ची आत्मा है। राजस्थान और लोक वाङ्मय का संश्लिष्ट वर्णन इतिहास की अपूर्व शोभा है।

—

४

लोक कथा

लोक कथा का बीज — मनुष्य ने जिस समय से वाणी की सत्ता प्राप्त की ठीक उसी समय से कथा कहने की आदि-वृत्ति ने जन्म लिया। इस तथ्य को स्वीकार करने में संभवतया किसी भी सामाजिक व्यक्ति को दुविधा नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इसी प्रक्रिया को अपने परिवार के बीच में एक स्वयं सिद्ध सत्य के रूप में देख सकता है। हर घर में एक शिशु की कल्पना की जा सकती है और उसके विकास के विशेष आयामों को पहिचाना जा सकता है। सजीव, किन्तु भाषा विहीन बालक मुखाकृतियों एवं अंग संचालन के द्वारा अपने स्थूल सुख-दुःख की भावना को व्यक्त करते करते भाषा में तुतलाना प्रारंभ कर देता है। सीखने के इसी क्रम में एक दिन वो बोल चाल के शब्द भण्डार के प्रतीकों को समझने लगता है। इस छोटी सी शब्द शक्ति को प्राप्त करते ही शिशु का मन कथाओं को सुनने के लिए लालायित हो उठता है। बाल्य काल से लेकर प्रौढ़ावस्था तक पहुंचते हुए ज्ञान प्राप्त करने की जो सीढ़ियां हैं — उनके विकास क्रम के ठीक नीचे आदिम मनुष्य से लेकर आज के मनुष्य तक पहुंचा जा सकता है।

इसी तथ्य को यदि दूसरे रूप में प्रस्तुत करें तो कह सकते हैं कि शिशु जीवन को प्रशिक्षित करने के लिए 'कथा' का आज जो योगदान है — ठीक वैसा ही योगदान एक दिन आदिम समाज में कथाओं ने अदा किया था। शिशु की कल्पना, उसके अमूर्त प्रतीक, उसका सूक्ष्मदर्शी मानस और निश्छल रेखामुखाकृतियों में तन्मयता को देखने का मनोविज्ञान आज जितना बड़ा सत्य मान लिया गया है — वे सभी तथ्यानुतथ्य आदिम कथाओं पर भी लागू होते हैं।

किन्तु अवस्था अनुभव व ज्ञान की सीमा के बढ़ने से जिस प्रकार मनुष्य की वृत्तियां भिन्न भिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक, कलात्मक मनोवैज्ञानिक आदि आदि विषयों में तल्लीन हो जाती हैं — उसी प्रकार कथाओं का क्रम भी नानाविध विषयों के रूपों में बह निकलते हैं और फिर उनकी

विषय-गत गणना असंभव बन जाती है। मनुष्य की समस्याएँ समुद्र की भाँति विस्तृत हैं और उस समुद्र की ऊर्मियों को गिनना असंभव है उसी प्रकार कथाओं रूपी कल्पनात्मक लहरों की गणना भी असंभव बन जाती है। फिर भी हम साधारण समझने की सुविधा के लिए कुछ वर्गीकरण, कुछ सुविधाजनक विभाजन बनाते हैं। शायद इस 'संकेत' प्रयत्न की शक्ति से आज हम लोक कथा जैसे विराट विषय का समस्त का आंशिक दावा भी कर सकेंगे।

मनुष्य के आदि जीवन में उसकी असहायता प्रमाणित होती है। उसके किया कलाप भय, विस्मय, प्रेम, आस्था और सामान्य प्रमाद से ओत प्रोत हैं। वह प्रकृति की प्रक्रियाओं को सदैव भावना प्रवण रूप से देखता आया है और वह उस पर अपने अनुकूल एवं प्रतिकूल कल्पित विचार भी व्यक्त करता रहा है। यह उस समय की बात है जबकि मनुष्य वनप्रांतों का ... नहीं थे। वह पशुओं के भय से तथा सर्दी की मार से बचने के लिए आग जला कर रात काटा करता था। बड़ी बड़ी रातों की इन लम्बी घड़ियों में ठंड से ठिठुरा हुआ मानव आपस में कुछ अनुभव एवं सीख की बातें किया करता था। वह अपनी अनुभूति को जो अभिव्यक्ति देता गया, वही प्रथम वाणी, कहानी का रूप धारण कर गया। वही कहानी समस्त साहित्य की जननी है। मौखिक एवं लिखित वाङ्मय का कोई भी अंग आज तक कथा से अछूता नहीं रहा है। उसकी जड़ में लघु या दीर्घ कहानी का अंश अवश्य मिलेगा।

भारतीय साहित्य दर्शन, ज्ञान विज्ञान का प्रारम्भिक सूत्र हमें वेदों में मिलता है। अतः हमारे देश की लोक कथाओं के अध्ययन के लिए भी वेदों का ही सहारा लेना आवश्यक है। चारों वेदों में आख्यान, उपाख्यान, आख्यायिका और कथा नाम का कोई एक भी शब्द नहीं मिलता। वेद में कथ, शब्द ही कथा का पर्याय जान पड़ता है। अथर्व वेद में, इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी नाम के चार शब्द काम में लिए गये हैं। गाथा शब्द ऋग्वेद में आया है, जिसका अर्थ छन्द-बद्ध स्तुति अथवा गीत है। किसी राजा के छन्द-बद्ध यश गान को नाराशंसी कहा गया है। इतिहास और पुराण किसी प्राचीन काल के वृत्तान्त को माना गया है। महाभारत लोक कथाओं का वृहद् संग्रह है। आगे चलकर इन्हीं लोक कथाओं से कहानियाँ से लेकर सारे कवियों ने साहित्य सृजन किया। [इदं सर्वे कविवरे राख्यान मुपजीव्यते २। २४१]

भारतीय लोक कथाओं की परंपरा—मनुष्य के मौखिक परंपरा साहित्य में लोक कथाओं का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। इसके अध्ययन की दृष्टि से भारत बहुत ही महत्वपूर्ण देश है। यहाँ बहुत पुराने जमाने का साहित्य भी प्राप्त है और संस्कृत प्राकृत, पाली, अपभ्रंश तथा मध्यकालीन भाषाओं की अनेक

लोक कथाएं मिलती हैं। वेद, उपनिषद, पुराण, ब्राह्मण, आरण्यक, बौद्ध जैन, एवं अन्य दार्शनिक ग्रंथों में लोक कथाओं को ग्रहण किया गया है। लो कथाएं विविध स्तरों में विद्यमान हैं। १९ वीं शताब्दी के सभी विचारशी विद्वानों ने बताया है कि लोक कथा का सबसे बड़ा उत्स भारत ही है। लो कथाएं मनुष्य के केशों की तरह उसके साथ ही उत्पन्न हुई हैं। ये सारे संसार में वनस्पति की तरह व्याप्त हैं जिन्हें मूढ मानियों वादियों के पोपस मुह से सद कही जाती रही हैं। मगर साहित्यिक अभिव्यक्ति एवं सुदूर अतीत की परंपरा संश्लिष्ट हैं। सर्व प्रथम कहानी के मूल तत्व हमें ऋग्वेद का स्तुतियों के रूप में मिलते हैं। वेद विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। उनके कितने ही सूत्र कहानी के रूप में शोभित हैं।

ब्राह्मण ग्रंथ भी वैदिक बीजों के कथा-वृक्ष हैं। शतपथ-ब्राह्मण की पुरूरवा और उर्वशी की कथा को सब जानते हैं।[1] कालीदास ने अपने विक्रमोर्वशीय नाटक का कथानक इसी कथा से लिया है। यम-यमी का आख्यान और अगस्त्य लोपामुद्रा की कहानी भी वैदिक साहित्य की ही देन है। इनकी जड़ें उपनिषद युग से पूर्व की जमी हुई हैं। च्यवन भार्गव एवं सुकन्या मानवी की कहानियां भी शतपथ ब्राह्मण (१४।६।११) में विकसित हुई हैं। शुन शेप की प्रार्थना का कथा वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण (७।३) में मिलता है। उपनिषद काल में आकर इन कहानियों ने नया बाना धारण कर लिया। सत्यकाम जाबाल, प्रवाहण तथा कश्य जनपद के अश्वपति पांचाल गार्गी और याज्ञवल्क्य के संवाद की कहानियां उपनिषद काल में मिलती हैं। कठोपनिषद् में एक नचिकेता की कथा है। जिसको पंडित सदलमिश्र ने नासिकेतोपाख्यान नाम से प्रारंभिक खड़ी बोली में लिखा है। उक्त युग में जनश्रुति के पुत्र राजा जानश्रुति की कहानी एवं अग्नि यक्ष की कथा के प्रसिद्ध वर्णन भी हैं। इन उपनिषदों में दृष्टान्त कथाओं का भी उपयोग हुआ है। वेद एवं ब्राह्मणों की कहानियों के यज्ञ अनुष्ठान, स्तुतियों के बीज और बिन्दु उपनिषद् युग में अपनी दिव्य अनुष्ठानिकता समाप्त करके देवताओं की जगह ऋषि मुनियों और राजाओं के वर्णनों में बदल जाती हैं। इनकी कहानी कथा आगे चलकर पुराण, रामायण और महाभारत में समुचित विकास पाती है। पुराण तो परम कथागार ही हैं। वेदों की मूल कथाएं पुराणों में ही पुष्ट हुई हैं। पुराण वेदों के सार, व्याख्या और सरलार्थ हैं। वेदों की गूढ़ता पुराणों द्वारा सब साधारण के लिए सुलभ हुई है। यों तो रामायण में कई आख्यान आते हैं, परन्तु महाभारत में तो यह प्रवृति पर्याप्त विविधता के साथ पाई जाती है—'यन्न भारते तन्न भारते' वाक्य के अनुसार महाभारत को भारतीय बृहत् कथा

१ शतपथ ब्राह्मण ११।५।१

मंडार महीं तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसकी कहानियों में अनेकानेक उद्देश्य, अभिप्राय, सत्य तथ्य, इतिहास एवं लोक वार्ता के रोचक आख्यान उपाख्यान पुने मिले हैं। यह हमारा [महाभारत] विश्वास मात्र है। इससे सभी महा कवियों ने प्रेरणा पाई है। वन पर्व में नल की कथा का उपयोग युधिष्ठिर को युद्ध के दुख में धर्य और आशा जागृत करने के लिए किया गया है। महाभारत के लाख श्लोकों में से ७६००० तो उपाख्यान ही हैं। आदि पर्व १।१०२ में लिखा है–

> चतुर्विंशति साहस्त्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
> उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः॥

कौरव पांडव, भीम, कर्ण, वासुकि, अंगूठी और अमृत आदि की अनेक लोक कथाओं के परिपक्व तंतु महाभारत में मिलते हैं। दुष्यन्त पुत्र भरत के संबंध में अनेक गाथाएं महाभारत के आदि पर्व में उपलब्ध होती हैं।

उपरोक्त विचार प्रवाह, वदिक आधार एवं पुराणादि की उपलब्ध कहानी धारा का निर्मल पर्यवसान लोक सरोवर की ओर प्रवाहित है। अलावा इसके संस्कृत आख्यान साहित्य भी विश्व साहित्य में सब मान्य है। इसकी पृष्ठभूमि में स्वच्छ कल्पनाएं हैं। इन सब में हास्य विनोद घटना वैचित्र्य, गंभीर विचार एवं सरस काव्य - कौतूहल है। विद्वानों ने आख्यान साहित्य को दो वर्गों में बांटा है – नीति कथा एवं लोक कथा।

१ नीति कथा — पंचतंत्र और हितोपदेश नीति कथा के दो रोचक ग्रंथ हैं। इनमें सदाचार राजनीति तथा व्यवहारिक ज्ञान के वर्णन हैं। इनकी कथाओं में पशु पक्षी और जीवजंतु भी मनुष्य जैसे कार्य करते हैं। उनका संभाषण, रूप परिवर्तन, व्यवहार और विवाह मनुष्यों के साथ होते हैं। इनकी प्रमुख कथाओं के बीच कई लोक कथाएं भी चलती हैं। ऐसी नीति कथाओं की कई पुस्तकें और भी प्राप्य हैं। परन्तु पंचतंत्र और हितोपदेश तो भारतीय नीति कथा के दो सागर हैं। पंचतंत्र की रचना का उद्देश्य विन्हीं राजकुमारों को नीति शास्त्र की शिक्षा देना था। पंडित विष्णुदत्त शर्मा ने इस ग्रंथ की रचना करके उक्त कार्य को दीर्घ समय में पूर्ण किया। पंचतंत्र का कई भाषाओं में [८ वीं शताब्दी से २० वीं शताब्दी तक] अनुवाद भी हुए हैं। इसके पांच तंत्र याने पांच भाग ये हैं– मित्र भेद मित्र लाभ, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षित कारक। कई विद्वान इसके बारह भाग बताते हैं। इसके बाद श्री नारायण पंडित द्वारा हितोपदेश की रचना हुई। उन्होंने स्वयं को पंचतंत्र से प्रभावित माना है। इसमें चार परिच्छेद हैं। मित्र लाभ, सुहृद भेद, विग्रह और संधि। इसकी भाषा

वास्तव में सरल, सरस, एवं सहज है। इन नीति कथाओं की कई विशेषताएं लोक कथाओं में भी मिलती हैं।

२ लोक कथा — नीति कथाओं के बाद हम वृहत्कथा, बेताल पंचविंशतिका, शुकबहोत्तरी, जातक और जन कहानियां आदि के साथ हिन्दी लोक कहानियों की तरफ आते हैं। नीति कथाएं उपदेशात्मक थीं और लोक कथाएं मनोरंजना त्मक होंगी। नीति कथाओं के पात्र जीव-जन्तु, पशु-पक्षी आये हैं। पर लोक कथाओं के पात्र प्रायः मनुष्य ही होंगे। नीति या उपदेश प्रधान कथाओं का मुख्य ग्रंथ पंचतंत्र माना जाता है और मनोरंजन वाली कथाओं में प्रमुख ग्रंथ बृहत् कथा [बड्डकहा] विख्यात है। मूल बृहत् कथा प्रथम पैशाची प्राकृत में लिखी गई थी। यह ईस्वी की प्रथम शती की कृति मानी जाती है। इसके मूल में एक लाख पद बताये जाते हैं। आन्ध्र में गुणाढ्य नाम के किसी पंडित ने यह ग्रंथ लिखा था। लेकिन वह पैशाची मूल कृति अभी उपलब्ध नहीं है। बाण के हर्ष चरित में, दंडी के काव्यादर्श में, क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा मंजरी में और सोमदेव के कथासरित्सागर में उसके प्रमाण प्राप्य हैं।

संस्कृत में वृहत्कथा के तीन रूपान्तर मिलते हैं। जिनमें रहस्य, रोमांच और साहसिक कार्यों की प्रधानता है। तीनों में कथासरित्सागर अधिक लोक-प्रिय है। बेताल पंचविंशतिका की पच्चीसों कहानियां पहेलियों के रूप में हैं। ये सब मनोरंजक एवं कौतूहल वर्धक हैं, जिनको एक बेताल ने उज्जैन के राजा विक्रमादित्य को कही हैं। यह शिवदास द्वारा रची गई हैं। इसका हिन्दी रूपान्तर बेताल पच्चीसी के नाम से हुआ है। इसी तरह सिंहासन द्वात्रिंशिका [द्वात्रिंशत्पुत्तलिका] भी मनोरंजक कहानी संग्रह है। इसकी कथायें राजा भोज से संबंधित हैं। राजा विक्रम के सिंहासन की बत्तीस पुतलियां राजा भोज को अपनी अपनी एक कहानी कह कर उड़ जाती हैं। इसका हिन्दी एवं राजस्थानी अनुवाद सिंहासन बत्तीसी नाम से हुआ है। शुक बहत्तरी भी एक रोचक कहानी संग्रह है। इसमें एक शुक द्वारा किसी परदेशी व्यक्ति की पत्नी को बहत्तर [७२] कहानियां सुनाई गई हैं। ऐसे और भी कई संग्रह मिलते हैं—जैसे पुरुष परीक्षा नैतिक और राजनैतिक ४४ कहानियों का संग्रह है। कथार्णव में चोर और मूर्खों की पैंतीस ३५ कहानियां हैं। भोज प्रबंध और आख्यायिनी आदि कई कहानी संग्रह हैं। भगवान बुद्ध के समय शताब्दियों से जनता में प्रचलित आख्यान, परियों की कहानियां एवं रोचक चुटकले भी धार्मिक रूप में ढलकर अवदान में रूपान्त रित हो गये हैं। बौद्ध साहित्य में कहानियां प्रचुर परिणाम मे मिलती हैं। इनके संग्रह जातक नाम से प्रसिद्ध हैं। जातक कथाएं भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की पावन कथाएं हैं। प्रोफेसर एन वी सूंपर, जातक की परिभाषा, "जात नाम

मोचिनतक मया " म हृकार करते हैं । इन कहानियों म राजा सम्राटों स लेकर पशु पक्षिया तक पात्र मिलते हैं। इनमें बुद्ध भगवान के मुखारविन्द स निकल उप दश नीति वाक्य निहित हैं । ये सरल, स्वाभाविक और मानवीय स्थिति युक्त हैं । ये कोमल, सुबोध एवं प्रभावोत्पादक भी हैं। इनकी भाषा पाली है ।

कथा - साहित्य की दृष्टि से बौद्ध एव जैनाचार्यों न असंख्य ग्रंथ पुस्तक और कथाओं के सग्रह-संपादन किये हैं। इन कथाओं स इस धर्मों को प्रचार और धार्मिक सिद्धान्तों को पर्याप्त योग मिला है। इन्होंने उपदेश - प्रधान कहानियों के समुद्र सदावृत स खोल दिये हैं। इनकी कहानियों में तीर्थंकरों, श्रवणों एवं शलाका पुरुषों की जीवन कथाएं मिलती हैं । एसी कहानियों के मूल तत्व लकर आग के लेखकों ने भी संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अनेक कहानियां लिख डालीं, जो अपभ्रंश म पउम चरिउ [पद्म चरित्र] तथा भविसत्तकहा [भविष्यत्कथा] नामक पुस्तकें कहानी साहित्य की अनुपम संपत्ति हैं ।

[आ] युगीय प्रचलित भाषाओं की लोक कहानियां — लोक कहानी की श्रेणी में आन वाली असख्य कहानियां राष्ट्र भाषा हिन्दी में अस्पष्ट आदश रूप में दिखाई देती हैं । तोता मैना जसे बहुत स जनप्रिय किस्सों को छोड़कर बैताल पच्चीसी माधवानल कामकदला, सिंहासन बत्तीसी, ढोलामारू और सूवा बहत्तरी जसी लोक संस्कृति की प्रतिष्ठ कथायें हिन्दी के माध्यम से प्राप्त हैं। इसी क्रम में पटेल और नाई की सह यात्रा आरंभ करते समय कई कथाओं का एक सग्रह भी है। पटल और नाई यात्रा आरम करते समय वायदा करते हैं कि नाई कोई भी नई रहस्य पूर्ण घटना लायेगा तो पटल को उसका पूरा समाधान करना होगा । आगे चलकर यही क्रम शुरू होता है । नाई की तमाम शंकाओं पर पटेल के प्रतिभापूर्ण उत्तर बड़े मौलिक एवं दिलचस्प ढंग से प्रस्तुत हुए हैं । इस कथा के एक अंश को राजस्थानी में श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने ' हराम और की मूंछको ' के नाम से प्रकाशित किया है ।

भारतीय लोक कथा साहित्य को गौर से देखें तो ज्ञात होगा कि कथाएं वेदों की हों, चाहे पुराणों उपनिषदों की, चाहे जातक की आख्यायिकाएं हों, या बृहत्कथा कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश अथवा वैताल पचीसी सभी कथाओं की लिखित शली में कहने के ढग की प्रमुखता और सुनसे सुनान के भाव गुम्फित हैं । इन पर हमारे अतीत के अनुभवों एवं ऐतिहासिक घटनाओं की छाप है ।

भारत विभिन्न संस्कृतियों का महान देश है । उसके पश्चिमी किनारे पर राजस्थान नामक देश बसता है । इस प्रदेश की सांस्कृतिक सीमाएं पंजाब, सिंध, मध्यप्रदश, उत्तर प्रदेश एवं गुजरात की सीमाओं के साथ आबद्ध हैं । जिनका

लोक कथाओं पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। मुगल काल तक राजस्थान, भारतीय राजनीति का लीला क्षेत्र बन गया था। जितनी भी विदेशी जातियां यहां आईं, राजस्थान से उनका गहरा परिचय हुआ। यह कभी तलवार के साथ रणस्थल में होता, और कभी अपनत्व के तरीके से पगड़ी राखी के रूप में घर घर! कहीं दुश्मन और कहीं सज्जन! मगर यहां की भाषा, संस्कृति और साहित्य पर उन आने वाले लोगों की भाषा एवं नामावली (अरबी फारसी) का पूरा प्रभाव पड़ा। इसलिए हमारे ख्यात, इतिहास ग्रंथ, उन विदेशी पात्रों की कथाओं से पूर्ण हैं। उजबक, तातार, बलोच और अफगान आदि जातिया के लोग तो राजस्थानी योद्धाओं के साथ हमारी बात ख्यात में उलझे हुए नायक हैं। बलख बुखारा अरब, समरकन्द, गजनी रूम सूम और काबुल जैसे देशों की चर्चा तो राजस्थानी कथाओं के साथ स्पष्ट संलग्न हैं। यहां के दुर्गम दुर्गों के साथ गजनी के गढ़ का भी वर्णन पाया जाता है। काबुल तो सिंध और गुजरात की तरह राजस्थान का एक अपना पड़ोसी रहा है। जैसे—'कर्कांणा काबुल भली, पीहर भली परभात। मरदां भली ज मुरधरा, गोरड़ियां गुजरात'। राजस्थान में घोड़ों की नस्ल सुधारने हेतु रेस तक यहां लाई गई थी। मारवाड़ के राड़घड़ा की धूम काबुल की कही जाती है।[1]

राजस्थान में एक-एक किला, एक-एक मंदिर, एक एक पहाड़, एक-एक घाटी एक-एक गांव के ही नहीं एक एक अस्त्र शस्त्र के पीछे भी इतिहास है। रेत का टीबा, टूटा हुआ भवन, उजाड़ जंगल में बनी हुई देवली या चबूतरा, पहाड़ की खोह छोटी सी बावड़ी और खंडहर के बिखरे हुए पत्थर के पीछे अपनी आत्मस्वयमाम कहानी है। राजस्थान, इतिहास, लोक साहित्य, प्राचीन ग्रंथों, चित्रकला हथियारों, लोक संगीत, परंपराओं और संस्कृति की दृष्टि से भारत का सबसे संपन्न राज्य है। यहां लोक कथा को बात अथवा वारता कहते हैं। यहां की बातें और ख्यातें बड़ी रसीली हैं। इनकी शैली माधुर्य पूर्ण एवं अपने ढंग की है। इनका एक एक अक्षर यहां की खबरें लिए हुए हैं। एक एक शब्द में रणक्षेत्र तथा पीढ़ियों का पराक्रम भरा है। राजस्थान में इनके कहने और लिखने की परंपरा काफी पुरानी है। इनके आरंभ करने का ढंग समाप्त करने का नियम और वर्णन करने की प्रथा स्वयं की अपनी है। हिन्दी कहानी की शुरूआत अंग्रेजी और बंगला की गल्पों के अनुकरण पर हुई है। मगर राजस्थानी कहानी साहित्य उसकी निजी निधि है। उनमें कुछ बातें वर्णन प्रधान हैं और कई, घटनाओं को एक एक के बाद एक एककर उपस्थित करती जाती हैं।

राजस्थानी लोक कहानियां — डिंगल भाषा की समृद्धिहेतु यहां की वार्तों तथा

[1] बर बांधी धासम बनी भागळ धूणी पास। छिबिया धार्ने आसमी राड़घड़ै रै वास॥

कथाओं का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। ये ऐतिहासिक, पौराणिक और काल्पनिक [लोक कथाएं] बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त होती हैं। इनमें कथाएं पद्यबद्ध भी लिखी गई और गद्य में भी लिखी हुई हैं। साथ में इन कथाओं की दो दूसरी समानान्तर धाराएं भी प्रवाहित होती रही हैं। पहली धारा तो कथाओं की व थी, जिनका कथाकार लोग सजावट के साथ लिपिबद्ध करने का परिश्रम कर और दूसरी धारा कथाओं की वह थी, जो राजस्थान निवासियों के कंठों में हं अविस्मृत ढंग से जीवित रहीं—अर्थात् ये कथाएं केवल कही सुनी जाती रही लिखी नहीं गई। लिखित रूप में भी बातों की छटा देखने योग्य है, और मौखि बातों की तो गिनती भी नहीं होती। साथ ही एक बात अनेक रूपान्तरों में सुनं आती है। लोक प्रचलित चीज के लिए ऐसा होना स्वाभाविक है।

१ कथा की प्राचीन प्रथम धारा [लिखित लोक कहानियां] — १५ वीं शताब्द से राजस्थानी साहित्य-सागर की कथा सरिता-नव्यपथ गामिनी बनी। तब उसं भाषा, विषय और शैली तीनों में परिवर्तन आया। भाषा अपभ्रंश से अल हुई। विषय में धार्मिकता के अतिरिक्त भी लोक कथाएं लिखी जाने लगीं, शैल का रूप अधिक खिला। बालावबोध, वाग्विलास और वचनिका आदि शैलिय में छोटी छोटी कथाएं लिखी जाने लगीं। सबसे प्रथम तरुण प्रभसूरि का षडावश्य बालावबोध- (भाषा टीका) में लिखा गया था। १६ वीं शताब्दी में मेरुसुन्दर ने भी बालावबोध भाषा टीकाओं में सैकड़ों कथाएं दी हैं। हंसाउली, सदयवत्स प्रबन्ध, विद्याविलास चौपाई आदि अनेक लोक कथाएं उक्त शताब्दी में ही लिखी गई हैं। वाग्विलास शैली में पृथ्वीचन्द चरित्र इस समय का ही ग्रंथ है। अचलदास खीची री वचनिका, खींची नींबा गंगावत री दुपहरो, बात वणाव, सभाश्रृंगार और मुहणोत नैणसी री ख्यात आदि गद्य ग्रंथों का कथा तत्व १७ वीं शती का है। पद्य कथाओं में कवियों द्वारा लोक कथाओं को लेकर रचे गये रास, चौपाई, गीत कथाएं और अन्य लोक काव्य उल्लेखनीय हैं। गोगाजी रामदेवजी जैसे लोक देव, रूपांदे, तोळांदे जैसी भक्त सती स्त्रियां, भर्तृहरि, गोपीचंद, निहालदे बगड़ावत, पाबूजी आदि लोक काव्य मिलते हैं। व्रत कथाएं और कहावतों की कहानियां भी यहां अत्यधिक हैं। उपाख्यान और प्रवाद भी लिखे गये हैं। इस तरह से राजस्थान के प्राचीन कथाकार सकड़ों कथा संग्रह कर गये हैं। अत १७ वीं १८ वीं शताब्दी में बातों की बड़ी उन्नति हुई है। आगे चलकर इन लोक कथाओं के आधार पर सैकड़ों ख्याल [लोकनाट्य] रच लिये गये। रतना हमीर री बात और पन्ना वीरमदे री बात राजस्थानी कथा साहित्य की प्रथम प्रकाशित कथाएं हैं। संवत् १९५६ में पळक दरियाव री बात प्रकाशित हुई है। इन प्रकाशित पोथियों की अन्य हस्तलिखित प्रतियां यहां के संग्रहालयों में भी मिलती

है। कई पुस्तकालयों में तो कथाओं के सैकड़ों सचित्र गुटके मिलते हैं और एक एक गुटके में सकड़ों कहानियां लिखी हुई हैं। (श्री सूर्य करण पारीक ने राजस्थानी वातां और श्री कन्हैयालाल सहल द्वारा लिखित लोक कथाएं, वीर गाथाएं, उपाख्यान, चौबोली नामक कथा संग्रह प्रकाशित हुए हैं) श्री नरोत्तमदासजी-स्वामी ने भी वार्तों के दो संग्रह प्रकाशित करवाये हैं। श्री विजयदान देथा, श्री अगरचद नाहटा, भवरलाल नाहटा, मुरलीधर व्यास, पुरुषोत्तम मेनारिया, लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, बद्रीप्रसाद साकरिया, मनोहर शर्मा, मनोहर प्रभाकर श्रीलाल मिश्र, मोहनलाल प्रोहित, नानूराम सस्कर्ता, गोविन्द अग्रवाल आदि लोक कथाओं के आधुनिक सग्रह कर्ता हैं। इन्होंने अपने वात निबंधो, वात संग्रहों के सिवाय, राजस्थानी, राजस्थान भारती, मरुभारती, वरदा, वाणी, अजन्ता शोध पत्रिका, सयुक्त राजस्थान, परंपरा, मरुवाणी आदि शोध पत्र पत्रिकाओं में संपादित कर असंख्य वार्तें प्रकाशित करवाई हैं। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने राजस्थानी भाषा और साहित्य पुस्तक में १३२ और ८०, २१२ वार्तों की सूची, रानी चूंडावत ने अपनी मांझल रात में ३७० वाता की सूची और परंपरा वात अंक में ३५० वार्तों की सूची प्रकाशित हुई है। श्री गोविन्द अग्रवाल ने मरुभारती में राजस्थानी लोक कथा-कोश नामक शीर्षक से करीब एक हजार लोक कथाएं प्रकाशित करवाने का कार्य सपूर्ण कर दिया है। श्री कन्हैयालाल सहल की राजस्थानी लोक कथाओं के अभिप्रायो पर 'नटो तो कहो मत' नाम की पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है। सन् ६१ से जोधपुर के निकट बोरून्दा गांव में लोक साहित्य के शोध एव प्रकाशन के लिए रूपायन सस्थान का गठन किया गया है। यहां से श्री विजयदान द्वारा लिखी गई लोक कथाओं के ९ बृहत् भाग प्रकाशित हो चुके हैं। ये भाग वातां री फुलवाड़ी के नाम से प्रसिद्ध हैं। बीकानेर के राजकीय अनूप सस्कृत पुस्तकालय में बैताल पच्चीसी सिंहासन बत्तीसी, दम्पति विनोद आदि पुस्तकों के राजस्थानी अनुवाद भी मिलते हैं।

[२] द्वितीय धारा [*मौखिक बात*]—*या तो बात कहने वालो की कोई जाति नहीं* कहना चाहे नहीं कहे। परन्तु रावल, मोतीसर, भाट, मड़वा, राणीमगा ढाढी नगारची, सरगरा, आंगड आदि कौमें पुराने समय से बात कहने का पेशा अपनाये हुए हैं। अपने यजमानों के यहां, ये कथायें सुनाया करते हैं। एक नहीं अनेक, छोटी नहीं बड़ी बड़ी वातें, सैकड़ों दोहों समेत इनको जबानी याद हैं। इनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर होगा, मगर वार्तों का वर्णन इनका इतना जबरदस्त है कि क्या कहें ? बात कहें और साथ में सामयिक दोहे भी बोलते जायं। इन दोहों के बोलने से बात का आनंद चौगुना बढ़ जाता है। प्रसंगवश गाने भी लग जाते हैं। इनके कहने में मनोरंजन, चित्ताकर्षण, चमत्कार, प्रसादगुण, अलंकृत भाषा और

नाटकीय अभिव्यक्ति आदि का बाहुल्य रहता है। छोटे छोटे वाक्य, व्यर्थ का प्रसार नहीं, चुने हुए शब्द, श्रोताओं के कलेजे में सीधे लगते हैं। इस तरह के बात कहने वाले मातों को पहले सामाजिक रूप से अच्छा सम्मान प्रदान किया जाता था।

कुछ लोग, इन लोक कथा वार्ताओं को बुढ़िया पुराण की संज्ञा देकर उपेक्षा की नजर से देखते हैं। किन्तु यह अहंकार और अज्ञान ही है। पढ़ने की अपेक्षा बोलकर कहना ही आनन्द का मुख्य कारण होता है। लिखी तो ये विस्मरण के भय से जाती थीं। अमीर राजा-महाराजा भी इन्हें लिखवा लेते थे। मगर इन कहानियों में रस परिपाक सुनने पर ही होता है। लिखित कहानियों को सुनाने वाला अपनी अनूठी भाषण शक्ति से उसे अत्यधिक मनोरंजक बना देता है। वह कहानी कहता हुआ सर्व पात्रों का मनोहर अभिनय सा दिखाता जाता है। एक ही व्यक्ति पशु-पक्षी, देव राक्षस बहादुर कायर और प्रेमी प्रेमिका का प्रभावोत्पादक भाग अदा कर देता है। घटना का चित्र आंखों के सामने वास्तविक बन जाता है। इन लोक कहानियों का कथा व नाटक की मिश्रित अभिव्यक्ति कहना गलत नहीं होगा।

कहानी में दो ही प्राण कार्य करते हैं। एक सुनाने या कहने वाला तथा दूसरा सामने हुंकारा देने वाला। हुंकारा देने में 'हूं' ध्वनि का उपयोग किया जाता है। कहने वाला जैसे सब पात्रों का सफल नाटक करता है वैसे ही हुंकारची भी सामयिक हुंकारों से कहानी की रफ्तार को प्रोत्साहन प्रदान करता है। जैसे 'बात में हुंकारो फौज में नगारो' फौज की शोभा नगारे से होती है और बात को हुंकारा देकर सजीवता प्रदान की जाती है। कहने वाला अपने व्यक्तित्व, अनुभव और शैली के बल से बात को शर्करा के घोल से श्रोताओं के गले उतार देता है। वह कभी कभी सुनने वालों के नाम ले लेकर उनके जीवन संबंधी किसी विशेष घटना का स्मरण दिलाता जाता है। इस पर वे याद करके गद्गद् हो जाते हैं। बीच बीच में मधुरोक्तियों की चुटकियां कहानी को अधिक रोचक एवं रसीली बना देती हैं। इस तरह से बात के व्यक्ति 'जंग में रंग' लगाते हैं। तभी तो इस बात कला को बात सार कहा गया है।

कथक [बात कहने वाले] को बात प्रारंभ करने से पूर्व कुछ कौतूहल व आकर्षक भूमिका निभानी पड़ती है। वह अपनी बात को सीधे ढंग से शुरू न करके कुछ वर्णन चातुर्य के रास्ते से चलता है। यह भूमिका पद्यों में होती है। ये पद्य प्राय राजस्थान की सांस्कृतिक विशेषताओं के बारे में होते हैं। इनको बड़वाव भी कहते हैं। कई बात की व्याख्या के बड़वाव भी होते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है

बात भली बिन पाधरा, पैंडै पाकी बोर ।
घर भींदळ घोड़ा धर्म, साजू मारै चोर ॥
बातां हुवा मांमला भवियां हुवा फेर ।
बहता न बहै उतावळा, धरमर पाछै पेर ॥
बात बात सब ओक है, बात बात में फेर ।
वे ही लोह की कुस बणी ओंकी ही समसेर ॥
ज्यूं केले के पात में, पात पात में पात ।
ज्यूं चातर री बात में बात बात में बात ॥
बात बात सब ओक है बात बात में बैण ।
वो ही काजळ ठीकरी वो ही काजळ नैण ॥
बातडल्यां घर ऊजड़ै, पूछ्यां काळर होय ।
जे कोई काम बातड़ी, बातडल्यां घर होय ॥
बात रखै दिन बीतज्या समय पलटज्या काळ ।
सावन सिळौ न जाइये जो सोनें री थाळ ॥
सोरठियो दूहो भलो, भल मरवण री बात ।
जोबन छाई धण भली तारां छाई रात ॥
माहा मूढा मीत गुण, उक्ति कथा उलोल ।
चतुर तणा चित रंजवण कहिये कवि कल्लोल ॥

कतिपय बातों के छोगे–

१ किसी हुंकारा बिन बात, किसी मित बिहूणी साथ
किसी चांद बिहूणी रात, किसी कडूंबा बिन मात
किसी प्रेम बिहूणो मान किसी पायक बिहूणो जान
किसी बादळ बिन बीज, किसी पींव बिन तीज
किसी जळ बिहूणो जोध, किसी तरवर बिन पांन
किसी सिया बिन प्रीत किसी कंठ बिहूणो गीत
किसी पांख बिहूणो पंखी, किसी जळ बिहूणी मंखी
किसी कपट बिहूणी दासी, किसी सगा बिहूणी हांसी
किसी मित बिहूणो साथ, किसी हुंकारा बिन बात [1]

२ बात सांची भली, पोथी बांची भली
देह साजी भली, बहू लाजी भली
सूंठ बाजी भली नौबत बाजी भली
धाम पूगी भली, गवर पूजी भली
जोबन जोड़ी भली, कन्नी थोड़ी भली
मीत मीठी भली मेंडा थोड़ी भली
जंग फेरी भली माळा फेरी भली

[1] बातां री फुलवाड़ी भाग ६ विजयदान देथा

कोठळ काळी भखी , गेल पाळी भसी
चोक माळी भसी , धीणे छाळी भसी
भाव पाटी भसी , भाग फाटी भसी
बिरगा चूठी भसी , मांचै मूठी भसी
माई तूठी भसी , बिपता मूगी भसी
मैधी पाको भसी , साग पाकी भसी
पंथ गाडी भसी भैस पाडी भसी
प्रीत गाढी भसी , भीत बाढी भसी
बात साची भसी पोथी बांची भसी [1]

केई नर सोवे , केई नर जागे
बागड़ा री पागड़ी डोस्यां रै पागे
सूता री पागड़ी चोर ले भागे
बात कहतां बार लागे हुंकारै बात मीठी लागे
बात में हुंकारो फोज मे नगारो
सार बाबा सार पालमा सवार
दूबला सा घोड़ा माता असवार
बीयो बात रा कहणिया बीयो हुंकारा देवणिया
बात रा बासणा संजोग रा पीवणा

फिर कहते हैं — रामजी भला दिन दे सौ धारा नगरी म एक कोडी धज सेठ बसै । इस आकर्षक नाटकीय कथा आरंभ मे सभी सुनने वाले उसकी तरफ बड़े आकर्षित हो जाते हैं और आगे की कहानी सुनने के लिए उत्साहित होकर इन्तजार करने लगते हैं । उक्त कलाकार [कथक] प्राचीन कहानियों के सुनाते समय कथा के साथ कुछ गप्पें भी जोड़ देता है । जिनसे हास्य का रंग ब जाता है और श्रोताओं के पेट में हंसते हंसते बल पड़ जाते हैं । इन गप्पों से पह भी गप्पपूर्ण विज्ञापन [कथारभ] होता है —

छार रा घना मसरके फूटै
भैस्यां री कमर मुक्की सूं टूटै
कीड़ी रो मसको सै मासर री लात
मोलड़ी री कांटी साडी सोळै हाथ
फब आवै तो बच्चै , मीं तो बच्चै परभात

इस तरह से राजस्थानी लोक कथाओं में कुछ कहावती - विशिष्ट शब्द हैं, जिनके अर्थ प्रसंग और गर्भत्व बड़े गहरे होते हैं । किन्तु ये शब्द लोक प्रचलित हैं । इस कारण कहानी कहने वाला उन्हें मौके-मौके काम में लेकर सर्वत्र कहानी की सुन्दरता को बढ़ाता रहता है । ये शब्द कहानियों के विशेषण एवं उपमान

1 बातां री फुलवाड़ी भाग 1 विजयदान देथा

हैं। जो कहानी रूपी हार के नगीने स्वरूप शोभित होते हैं। उन कहावती बोल चाल की विशेष व्यंजनाओं के कुछ नमूने मैं नीचे देता हूं

अंधार रो बड़ो। (रोचक बातें) काठ री हांडी (धोखे बाजी) कांक रो भार (मुश्किल काम) कान रो कच्चो (शीघ्र बात मानने वाला) कैर री खूंटी (मजबूत मनुष्य) कायर री जीव (भयग्रस्त मनुष्य) गादड़ भभकी (झूठी डरावनी) टग लकड़ी (झूठ कपट) भेड़ा चाल (देखा देखी) तिरिया चिरत (स्त्री चरित्र) केवार कौतुक (ढोंग) सूरोडो सवीरो (गुणवान व्यक्ति) सागवी जोत (चलता) बोबोड़ी कामध (व्यर्थ वस्तु) फूटी ढोल (बेताल संग) चटाक झमाँ (वेगार मार) काचा चावळ (कच्ची बात) पाको पान (वृद्ध मनुष्य) हवा का फेर (समय की बात) छातीपरलो बोर (भारूपी) गाजर वाळी पूंपी (दोनों ओर का फायदा) मसत री जीव (कुछ नहीं) बीज को चाकरी (रोग में सन्तोष) थेन री वाणी (कृपण धन) मेरे री रूंख (सेठ) बन बन री काठ (जगह जगह के व्यक्ति) ठाडे री डोको (बड़े का भय) फिराव री भाड़ (हल्की वस्तु) नाथ को बीड़ो (ज्यादा खाने वाला) कूर रा गाडू (मिस्मार चीज) द्रोपदी वाळो चीर (अन्तहीन वस्तु) रळै की हाळी टोळो (भोला परिवार) पोपा बाई री राज (अनियमित कार्य) हमीर हठ (पक्का प्रण) बूढे की हाळी चाकरी (बिना लेन देन का कार्य) बावाळी कामा (स्वर्ण अवसर) कुंभकर्ण वाळी नींद (अधिक आलस्य) बांधिवाळी बुहारी (संगठन) बेनी हाळी जोबन (अल्हड़ता) बद्धर्मंपर रो चूड़ो (मुख्य जन की हानि) मऊ रा दांत (दरस व्यक्ति) पुटियाळा पग (अनीति करना) चोरी वाळी पूक (जबरन लड़ाई लेना) बाणि वाळी मूंप (इज्जत) मूंछ वाळो बावळ (झूठा अभिमान) थूक उछाळना (थोथी बातें) कुत्ते हाळो मारेळ (बेकार वस्तु) चीरबल बनना (चतुर होना) बर्ष गमाना (उम्र के अनुसार अनुभव प्राप्त न करना) मिनिया री धी (चिड़ चिड़ा मनुष्य) बाट वाळी गिलगिली (मूर्खता पूर्ण प्यार) काजी वाळी कुत्ती या बिना मोरी री ऊंट (खूब फिरने वाला व्यक्ति) कुंजड़ी री मस्ती (बिना हिसाब किताब का व्यापार) पीसे री पूत (कंजूस) सात मामा को भांणजो (बिना पूछ) गोमती री कागळ (छोटा काम) पर्चा मीचली लाव (बीती बात) पावळिया री कारी (अयोग्य बात का मुलावा) हाथी रा दांत (कहना कुछ, करना कुछ) बानरा री न्याव (तीसरे का फायदा) काबड़ होबाना (फूला हुआ मनुष्य) कुत्ते हाळी हांडी (नमक हराम) मुसिये री बोबी पग (नामोनिशान न होना) मोरड़ी हाळो हार (वस्तु का महत्त्व होना) थेह री मूळो (सदैव का झगड़ा) मांबाळी बटचड़ (माल हाथ लगना) घर बाली रा बेव (वैर विरोध) बीम री न्याव (अपनी बात सही मानना) काळजे री कोर (प्रिय) बेईमान री हाथ (बदमाश व्यक्ति) चोरी री पूत (राजकीय जुर्माना) रोळै री अम (प्रत्येक काम में आगे रहने वाला) चीतला माई री सेर (मूर्ख, मया) हाथ री धत्तर (कुछ देना) ढोल में पोल (बड़ों में कमी) मस्सा री मां री पालीडो (अस्त व्यस्त काम) बीस मूंगा री कमाई (मेहनत का धन) मकूरबी री धन (लक्ष्मी) बालू री भीत (कमजोर कार्य) पावळे री ठेस (अच्छा पक्षा)

लोक कथा भूषण के ऐसे असंख्य शब्द-नग राजस्थानी के कथा साहित्य में मिलते हैं। श्री मनोहर शर्मा और दीनदयाल ओझा ने ऐसे अनेक शब्द लिखे हैं। कभी कभी इन कहावती शब्दों के पीछे कहानियां भी होती हैं, जो वार्तो के बीच में उदाहरण स्वरूप सुनाई जाती हैं। नारी के रूप वर्णन में भी ऐसे

अनेक विशिष्ट शब्द मिलते हैं। जो नायिका की कोमलता, मंजुलता, की प्रशंसा पूर्ण परिस्थितियों द्वारा श्रोताओं को मुग्ध कर देते हैं। इनमें विशेषणों की विशद छटा देखने योग्य होती है।

जैसे—पहरी मोळी मार रूप री रंभ, प्रेम री प्यालो, कामै री बीज जोबन री जीव, गंगा सूं निमळ, फूलां सूं फोरी, पान तीन अेक री बेळै री सी कांबड़ी, नारंगी री सी फांक, पूनळ री पदमणी, अमर फळ री गाछ, होम-काम मोवनी, बिलायत री भाभी, छवी री नारेळ, कुळ गांव री होळी जयपुर री दीवाळी, बूंदी री बहिन, वर्त्त री छाळी, पटवमोड़ी नागण, बावनो चमन, रेसम री गचो, राजहंस री बचो, हीरां री सच्चो, मुमल री भींमणी, मोत्यां री गजरी, बाको बिलखी हंस गढ़ा री कुटेड़ी काप, ठाड़े री मोडियोम आकास री परेवी भाटियां री जालेरो, गुजराती धामे री लूम, कंच री कणियो मोती री सी दाणो हंस री जोड़ी, मूगे री पोड़ी, चांद री सी टुकड़ी, कीड़ी री सी टांग, भाम री मणी उत्तर री बायरो बाजै तो दिखण में मुळ जावै दिखण री बायरो बाजै तो उत्तर में मुळ जावै चौबैया बाजै तो टूक टूक होय जाय। चावळ री चोखो हिस्सो खावतां पेट दुखनै मर जावै। पाळा रा परतला में कोस पचास जावै। ममसहार रै जर्क धड़ जावै तो मावे में गिट जावै।

हल्केपन की हद हो गई। पति परदेश जा रहा है। पत्नी वियोग सहन नहीं कर सकती। इस बात को राजस्थानी बात कहने वाले लोग बड़े विनोद पूर्ण ढंग से पेश करते हैं। देखें तो सही—

थां बिना घड़ी अेक नहीं आवड़ै। थांन घड़ी अेक नीं देखूं तो कूप में डूब मरजाऊं। सीरो खायू साथ मरजाऊं। के जाजम में गिड़क नै मरजाऊं। पूणी री फांसी खा परीर मरजाऊं। थां बिना घड़ी अेक नीं आवड़ै।

> साजन चलता हे सखी सोयण जळ भरियाह।
> जाणक टूट्या हार सूं, मुक्ता बिखरियाह॥

यहां की बातों में इस तरह के वर्णनों की भारी खूबियां पाई जाती है। बात के आरंभ की तरह उसके बीच में भी असकुत पलों में सुन्दर वर्णन होता है। नगर-संपन्नता, दुर्गम दुगमता युद्ध भयंकरता हाथी घोड़ों के सवार, सूर रणकौशल, नारी सौन्दर्य, नायिका की शृंगारिक सामग्री, विरह भावनाएं और मिलन घड़ियों का इतना सरस एवं कारुणिक वर्णन होता है कि सुनने वालों की आंखों के सामने एक सजीव चित्र सा छा जाता है। इनसे अपेक्षित वातावरण की सृष्टि होती है। जिससे हमारी भावनाओं का तादात्म्य सहज ही उस समय के साथ हो जाता है। इस तरह के वर्णन बाहुल्य से कहानी की प्रगति शिथिल हो सकती है। मगर उनकी सजीवता श्रोताओं के लिये आनन्द का कारण बनी रहती है। इन वर्णनों में उपमाओं दृष्टान्तों, उत्प्रेक्षाओं और अतिशयोक्तियों का प्रयोग होता है। उपमानों में रूढ़ उपमानों के अतिरिक्त मौलिक उपमान

भी प्रयुक्त होते हैं। जिनमें स्थानीय विशिष्टताओं की सूची (Localcolour) अनुपम एवं अभिनव प्रकृति के साथ प्रस्तुत होती है। वार्तालापों में गद्य-पद्य दोनों का प्रयोग होता है। कई कथाएं केवल पद्य में होती हैं। यह वर्णन प्रधान और भावना प्रधान दोनों प्रकार की मिलती हैं। इनमें दोहे, सोरठे, गाथा, सवये, चन्द्रायण, गीतादि छन्द होते हैं। और काव्य सौष्ठव, वयण सगाई, भाषा की प्रौढ़ता तथा सरलोक्तियां देश कालीन सुन्दर वर्णन के साथ आती हैं। किसी बात के कुछ पद खंड, गद्य कथाओं में भी दिखाई देते हैं। गद्य-पद्य की यह मिलावट एक दूसरे की पूरक है।

मध्यकालीन राजस्थान का सामाजिक चित्रण लोक कथाओं में अत्यन्त समृद्धि के साथ अंकित है। यहां की जातीय व्यवस्था, शासन प्रणाली, जागीर प्रथा, नैतिक विचार, भाग्य वादिता, कला सृजन, साहित्यिक वातावरण सामयिक राग रंग, रूढ़ि निर्वाह और मानव सिद्धान्तों के विविध चित्र इन लोक कथाओं के जरिये हमें बहुत हर्ष के साथ मिलते हैं।

पुराने जमाने में सभी जातियों के लोग अफीम खाया करते थे। उसको, नशा या रंग पान लिए तथा थकान मिटाने के लिए अमीर से लेकर गरीब तक काम में लाते थे। कहीं कहीं अभी भी ब्राह्मण, बनिये, राजपूत, जाट, चमार और गूजरों में वार त्यौहार, मेहमान आगमन, पर्व पूजन, जन्म विवाह के और शोक विसर्जन मौके पर अमल की मनुहार या अमल गालने की रीति का सफल प्रयत्न होता है। ग्रामीण लोग इस प्रथा को मांगलिक मानते हैं। मेवाड़ और हाड़ौती प्रदेशों में तो अमल उत्पादन के केन्द्र भी हैं। यहां शुभ अवसरों और लड़ाई झगड़ों में जाते समय भी लोग कसूमा गाल (अमल बांटना) करके विदा होते हैं। "आफू बांटण जोग पंथ सूरां हुंदा कांम' किसी भी लोक कथा के बीच अफीम खाने की घटना आने पर अफीम का रंग दिया जाता है। अफीम खाने वालों की कहानी आरंभ करने से प्रथम ऐसे रंग या बढ़दाव दिये जाते हैं। इसके अमल, आफू, कसूंमा, अफीम, सिजारी, गाळवी आदि कई नाम हैं। इसके रंग देन की रीति बड़ी अनूठी है। उदाहरण स्वरूप थोड़े रंग के दोहे देता हूँ जो यहां काफी मनुहारों में चलते हैं —

रंग रामा रंग लिछमणा रंग दसरथ कंवरांह।
लंका लूटी सोवनी, बालीया मवरांह ॥
सीप तवंकर संकरो बीत सर्वकर बंग।
अमल कवंकर आपनी रघुवर संकर रंग।
बकर कलोटी हुव कम्मी कमरमोर ककरंग।
मुख रावण रा बांकिया रंग हड़मता रंग ॥

साज ध्यान शंकर सबर, पारवती रा पीव ।
ममता में दबो हयक, यामें रंग सजीव ।।
रंग काळू री काळका रंग गाड़ी री माय ।
मगत करोरै न पड़ा, अदस कराबी याव ।
चोमासो सतरी सर्ग, हरिया रंग हमेश ।
मधुर मतीरा मन बगे रंग मुरधरा देस ।।
दारक सरो गजब भरी बाबर फळिया देव ।
घूम घुमेळो बाळको रंग भैराण विसेस ।।
सूगा सागर मळ बिना सूगा मूण चीना ।
सूणकरणसर साहमी रंग थाने दीना ।।
कोमा कबर सुमरळणा गिरधारी गोपाळ ।
दुरगादरसा वेदिया रंग काळू चोपाळ ।।
ममस है उममादियो सैना हूंगी सेण ।
जा बिन घड़ी न चाळगी पीकर साम गैण ।।
गढ ढाहण गोळा गळण हाथां वेम हमस्स ।
मतवाळी बल माणतां बारवी सल प्रमस्स ।।
परमार्थ पोता फिरै भूरां बळा प्रमस्स ।
मह दोनूं भळा हुया नाहो मैं रिडमस्स ।

रंग की विशिष्ट रंगिनियां —

रंग बीकाण गंम महाराजा नै रंग सहर आरै कोट दरवाजा नै
रंग मंडोवर री बाड़ी नै रंग पंचाळी री साड़ी नै
रंग अमी रा कुमारां नै रंग पदमणियां रै प्यारां नै
रंग कोटड़ा रा घोड़ां नै रंग निवाज रा किवाड़ां नै
रंग मेड़ता रा उमरावां नै, रंग जसवंत री राणी नै
रंग सिद्धसम जटी नै रंग ध्रू री भगती नै
घणा रंग जसपत नै रंग सीता रै सत नै
रंग सोनगरां री आन नै रंग सायबाटी री अवाम नै
रंग कुसळ सिंघ रा कुपटा नै, रंग सेर सिंग रा सपेटा नै
रंग हमीर रा हठ नै रंग महाराणा रा इष्ट नै घणा घणा रंग है ।

वीर बहादुरों और प्रेमियों के लिए बने हुए कुछ रंग —

रंग मधुमालति नेह जिके मन प्राण निभाया
रंग बीरमदे रजपूत जिके विजियाळी (मन) माया
रंग जिवाणा राव आभळ भर बैठा आई
रंग डोला रजपूत परमणी साख पाई
परमपुरी रंग थें पसा, लोचन बीरम भो भाविया
जाणी फौजां मोड़ नै धाप धरा मे आविया

विशेष स्त्री पुरुषों के लिए शिक्षा संस्मरणात्मक रंग —

जे कोई सातारी करी तो जमदेव कीधी ज्यूं करीज्यो
कोई घोड़ा दौड़ावो तो बगड़ावतां दौड़ाया ज्यूं दौड़ावज्यो
जे कोई दारू पीवो तो बाघे कोटड़ियें पीयो ज्यूं पीवज्यो
जे कोई लुगाई पारके घर मणो सूं रूसणो करै तौ–
उमादे भटियाणी कियौ ज्यूं करज्यो
जे कोई लुगाई पाप परख वीर परणै तो–
पाळसा री साहबारी परणी ज्यूं परणीजज्यो
जे कोई लुगाई परणिया सूं मन फाड़ी करै तौ पद्मा विरमदे कहियो ज्यूं कीजज्यो

कोई अमलदार यात्रा मुसाफिरी के समय अमल के बिना शक्ति हीन होकर बगल में गिर पड़ता है। रास्ते चलता चारण या कोई अन्य कवि उसकी मूक दीनावस्था देखकर कई वस्तुओं के द्वारा उसका इच्छा बीमारी को जानना चाहता है, कि वह किस चीज का ग्राहक है।

मसळ मसाळे माळवी खेमा खेता खट्ट
अमड़ा पीवै चोवरी, सुवाळो गहगट्ट

अमल दार सिर हिला देता है — 'नहीं राज' नहीं राज !

हाथ पुराणी ढ़ळ नवा बंगज माता भट्ट
छाको आवै पूरमो घर माथै गहगट्ट

अफीमची मरी हुई आवाज में सिर हिलाता हुआ उत्तर देता है— नहीं राज ! नहीं राज' !

फिर पूछता है —

मेलड़ियां मंवराळियां धींगाण मचळां बट्ट
सोवण आवै रिड़छी घर माथै गहगट्ट

अमलो अमल की भेर [नींद] में कहता है — 'नहीं राज ! नहीं राज'

कवि फिर पूछता है —

घी गायो गुळ माळवी गेहूं ज राता बट्ट
घळ मसळ मेवी करां, घर माथै गहगट्ट

फिर भी — नहीं राज ! नहीं राज' !

कवि पूछता है —

ऊंची मेड़ी सज रही बिजळी जाळे सुगट्ट
ढोलो मरवण पोढ़िया मन माथै गहगट्ट

तो भी 'नहीं राज ! नहीं राज' !

फिर पूछता है —

बिंदी भाल सुहाग री टीकै घुम घूंघट्ट
घायल राचै सेज में अमल आण मह्मट्ट

अमलदार तुरत आंखें खोल लेता है,

इतने में तो कवि फिर कह देता है —

ओला पान सिगारियो जोड़ो बणी सुघट्ट
थाल कटोरै घोळियो मक मात महघट्ट

सिगार का नाम सुनते ही तो अमलदार के कान खड़े हो जाते हैं। वह आंख और नाक से पानी टपकाता हुआ कह उठता है – 'वही राव ! वही राव' कवि अमल देकर उसे चलता करता है।

अमल का नशा बहादुरी की शान है। प्राचीन योद्धा इसी के बल पर जूझते थे। लड़ाई में जाते समय अमल गाला करते थे। इस में एक और गुण बताते हैं कि यह मनुहार के बिना उगता ही नहीं। अकेला आदमी कहीं अमल लेता है, तब पड़ों आदि के सामने लोसा लोसा आदि कहता हुआ अमल पान करता है। इसके प्रतिदिन खाने की मात्रा को मावा करना कहते हैं। लोक कहानियों में प्राय अमल का प्रसंग आ ही जाता है। जहां मस्त सरदारों को रंग दिये जाते हैं वहां ऊंघने वाले गरीब नशेबाज व्यक्तियों की दुर्गुणीय अवस्था का भी जिक्र आता है।

ले ले करतो मांगियो पहलै भो री पाप,
गेलै पगड़ा मूड़ पड़्या खेळा अमली आप।
तीस बरस कुस्ती करी, पड़ गुड उपक पुघस्त,
यें नीम्यो गोठा छठैं अहियो भीत अमस्त।
दारू पर बाबो पड़ी, है तम धन री हाण
परतख नर देखो नजर नफो नहीं नुकसाण।
भांग मांगसो भूंगड़ा बाजो सुलफी पी,
दारूमांग सूखड़ा जुतो खावै वो पी।

राजस्थान में सर्दी की रातों में गांव की धूणियों पर गांव के बड़े बूढ़े नौजवान युवक और बाल बच्चे आग तापने हेतु इकट्ठे हो जाते हैं। वहां गांव के सम्माननीय वृद्ध पुरुष खाट पर बैठ जाते हैं और बात कहने वाला भी पीढ़े या पाटे पर बैठ कर बात कहना आरम्भ करता है। बात क्या चलती है, सारी रात ही समाप्त हो जाती है। सुनने वाले सुनते ही रहते हैं। सोने के लिए भी हां नहीं करता। बात कोई अकेला व्यक्ति कहता है मगर लगता ऐसा है मानो सिनेमा देख रहे हैं। बड़ी सुहावनी और मन भावनी। वही (कथक) मुख, वही जबान और वही एक सतिर की तरह तन कर विषयानुसार तलवार खींचने लगता है। वह एक बात को अनेक तस्वीरों से सजाता हुआ, कहीं घोड़ों की

हिनहिनाहट , कहीं हाथियों की भगदड़ , कहीं रुंड मुंड और कहीं अंतड़ियों का दृश्य उपस्थित कर देता है। ऐसे समय मे श्रोतागण भी अपना अपना कर्त्तव्य सोचने लग जाते हैं। लेकिन वह तो कलाकार ही ठहरा। क्षण भर रुलाकर पुन हंसा देता है। इसके बाद भरपूर क्रोध से दांत कटकटाकर वीरता का रंग जमा देता है। एक बार तो कायर मनुष्य का हाथ भी तलवार मूठ की तरफ मुड़ जाता है। ऐसी प्रभावोत्पादक, मौखिक एवं लिखित लोक कथाएं राजस्थानी भाषा में असंख्य अवसरों पर कहने सुनने के काम में आती रहती हैं। बच्चों का किसानों को और व्रत उपवास करने वाली औरतों को भी कहानियां सुनाई जाती हैं। इनमें व्रत उपवास, देवी - देवता, भूत प्रेत, वार - त्यौहार सूअर नाहरों के झगड़ों तथा शिकारों का फल रहता है। यहां केवल शूरवीर एवं सतियों के पौरुष पराक्रम की कहानियां ही नहीं कही जातीं बल्कि चोरो डाकुओं और ठगों की चतुराई आदि की लोक कहानियां भी बड़ी रोचकता के साथ कही जाती हैं। लापरिया चार की कहानी तो सुनते ही बनती है। इनके अतिरिक्त सेठ - साहूकारों की , ब्राह्मण - योगियों की , कनारियों - बनजारों की, पशु परेवा और इन्द्र की परियों की भी कई बातें चलती हैं। धर्म नीति और सद्गुण सदाचारों की बातें तो बड़ी मनोरंजकता के साथ सुनाई जाती हैं। यह प्रदेश वीरों का रणक्षेत्र होने के कारण यहां वीर और शृंगार रस प्रधान की भारी लोक कथाएं मिलती हैं। राजस्थान में शृंगार और प्रेम की बातों में ढोला मरवण , जलाल बूबना , मूमल महेन्द्रा , ऊजली जेठवा , सैणी बीझानद और आभल-खींवरा आदि की अनेक बातें प्रसिद्ध हैं। मैं अन्तिम बात के नायक नायिका (आभल खींवरा) मिलन का थोड़ा उल्लेखनार वर्णन नीचे लिख रहा हू सो देखिये—

आबू रे मड व्हैतो सोई खींवजी काठिया रा गांवां में आय निकळियौ। आभल काठयांणी रा गांव में आय पूगियौ। गांव रे बार बाग में आय आंबा री डाळ रै घोड़ी बांधियौ। थकेलो उतारवा आप लागियौ। घोड़ी री चासियौ बिस्राम नै आडौ हुय गयौ। पलक झपगी। आभल आपरी सात बीसी साथणियां लार हिंडवा न बाग आई थकी। पमड़ी री खसबोई सू पवन भररियौ। छणमण - छणमण घूघरां सूं बाग गूजरियौ। गीत गाती। आपसरी में हंसती खेलती साथणियां फूलड़ा तोड़ती आय री । हंसतां फूल झड़ै बरता रिमझोलां री झमक मळे। खींवजी तौ तड़ाछ आयनै असौ चकियौ जांणे सींतग रै झोलो आयौ। आभल री नजर खींवजी पै पड़ी। नौ नजर व्हिया। जोत सूं जोत मिळी। खींवजी री निजर नाई मिळी आभल रै आर पार निकळी। जांणे अमरसिंघ री कटारी बंयगी पदमा री तरवार चलगी के रामसिंघ री सैलड़ी

घुमगियो । काळजो टूक टूक हुय गियो । दाई पापण ज्यूं घूमवा लाग गिया । मार तो मनां री जिरो घाटी न पीड़ ।

> तरवारां अंग वरगिया माणी मन मिळियोह,
> साळागारी सीवणी नाका ज्यूं निरियोह ।
> मनड़े री मन मांय, क्यांह करै मिळिया नहीं,
> विरया मरणा मांय, नीरा भावै नीवणी ।

किणी प्रेमी प्रेमिका की मिलन रात्रि का रसात्मक वर्णन भी देखिये। रात्रि का चतुर्थ प्रहर व्यतीत हुआ जा रहा है, मगर प्रेमिका प्रेमी को छोड़ना नहीं चाहती है ।

प्रेमी कहता है – परभात हुवो, मंदर झालर घंटा बाजे ।

प्रेमिका उत्तर देती है – वाल्म परभात नहीं, वधाई बाजे छ । वजन घर पुत्र जायो ।

प्रेमी–प्यारी परभात हुवो, मुरगो बोल रह्यो छ ।

प्रेमिका–कूकड़ा मिरण नहीं छ ।

प्रेमी–प्यारी परभात हुयो, चिड़ियां बोले छ ।

प्रेमिका–प्रियतम, परभात नहीं, आळा में सरप दाम छ ।

प्रेमी–परभात हुवो, चक्की घुमणी रही छै ।

प्रेमिका–बालम, बोल-बोल चाली गई छै ।

प्रेमी–दीपक की ज्योति मदी भई छ ।

प्रेमिका–तेल का पूर नहीं छ ।

प्रेमी–शहर का लोग जाग्यो छ ।

प्रेमिका–चोदयम चोर शहर में आग्यो छ ।

राजस्थान में इन शृंगारिक लोक कहानियों में वाहनों [सवारियों] ने भी बड़े चमत्कार दिखलाये हैं । इनमें ऊंट और घोड़ों की वर्णन विशिष्टता, देश के बच्चे-बच्चे की जबान पर है । चेतक चीता बाज-बहादुर जैसे घोड़ों और काळकी पीळी जैसी घोड़ियों के मरसिये और मूर्तियां बनी हुई हैं ।[1] मूमल महेन्द्रा की कहानी में महेन्द्रा मूमल से मिलने लुद्रवा जाना चाहता है । वह अपने राइके [ऊंटों के ग्वाल] से बढ़िया ऊंट मांगता है । राइका अपने चीतल नाम के ऊंट की विशेषता बताता है– किरमरिया कानां री, झांवरी पूंछ री, आरसी ईंडा री, घोटवीं नळी री । नाना करतो नागौर जावे, जय जय करतो जयपुर पुगावे, घड़ी बेक मोरी ढोली छोड़ी जावे तो दिल्ली री खबर पलक में लेतो आवे । घोड़ों का गुण वर्णन— पवन का परवाह गुलाब की मूठ, समराज को गोटकी

1 ज मोरो चढ़ काळकी, पीळी हुंती पीठ, बैरियां हाथ बतावतो मगर बताती नीठ ।

ार की टूट, आतस की ममकी, चकी की चाल , चपला की चमकी , सींचाण की झड़प, हींडे की मूंव, खगराज की वेग ।

> मूंवे मोल मंगाविया, चौड़ा इयई माट ।
> धोली गिगनी मूंवला, जै पल कोसां बाट ।

राजस्थानी वार्तों के कई रूप — प्राचीन साहित्यकारों में भामह और दंडी ने ी कथा और आख्यायिका का उल्लेख किया है। आनंद वर्धनाचार्य ने कथा के ीन भेद बताये हैं। अभिनव गुप्त ने परी कथा में वर्णन वचित्र्य युक्त अनेक ृतान्तों का समावेश आवश्यक माना है। हेमचंद्र ने सकल कथा को चरित का ाम दिया है। हरिभद्राचार्य ने कथाओं को अर्थ कथा, काम कथा धर्म कथा ौर संकीर्ण कथा नाम के चार वर्गों में बांटा है। मगर ये वर्ग सिर्फ साहित्य कहा नियों के हैं। लोक कहानियों के नहीं। लोक कहानियों का वर्गीकरण तो उपयोग, ाकार और अभिप्राय की दृष्टि से किया जा सकता है। धार्मिक अभिप्राय से ो कथा कही सुनी जाती है, वह धार्मिक कथा कही जाती है। जैसे-सतनारा-ण की पौराणिक व्रत के साथ पौरोहित द्वारा कही जाने वाली कथा का धार्मिक था कहा जाता है। जैसे गणेश कथा—इसमें शिव पार्वती की कथा पार्वती का कान्त सेवन, गणेश जन्म, मेल के पुतले में प्राण संचार, द्वारपाल बनना, िव से युद्ध करना, सिर कटवाना, पार्वती का विलाप, हाथी का सिर चढ़ा र जिलाना आदि बातें धार्मिक गाथा के लक्षणों से युक्त है और लोक वार्ता के त्व भी मौजूद हैं।

राजस्थान में इसके दूसरे ऐतिहासिक रूप को वार गाथा कहा जाता है। समें चारण भाटों द्वारा बने काव्य पाठ भी होते हैं। डाक्टर कन्हैयालाल सहल बहुत सी वीर गाथाएं लिखी हैं। जसे—वीर अणत राय राव सूनकरण, हारानी हाडी और वीरवर जयमल आदि की। व्रत कथाएं धार्मिक कथाओं के ाथ गिनी जायेंगी। बीकानेर के श्री मोहनलाल पुरोहित ने राजस्थानी व्रत कथाएं ामक पुस्तक, संग्रह की है। इसमें एकादशी, चोथमाता रोहणी, होली की थाएं, पुरानी हस्तलिखित प्रतियों से लिखी हैं और सट विनायक तुलसी व्रत था और सातों वारों की राजस्थानी कथाएं हिन्दी में लिखी हैं। श्री चंपादेवी ागड़िया [कलकत्ता] की पुस्तक बारह महीनों का त्यौहार और उदयवीर शर्मा ी राजस्थानी व्रत कथाएं मरवा में प्रकाशित लेखमाला द्रष्टव्य हैं। श्री शर्मा ने ानाछठ [चन्द्र षष्ठी] बच्छ बारस [वत्स द्वादशी] दूबड़ी सातूं [दूरवा प्तमी] बावन द्वादसी गाय का व्रत आदि अनेक कथाएं लिखी हैं। इन्होंने पंच ीखे [भीष्म पचक] की कहानी भी लिखी है।

जैसा कि हमने पहले अध्याय में लिखा है — प्रचार के ढंग से इन लोक

कथाओं के दो भेद किये जा सकते हैं। महिला समाज में प्रचलित और पुरुष समाज में चलने वाली। महिला समाज में प्रचलित कहानियों के भी दो भेद किये जा सकते हैं — सुनने वाली लोक कथाएं और सुनाने वाली लोक कथाएं। इनमें प्रथम व्रत कथाएं आती हैं और दूसरे में बच्चों की कहानियां होती हैं। पुरुष समाज की कहानियों में मनोरंजन, उपदेश, घटना वर्णन और वाक्-चातुर्य आदि कई अभिप्रायों को लेकर लोक-कहानियां चलती हैं। अतः राजस्थानी लोक कथाओं का निम्न ढंग से विश्लेषण कर सकते हैं। यहां मनोरंजन, उपदेश, व्रत वर्णन महात्म्य और मुहावरों आदि प्रधानताओं वाली कथाएं चलती हैं। उपदेश की दृष्टि से भी मनोरंजन, उपदेश, धार्मिक तत्वों की व्याख्या और व्रत महात्म्य की कहानियां मुख्य हैं। श्री अगरचंद नाहटा कथाओं के प्रचार और तत्संबंधी साहित्य निर्माण के तीन प्रयोजन बताते हैं — १ मनोरंजन २ बुद्धि वृद्धि और शिक्षा तथा ३ धार्मिक प्रेरणा। पंडित कृष्णानंद गुप्त ने आदिम मानव की धार्मिक और भीति भावना में विश्वास, आस्था, प्रकृति की बहुलता देखकर लोक कहानी के धार्मिक और मनोरंजन दो रूप और निम्नलिखित तीन भेद किये हैं।

क धार्मिक तत्वों से युक्त कहानियां — जिनमें व्रत या महात्म्य कथा आयेगी। ख मनोरंजनात्मक तत्वों से युक्त और ग उपदेशात्मक तत्व मूलक। डा० शंकरलाल यादव ने अपने शोध ग्रंथ (हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य) में लोक कहानियों को बारह वर्गों में बांटा है। राजस्थानी शोध संस्थान (जोधपुर) वालों ने परंपरा के बातों संबंधी विशेषांक के लिए अपने ढंग से उनका वर्गीकरण करके श्री अगरचंद नाहटा के पास भेजा था। ऐतिहासिक, परंपरागत, सामाजिक आलौकिक परियों और देवी देवताओं संबंधी, पौराणिक, प्रकृति संबंधी, पशु पक्षी और वनस्पति प्रेम कथाएं उपदेशात्मक कहावती कथाएं, पारिवारिक कथाएं घटना प्रधान तिलस्मी जासूसी, बच्चों की कथाएं उत्सव और त्योहार, व्रत कथाएं, पशु चारण कथाएं रोग निवारण के लिए बात, संस्कार कथाएं, हास्यात्मक खेल संबंधी नीति विषयक जातियों पर आधारित—नाई, भाट, चमार की कथाएं हाजिर जवाबी मनोवैज्ञानिक, प्रतीकात्मक कुरीति निवारण भूत प्रेत की कहानियां, कलाकारों की कहानियां साम्राज्यवाद विरोधी कथाएं, बनजारों की कथाएं और भौगोलिक। मरुवाणी के बात अंक में संपादक ने राजस्थानी परंपरित कहानियों में आने वाले कई वर्णन लिखे हैं। ऋतु वर्णन, नायिका वर्णन, भोज वर्णन, शिकार वर्णन आदि कई वर्णनों को परंपरा बतलाई है। संयुक्त राजस्थान में श्री रावत सारस्वत ने अपना राजस्थानी का बात साहित्य नामक लेख छपवाया था उसमें कई प्रकार से वर्गीकरण किया है और प्रत्येक

वर्ग के आगे उसकी कथाओं की नामावलि भी दी है। हम अपनी राजस्थानी लोक कथा - वार्ताओं का विषय गत वर्गीकरण मोटे तौर पर कर सकते है १ वीर भावात्मक वार्ते २ नीति संबंधी वार्ते ३ धर्म, व्रत तथा त्यौहार विषयक वार्ते ४ देव विषयक वार्ते ५ पौराणिक वार्ते ६ एतिहासिक वार्ते ७ प्रेम संबंधी वार्ते ८ स्त्री चातुर्य की वार्ते ९ कहावतों की कहानियां १० अ पद्य गद्य या चम्पुतत्व वार्ते [आ] हास्य संबंधी वार्ते ११ चोर धाड़ेतियों की बात १२ प्रश्नोत्तर [कुतौवल वार्ते] वार्ते

राजस्थानी का बात साहित्य बड़ा भरा पूरा है। उसके वैज्ञानिक वर्गीकरण की अत्यन्त आवश्यकता है। समस्त राजस्थानी लोक साहित्य के मेरे इस अध्ययन में बात वैविध्य साहित्य का पूर्ण गहित वर्गीकरण कर देना संभव नहीं होगा। फिर भी प्रत्येक राजस्थानी बात को प्रमुखता देकर विभाजन किया गया है। इस विषय में सुविज्ञजन सन्तोष करेंगे।

१ वीर भावात्मक वार्ते — पहले हम वीर भावात्मक लोक कहानियों के लक्षण लिखते हैं। ये कहानियां इस प्रदेश की प्राण हैं। इन के कारण ही तो राजस्थान को वीर समंद कहा जाता है। अंग्रेजी में वीरभावात्मक वार्तो को एडवेन्चर टेल्स कहा जाता है। ऐसी वार्तों में जान जोखिम के साथ बुद्धि चातुर्य का प्रदर्शन होता है। इन में सिंह-बघेरे, बाढ़ाळा सूर, सत्रु-दाने, राक्षस और डायन-योगनियों जैसे भयकर पात्र होते हैं। इन कहानियों का उद्देश्य श्रोताओं के साहस शौर्य का संचार करके उन्हें कर्तव्य पथ की ओर से जाने का होता है। ऐसी पौरुषेय कहानियां यहां अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। यहां हल्के वर्ज की छिछली कहानियां बहुत कम हैं। इन में तो जीवट युवकों के ओजस्वी वर्णन ही मिलते हैं। जबड़ा मुवड़ा, मालो डामी जैसे वीर वैतालों की वार्ते [प्रकाशमान लोक कथाएं] राजस्थानी लोक साहित्य की मणियां हैं। सिर्वे विज , राजा भोज , सापगो चोर , दीपासंदे, फूगरा बलोच , सोनगरा मालदे, गारा बादल, अमरसिंह राठौड़ पाबू राठौड़ जगदेव पुंवार, वीरमदे सुलतान, ऊकौ, गूगी , गरड़पस उदमो पिरथीराज, दिणबारी भोम सिंघ, धूंडौ, सादूळौ, बगूजी चंपावत, अमार्डसिंघ, ल्हालर सवना ऊमा मटियाणी, सांवस सोम, दूदौ जोधावत, जगमाल मालावत आदि की वार्ते वीर भावात्मक हैं। ऐसी कहानियों के दोहे —

> मीरां रा माथा उडै, मुख बक मारो मार।
> मालावत जगमाल री बहुत लमी तलवार ॥
> पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल।
> बीबी पूछे खान नैं, जोध किता जगमाल ॥

डावाळे री भाट में धारा रहीमा जोय।
बेरो बेरो सैं कहै, मूढ़े चढ़ै न कोय॥
पहुचे सापर वूलपुर बीदै गम पगाम।
सरन सके दीवान सूं, सूरे सबके पाय।

भूत प्रेत डाकण स्यारी की कहानियों में उनने कारनाम हासे हैं। मगर मनुष्य के आगे वे चलते नहीं। एसी कहानियां में – जिन्द की घस्ती, भूत अर कूकड़ी, भूत की बेटी सू ब्याह, भूत अर सेरणी, वाढियो भूत, केलणियो भूत, राजा अर डाकण, जुरा राक्सणी, पथ पीर आदि बातें आती हैं।

२ नीति संबधी बातें—दूसरे प्रकार की कहानियों में नीति प्रधान कहानियां हैं। ये उपदेश एव ज्ञानागार हैं। इन मे नीति और मनोरंजन साथ साथ चलते हैं। पशु पक्षी एवं जीव जन्तुओं की कहानियां मनोरंजक तथा नीतिपरक होती हैं। इन में ईमानदारी, सचाई, न्याय प्रियता, समानता सहानुभूति एवं नीति सबंधी बातें होती हैं। अंग्रजी में इन्हें फेबल [नीति कथा] कहत हैं। योरोप में ईसप की फेबल्स या कथाओं के नाम स प्रसिद्ध हैं। भारत में इन्हें पचतत्राय कहानी कहते हैं। दुष्टों के चंगुल से बचना बचाना, विपत्ति में धैर्य धारण करवाना आदि तंद्र इस प्रकार में पाये जाते हैं। साईं री पलक में मलक, जसमस ओडणी जसी अनेक प्रकार की नीति कथाएं यहां मिलती हैं। अंबर क जाट की कथाएं भी बड़ी न्याय-नीति पूर्ण हैं।

साईं केरी पलक में, बसता समक जहांन
फिकर करै जो काकरा वो है मूरख घमोन।

३ धम, व्रत तथा त्योहार विषयक बातें—तीसरे ढंग की वे कहानियां हैं, जिन्हें धार्मिक, व्रत सबंधी या धरम महात्म्य की कहानियां कहेंगे। इनमें फल प्राप्ति का विधान रहता है। स्त्रियां इन्हें व्रत करके सुनती सुनाती हैं। ये पुण्यमयी लोक कथाएं बड़ी महत्व पूर्ण हैं। धार्मिक कथाओं म शिव पावती के विवाह की कथा, सत्य नारायण की कथा सुहागी मावस पाससी पुन्यू आदि लोक कथाएं हैं। व्रत-कथाओं में सूरज रोट री कथा, भाम री कथा करवा चोथ, ऊभछठ, तीज, गोगा पांच्यूं, नाग पांच्यू, बछ बारस दूबड़ी मारयूं गाज माता, आसा भागोती, पच भीगा, मंगला गोरी तिल्कुट्ट री चोथ, आंवळा नवमी, शनि स्चर भगवान आदि की लोक कथाएं अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी शिक्षा उपयोगिता का प्रचलन स्त्री समाज में अधिक है। एसी कहानियों म कार्तिक स्नान एवं व्रतों की कहानियां भी बहुत हैं। कार्तिक स्नान करन वाली महिलाएं प्रात स्नान करके भगवान के मंदिर में न गाती हैं और आगम म [illegible]
[illegible] , हापणी-हारली [illegible]

सामदे स्यामदे री बात एवं कठिहारे, बिनायक, सुसरो भू, गंगा जमना, कीड़ी ने कण हाथी नैं मण इत्यादि की बातें हैं। यहां मैं एक घुणिये घुणली की प्रमुख कातिक कथा दे रहा हूं, जो द्रष्टव्य है।

अेक घुणियो अर घुणली हा। वका दोनूं अेक भागी रै घरां घणा दिना सूं मोंठां रै बोरा में बैठ वरपा करता हा। मीणा बीतग्या, घंघां करतां करतां म काती मैड़ी आई। अर घुणली काती न्हावण री बात पळ्ळाई। बोली — घुणिया आंगी आपां ही काती न्हावां।

घुणियो बोल्यो — "तूं ही न्हाया मनें को पुरण आणो नीं। राम नीकळ्यो है, इयें टग्गर में बीर निसारां। म्हारा तो पोता ही म्हार पाछा नीं आवसा। मरणी थोड़ी ही है।" घुणियो हथ नटग्यो पण घुणली रोजीने री कोठ सूं न्हावै। भळावटे उठे अर घर री सुधायां कूकै बठै हर दिन पूं न्हाय कर घुणिये कने पाछी भाय जावै। पण घुणियो तो ज्यायो ज्यायो बैठ्यो माथ-मसरको मोठ ठोकै अर गुवार पिटै।

घुणली पूरी काती न्हायी उिरायत करी। भाका करत बडोसिया राख्या पर पुण्य रा फळ घसा। पुण्य बध्या पन पाप घणा घट्या। काती री पुन्यूं रै दिन घुणियो घुणली दोनूं मर रैग्या। तकदीर दांव मारयो मूंगो बमारो बारयो। घुणली राजा रै बाई होकर जनमी अर घुणियो राजाजी री मींढ़ो बण्यो। बाई रात बधतां दिन बधी अर मोटी होई। परणाई अर रांधी बगी अर मींढ़े री घुवड़ी रही बणी। मायरै पीर सूं सासरै भेजी आई। पगां में मेवर पर गळै में रेशमी रस्सी रणवास में ऊभो पटोळिया पाणी ठण्डा सूम चरै। प्यासो हुवै पाणी मावै अर रांधी कवै — 'रे घुणिया।' 'क्यूं घुणली?' "मेवर बाजे तोरै पाय म्हैं केंठी नीं रे लोभा कातकड़ी न्हाय।' अेक दिन या रांधी मींढ़ै री बात राजा सुणी अर अचूंभो करयो। रांधी नैं पूछ्यो — "या काई बात छे?" रांधी सारी बात री साची ब्यानो दियो। राजा अचूंतो राजी हुयो अर काती न्हाण करणी पळायो।

कार्तिक स्नान करने वाली महिलाएं यह बात अभी भी कह कर व्रत का पारणा खोलती हैं। वे बात सम्पूर्ण करते समय अपना अंतिम ओठा [उदाहरण] भी देती हैं — "हे काती राजा, राई दामोदर ! घुणली नै तूठ्यो जिसो सैं ने तूठज ! घुणिय नैं तूठ्यो जिसो किणी ने मत तूठजै ! छणणियां-घुणणियां अर सेंग हुंकारा भरणियां नैं।"

इन में होली दीपावली और गणगौर आदि पर्व व्रत कथाएं भी खूब मिलती हैं।

४ देव विषयक बातें — चौथे प्रकार में देव विषयक कहानियां रखी हैं। इन के पात्र देवता होते हैं जो मानवी रूप धारण करके वैसे ही कार्य करते हैं। बमाता [भाग्य अधिष्ठात्री देवी] की, हनुमान जन्म की, अहिल्या श्राप की और भाग बदरिये आदि की कहानियां इसी वर्ग की हैं। भाग बंदरिय की कहानी [निजी संग्रह] में भाग्य देव की सार्वभौम सत्ता के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इसमें भाग्य देव के आगे रावण जैसे सर्व शक्ति सम्पन्न सम्राटों की भी एक नहीं चलती है।

सुण कुम्भा रावत कहै, माय भतीजा मंक,
मायो माथो ना रहै पाथो पड़ियों मंक।

इस विषय में — रामदे तुंवर री वात, राजा नक्षत्र आलीक अर विक्रमाजीत री बात, ससि पुग्रू री वात, सूरजनारायण री वात, पारवती महादेव री वात, लिछमी री बात, गणेस भगवान री वात, गंगा जमना इत्यादि इत्यादि बातें हैं।

५ प्राचीन एवं पौराणिक बातें—पांचवी श्रेणी की कहानियों के चरित्रों में कुछ अलौकिकता तथा अतिरंजन के अंश मिलते हैं। राजा महाराजाओं के पौराणिक चरित्रों को लेकर ये कहानियां कही जाती हैं। जो पौराणिक कथा कहलाती हैं। इन कहानियों का उद्देश्य लोक में आदर्श गुणों का प्रचार करना होता है। इनमें राजा नल री वात, जन्माष्टमी री वात, रामनवमी कथा, दुवारका महातम री वात, गोविन्दमाधो जी री कथा, ग्सी पांच्यूं री कथा आदि प्रसिद्ध हैं। लोक साहित्य मे 'पलक दरियाव री वात' पौराणिक कथाओं का एक विशेष नमूना है। राजा भोज, वीर विक्रमाजीत, गन्धव सेन, सालीवाहन, भर्तृहरी आदि पात्रों की कीर्ति का पूरा वर्णन पौराणिक कथाओं में मिलता है। इनमें जादू टोनों आदि के चमत्कारी वर्णन भी होते हैं। जादू की कहानियों में रोचकता अधिक होती है। इनको सुनकर श्रोता मुग्ध हो जाते हैं। ऐसी कहानियां के नाम डम डम जादूगर, सोनो मींडी, चिपम-चिपा, लगलग पोटियो, सोनै री मछुन, इट सू सोनो कामरू देस मरद री मरद, ऊंट सूं बकरियो आदि हैं। यों तो मनोरंजन के तत्व समस्त लोक कहानियों में होते हैं, लेकिन कुछ कहानियां ऐसी हैं, जिनमें अलौकिक तत्व बड़ी चतुराई से जोड़े गये हैं। कहानी का मतलब ही मन बहलाव होता है। उसमें दिलचस्प एवं रोचक तत्व होने जरूरी हैं। पाठक या श्रोता को इनमें अद्भुत आनंद प्राप्त होता है। ये खाली समय में पढ़ी या सुनी जाती हैं। लेकिन इनके रंजन में सार्थकता रहती है, जिससे ये लोक के लिए उपयोगी सिद्ध होती हैं। परियों की कहानियों में पप रा फूल, रात री रांणी, सोनै रा फूल, सात परी, सोमल परी, परियां री देस आदि कहानियां हैं। इस तरह की कहानियों में राजा मानधाता की कहानी में अप्सरालय लोक का चित्रण हुआ है। इसमें वैतालिक तत्व हैं। वीरमदेव सोनगरा, पाबूजी राठौड़, जगदेव पवार आदि की बातें उत्सुक वृत्ति का ही पोषण करती हैं। जगदेव पंवार की बात से थोड़ा अंश लिया रहा हूं — "चिवा काळी दीर्गार, मोरा दांत पणी इरा बणो, माथा रा ल्टिया बिखरिया, पणा तेल मार्थ पवता धवळा कम माथो, सोळा सिन्दूर चपड़ियो थरी सावड़ी काळी, काळो धावळी, काळी तेल मारे गरवाव धरी उघाड़ो माथो कोधां हाथां माट त्रिशूळ भालियां, दरबार

बाई " ...... ! कई बातों में राक्षसी स्वरूप भी मिलता है।

१ ऐतिहासिक बातें—आठवीं कोटि की ये कहानियां हैं, जो ऐतिहासिक पुरुषों के वर्णनों से बनी हुई हैं। ये ऐतिहासिक पात्रों के आधार पर हैं। अत ऐतिहासिक कहलाती हैं। इनमें सूर सींव कांधलोत, जगदेव पवार, जगमाल मालावत, वीरमदेव सोनगरा, जैतसी उदावत, महाराजा मानसिंह, पदमसिंह, अमरसिंह, बखसिहोत आदि की बातें गिनी जा सकती हैं। सूरे सींवे कांधलोत की बात का थोड़ा नमूना पेश कर रहा हू — राठौड़ सूरो सींवो, कांधलजी रा बेटा, मोहिला रा दोहिता। सो बडा सूर वीर धीर राजपूत, चौसठ आखड़ी निभावण हार। लाग त्याग पूरा, काछ वाच निसकळंक, सरणाई साधार, पर मोम पंखाण पारकी इस्त्री बाग। इण भांत रा दातार जूंझार।

> सूरो सींवो वीर अति, सोमाळो दातार।
> हिम्मत बारी गमगरा, हुया न होसी हार॥

दो और बात के ऐतिहासिक दोहे देखिये —

> मेहरिया कर नै सका सूत्रो मागो बार।
> देखो सपने देवड़ी गयी समंदरां पार॥
> अमरसिंह बखसिंह रै, करी अचल राठौड़।
> कोन बात हुवो कियो, मुगलपार रो मोड़॥

७ प्रेम सबधी बातें—इनमें प्रेमी प्रेमिकाओं के संयोग वियोग के चित्र होते हैं। राजस्थानी लोक कथाओं में ऐसे यौवन प्रणय के असख्य चित्र मिलते हैं। शिशु स्नेह तथा वृद्धा अवस्था की कथाए भी हमारे साहित्य में हैं। लेकिन प्रेम बच पन का प्राण, यौवन का सहचर और वृद्धा अवस्था का सहारा होता है। इस लिए प्रेम मनुष्य के लिए बहुत जरूरी है। इसकी जड़ें परलोक तक पहुंचती हैं। इसको जन्म-जन्मान्तरों का बंधन माना है। रतना हमीर की बात में सयोग शृ गार का स्पष्टी करण है—लेखक कहता है—

> कुसुम तणा सर पांच कर काम जिका जीमै जीत।
> तिण री सुमरण करतवां, रस प्र थो री रीत॥

यह कथा चंपू शैली में है। थोड़ा नमूना देखें— नैण जिके इमरत रा हीज नैण मेण जिको कोयल रा ही मैण। भमुस क्यूं ही मुंहा री चंप। नासिका जिका सूआ री चंच। अधर परवाळी जिस्या वणियां। दांत वाणे हीरा री कणियो ' यहां वियोग शृ गार की भी कई कथाएं मिलती हैं। सैणी बीजानद री, बींझे सोरठ री, दिनमांन रै फळ री, जगसीराम प्रोहित हीरां री, रावळ नप सेन री, देवेर मानकवे री जोगराव चारण री, सोहणी री, खिजड़ -बिजोगण री, रांग लेवै री, रिसाळू मोपदे री, माढी काछबी री, माग-

इस पर स्त्री कहती है — मैं एक बड़ा पापड़ा बनाऊंगी और उसको पहिनकर खेत में चलकर लगाऊंगी।

पुरुष — 'हट रांड। पापड़े से तिलों की फूलियां झड़ गई।'' उसी दिन से चोरी वाली कहावत चल पड़ी। कोई मन के लड्डू खाता है और ऐसा करेंगे वैसा करेंगे का भाव बांधता है, तब लोग कहते हैं— पहले ही क्यों चोरी वाले तिल करते हो ?

३ मियां है जठ फजीती घणी हुसी—

एक मुसलमान बहुत धनवान था। उसके घर एक औरत थी। उसके कई दिनों तक कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। बहुत-बहुत मोक पूजा के बाद उसके एक लड़की पैदा हुई। लड़की का नाम फजीती रखा गया। फजीती का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से होने लगा।

एक समय गांव में चेचक का प्रकोप हुआ। मियां के मोहल्ले में कई बच्चे शिकार बने। फजीती को भी चेचक निकली। वह भी इसके प्रकोप से न बची। उसकी मृत्यु हो गई। मियां की औरत अपनी बेटी (फजीती) के लिए फूट-फूट कर रोने लगी। पास पड़ोस की औरतें उसको चुप करने के लिए आई। लेकिन मियां की औरत हाय! फजीती! हाय! फजीती! करती ही गई। तब एक बूढ़ी पड़ौसिन ने धैर्य बंधाते हुए कहा कि— बीबी चुप हो खुदा तेरे मियां को सलामत रखें। मियां है तो फजीती और होवी।

प्रवाद की बात—प्रवाद जनता के व्यवहारिक आचरण हैं। लोक साहित्य में हजारों की संख्या में ये चलते हैं।

१ एक शराबी ने अपना सारा धन प्याले में पी डाला। आखिर अनाज के भी टोटे पड़ गये। एक दिन उस नशेबाज का साला अपनी बहिन से मिलने आया। बहिन अपने भाई को भोजन करवाने के लिए घर की थाली गिरवी रखकर बदले में अनाज लाई और उसको चक्की पर पीसने लगी। उतने में वह शराबी बाहर से घर आया और घर की सारी लीला समझकर बोला—

पावणो आयो सिरै मोड़ रांड लाई थाली पर छोड़
घमड़ घमड़ चाकी पीसै काल उठायां कासकी दीसै।

२ काया छोड़ै कदसिया दीन्धा छोड़ै हत्थ,
चलत न मुई पोढ़ाणियां माल परायै हत्थ।

जोधपुर महाराजा श्री जसवंतसिंह जी बड़े भक्त एवं उदारमना कवि थे। उनको धर्म विचारों के साथ श्वास प्रक्रिया का भी ज्ञान था। वे संसार को असार समझते थे और मृत्यु के साथ होकर जाने के लिए हर घड़ी तैयार रहते थे। उन्होंने मनुष्य की काया के विषय में कहा है—

जसवंत सीसी काच की वैसी नर की देह।
जतन करंता जावसी हर भज लहाया लेह ॥

दस दुवार रौ पींजरो तामें पंछी पौन।
रहण अचंभी है जसा, जाण अचंभी कौन ॥

उन्होंने राजदरबार और अपने अंतःपुर में आज्ञा करवादी थी कि — मेरी मृत्यु के समय शरीर पर पहने कपड़े को भी ज्यों साथ जला दिये जावें।

उक्त प्रथा के पालनार्थ राजकीय वजीर, कर्मचारी तथा सारे कुटुम्बीजनों एवं अंग-रक्षकों ने हां भर ली थी।

एक बार महाराजा ने प्रहर का प्राणायाम शुरू कर दिया। श्वास चढ़ा लिया और समाधिस्थ हो गये। तब लोगों ने समझ लिया कि इन्होंने शरीर छोड़ दिया है। बस तुरन्त महाराजा के शरीर से मूल्यवान वस्त्राभूषण उतार कर कफन ओढ़ा दिया और शव को भूमि पर सुला दिया गया। महाराजा समाधि से हटे और शरीर का दुर्व्यवहार देखा। सारा वृत्तान्त ज्ञात करके वे बोले—

काया माई करविया दीन्या छोई सरप ।
जसवंत मुंई पोढ़ावियो, माल पराये हरप ॥

१ बासां करपा बिछावया, हीरां बांधी पाग
– कांटे मोती पो दिया, हेम गरीब निवाज ।

'स्त्रोफा भूपाळक सुत्या बांधियां' – भोपाल रूठे हुए भी अपनी दातारी को नहीं छोड़ते। अभाव के समय तो क्षत्रिय स्वभाव और भी उदार हो जाता है। एक बार बाटेवी सरदार श्री हेमसिंह जी की कोटड़ी पर एक बारहठजी याचना हेतु पहुंचे। उस समय उनकी कोठरी में सिवाय थोड़ी सी जुवार के और कुछ भी देने की वस्तु नहीं थी। याचक बारहठ ने लेने के लिए अपना एक मोटा कपड़ा उनके आगे बिछाया। तब हेमसिंह जी की बड़ी बेटी बासकंवर ने बारहठजी के बिछाये हुए उस कपड़े पर अपने घर की सारी जुवार (अन्न) लाकर उंडेल दी। जुवार अधिक होने के कारण कपड़े से नीचे गिरने लगी। तब उनकी छोटी बेटी हीरां कुंवरी ने जुवार की कपड़े पर पाळ सी बनादी। बारहठजी के साथ उनका बेटा भी था। उसके कानों के छिद्रों में बबूल की मूळें डाली हुई थीं। उन दोनों ने मिलकर जुवार की गांठ बांधी और चलने को तैयार हुए। तब ठाकुर हेमसिंह ने अपने कुंवर के कानों में से मोती निकाल कर बारहठ के बेटे के कानों में कांटों के बदले में पहना दिए। बारहठ ठाकुर की दातारी पर बड़ा खुश हुआ और उसने हेमजी की प्रशंसा में दोहा बनाकर कहा—

बासां करपा बिछावता हीरां बांधी पाग ।
कांटे मोती पो दिया हेम गरीब निवाज ॥

बात पहेली—ये बुद्धि परीक्षार्थ पूछी जाती हैं। लोक साहित्य में इनकी बड़ी भरमार है। बात—

एक जंवाई मुकलावा लेने के लिए अपने ससुराल गया। वहां उसके पास सालियां एकत्रित होकर आई और अपने बहनोई की होशियारी देखने के लिए बोलीं—

मोती बरणा ऊजळा हाथ लगां कुमळाय
ना माळी रै नीपजै ना राजा रै बाग ।

जंवाई इस पहेली का अर्थ (ओळी) समझ गया किन्तु चतुराई से उत्तर दिया—

हाट ना बाजार ना बाणियै री दुकान ना,
आवतो देख भर जावतो होळी
थे मांगो तो लाद, म्हे भर देस्यां ओळी ।

चुटकले—चुटकले जनता में बहुत प्रचलित हैं। इनमें हास्य की विशेषता

होती है। लोग समय समय के वार्तालाप में चुटकले बोलकर स्थिति को सरस बनाते हैं।

१ एक बार सैनिक ने शीतला माता की पूजा आरंभ की। इस पर माता प्रसन्न होकर बोली "मांग" सिपाई ने कहा—'हे माता मुझे घोड़ा दो।' माता ने कहा—'अरे बेटा! मेरे पास यदि घोड़ा होता तो मैं गधे पर क्यों चढ़ती।

२ बादशाह ने अपने फौज के एक सिपाही को बुलाकर पूछा— सिपाही थारो नाम कांई!" सिपाही कियो— हुजूर नाहरखां।" बादशाह कियो तो सिप सूं कुस्ती लड़णी पड़ती। "हुजूर! नाम तो दुरखळियो हो, पण भूखा रोज कुलम किया। बाद रो नाम नाहरखां रख दियो।'

३ एक कंजूस बाणिये रै घरां बटाऊ आयो, जद बाणिये आपरै घर में हेली मारनी शरू कियो—' अरे सिरदारां पाळर खीरो करियो। थोड़ी देर बाद पछै पाछो हेलो मारियो—अरे खीरे में छाछ नांखे तो रोटी ही करज्यो। थोड़ी देर बाद थोड़ू हेली मारियो—अरे रोटी कठा बार नांखे तो राबड़ी ही नाखो।' बेहसी भुळावण सुणनै बटाऊ कह्यो—" राबड़ी सूं नीचे उतरेवी बीनें नांखें जेड़ी सोमंच है।"

इनमें लोक जीवन के यथार्थ चित्र होते हैं। पूरा विवरण आगे पढ़ें।

१० पद्य—बद्ध लघु हास्य बातें—दसवीं श्रेणी में हम पद्य-बद्ध कहानियां लेते हैं। जिनमें बालकों की कहानियां अधिक मिलती हैं। इन कहानियों के विषय सरल एवं सीधे होते हैं। बाल कथाओं के पात्र भी दूर के नहीं, घर के परिचित पशु पक्षी आदि होते हैं। इनमे चिड़ी चिड़कली, चिड़िया चुस्सी, चुस्सी-मुस्सी, चिड़ी कागलो, टीटण-मटकावर, कीड़ो-कमेड़ी, कीड़ी रो जुवाई, जूं रो ब्याह, कमेड़ी रो ब्याह, कीटियो, गादड़ो सूकड़ो जैसी असंख्य बातें होती हैं। बाल लोक कथाएं ही साहित्य लोक कथाओं की धात्री हैं। छोटे छोटे बच्चे घर घर कहानी सुनते हैं। कलम पकड़ते हैं और फिर कहानीकार बनते हैं। राजस्थान में ऐसी लघु बाल लोक कथाएं कई हू। जो छोटे बच्चों को सुनाई जाती हैं। इन कथाओं की शब्द योजना एवं वातावरण इस प्रकार के होते हैं जैसे कि अत्यन्त विचार पूर्ण शिशु लोकोपयोगी कहानी के होने चाहिये। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषताएं हैं। दो पद्य-बद्ध बाल लोक कथाओं के उदाहरण देखिये—

क—एक बनिये का गृहस्थ —एक बनिये ने जूं [कृमि] से विवाह किया। जूं पानी का लोटा गर्म करने गई और लोटे में डूब कर मर गई। बनिया लोटे का पानी नदी में गिरा आया। पानी लाल हो गया। तब एक बैल ने आकर नदी से प्रश्न किया— पानी लाल क्यों? तब नदी ने कहा—

बाणिया री घर डूबो घरवाम डूबो नदी री पाणी रातो
बळद रा सींग भड़्या पीपळ रा पान भड़्या
कागली नाकी हेसो गोडो

पांवळी पविहार बोडा स्याळ
बोल्या बुवाळ, घर रा बांबा
दांतली घबा, बांमली रांघी

रानी सह सब काने खोड़े लूले लंगड़े हो गये। इस कहानी में लक्ष्य प्राप्ति नहीं। केवल हंसाने खिजाने का उद्देश्य तथा मनबहलाव है। बाल मनोवृत्ति की पुष्टि-तुष्टि के उपकरण उपस्थित होने के कारण यह सन्तोषप्रद कथानक है।

ख-एक कमेड़ी[1] किसी खलिहान पर दाना चुगने आई। खलिहान के मालिक भूरिया बाट ने रस्सी का फंदा डालकर इस सरल परिन्दे को पकड़ लिया। उस समय खलिहान के पास से गायों का ग्वाला निकला। कमेड़ी ने रोते हुए उससे कहना शुरू किया —

गायां रा बवाळिया रे बीर टमरक टूं
बंदी कमेड़ी छुड़ाई रे बीर टमरक टू
डूंगर लारै बचिया रे बीर टमरक टूं
नाना-नाना बचिया रे बीर टमरक टू
आंधी सूं उड़ जासी रे बीर टमरक टूं
मेहां सूं गळ जासी रे बीर टमरक टूं

"हे गायों के ग्वाले, हे मेरे भाई! बंदी कमेड़ी को छुड़ाना भाई! मेरे बच्चे पहाड़ी के पीछे हैं। ये छोटे छोटे हैं। आंधी से उड़ जायेंगे और मेह से गल जायेंगे।' कमेड़ी के दुख पर ग्वाले की आंखों में आंसू आ गये। उसने मेड़ी छुड़वाने के बदले भूरिये को अपनी एक गाय देनी स्वीकार की। लेकिन [भूरि]या नहीं माना। उसके बाद राईका [ऊंटों का ग्वाला] आया और कमेड़ी [ने] वही गीत गाकर सुनाया। उसने भी कमेड़ी का बंधनमुक्त करवाने के लिए [भू]रिये को एक अच्छा ऊंट देना चाहा। पर भूरिया नहीं माना। फिर भेड़ बक[रि]यों के ग्वाले भी कमेड़ी को छुड़ाने के लिए अपने अपने पशु धन को लेकर उप[स्थि]त हुए। मगर भूरिया टस से मस नहीं हुआ। आखिर एक चूहा जमीन से [नि]कला और वह भी कमेड़ी को देखकर द्रवित हुआ। उसने भूरिये से पाताल का [सो]ना लाकर देने का वादा किया और कमेड़ी को छुड़ाया। कमेड़ी फंदे से निक[ल]कर उड़ गई। चूहा जमीन में घुस गया। भूरिया हाथ मलकर रह गया। अत्यन्त लोभ करने वालों की यही — [illegible] है।

राजस्थानी के विस्तृत प्रांगण [illegible] ंग की छोटी छोटी लोक कथाएं जन जन की जिह्वा पर अबाध गति से नृत्य करती रहती हैं। इनमें ठाकी, चमार, नायक नाई बावळाऊ बामण, मक्खीचूस महाजन, कायर राजपूत आदि

[1] कबूतर की जाति का एक कत्थई रंग का पक्षी, जिसको पिड़की भी कहते हैं।

की विभिन्न कथाएं मिलती हैं। मोळे री भाण, फक्कड़ पंच [निजी], सिघरी कुली पानियो - मानियो, ल्हालो साली, चार चोर अर डूम, राजा रै च्यार कान, जाट अर काजी, गुड़ मिठड़ी, घटाउड़ो, रोही री रीछ [निजी], लाफसड़ो बाऊ, पंच मारसां, लड़ाक पिंडत, पीरदानियें [निजी], जैसे अनेक कथानकों की हास्य रसात्मक बातें राजस्थान में विभिन्न ढंग से प्रचलित हैं। इनमें से कई बातें तो मानव के कलजे मे सीधो उतर जाती हैं और कई दिल दिमाग में भरी हुई चिन्ता को बड़ी तेजी से बाहर फेंक देती हैं। यह लोगों के हृदय को हिलाती हैं, उदासी मिटाती हैं और चित्त प्रसन्न कर देती हैं। इनके भी दो लघु नमूने लिख रहा हूं :

अ – एक डाकी जजमानां रै जास्यो। मारग मांय एक गांव आयो। सियाळै रा दिन अेक कुवें कनै रात बिताबण बैठग्यो। ठंड हुई डाकी कुवें री थळ कनै गोठड़ी बणग्यो। थोड़ी देर पछै सीळी बाळ बाजी। डाकी कांई करै। आपरी सारंगी थेळ कनै छोड़ नै थेळ रै मांय बड़ग्यो। अेक चोर आयो। सारंगी उठाय लीनी अर छोड़ उतार नै आडग्यो। रात बीती। दिन पै उगाळी होई। डाकी थेळ मांय सू निकळनै सूरजनारायण नै बोल्यो—

उग रै म्हारा सूरज मांय नां उग्यां उबरसी मोत

रात उग्यो हो अेक लपोड़ (चोर) लिगा री म्हारी सारंगी अर छोड़

आ – एक चमार आपरी सुगाई ल्यावण नै सासरै जास्यो। गरमी री जोर। लू चालै धरती तवै सी तपे। पण सासरी प्यारी घणो। चालतां चालतां सासरै रो गांव नेड़ो आयो। चमार कनै अेक तरवार ही। उवै मन मांय विचार करयो– तरवार रो के करस्यां ? पूछ आवता सग चालस्यो। मठै ही न्हकी देवां। ' आ बात विचार करकै अेक कुवें मांय तरवार नाख दीनी। अर सासरै मांय पूग्यो। तीन दिन मौज स्यूं रैयो। पछै सुगाई नै सागै लेयनै पूठो बावड़यो। गांव सूं निकळ नै कुवें कनै पूग्यो। तरवार री जगां अेक दरांती पड़ी। तरवार कोई उठायनै लेग्यो। अर दरांती मेल दीनी। चमार दरांती उठाय नै बोल्यो।

मेली ही म्हैं सीध सटाकळ बांकड़ बीकळ कुण करग्यो ?

धणी री बात सुणनै चमारी उपली बोल्यो —

थेट साड़ री पड़यो तावड़ो-कायो लोहो बीप्पळग्यो। '

सुगाई री बात सुणनै चमार पाछूतर दीन्यो –

बीपळग्यो सो बीपळग्यो पण पेट मैं लकड़ी कुण करग्यो।

अेकड़ चमार तरवार री जगां दरांती लेनै घरां आयो।

यहां लोक कथाओं का हास्य मुक्त अभिप्राय अध्ययन एवं मनोरंजन की महत्वपूर्ण सामग्री है। इस तरह कौतुक कुतूहलकारक की कथाएं भी हास्य से ओत प्रोत हैं।

११ चोर धाड़ेतियों की बातें— राजस्थान में शूर-वीरों के चरित्रों की विशेषता के साथ चोर-धाड़ेतियों की पटुता शक्ति की कहानियां भी अपनी कोटि की हैं। यहां सांपरिये चोर जैसे लोगों की प्रत्युत्पन्नमति, मनुष्य क्या देवताओं को भी

चक्कर में डाल देती है। खापरे चोर की बातों में राजा और देवी-देवता, दोनों उसके आगे हार मान लेते हैं। बातांश – खापरा एक रात को चोरी पर जाता है। राजा वेश बदल कर साथ हो लेता है। एक बनजारे का माल बड़ी चतुराई के साथ निकालकर साथ ही दोनों गाड़ते हैं। मगर वह धन दूसरे दिन खापरा अकेला ही निकाल लाता है। इस पर राजा उसको देवी के मंदिर मे बंद करवा देता है। चोर वहां से भी निकल आता है। देवी और राजा दोनों उसकी चतुराई की प्रशंसा करते हैं। इसी तरह लालजी पेमजी की चतुराई की बातें भी चलती है। ऐसी बातों की भी यहां बहुतायत है। चोर कथाओं में चार चोर सींघो-बीजो खातो-चोर, डम डमी चोर, मारमल चोर, डुकिया और चार, समझी और चार, चमार के घर चोर, बनिये के घर चोर, लाल गुरु के घर चोर आदि प्रसिद्ध कथानक हैं। इन बातों से ठगों की बातें बिल्कुल अलग हैं। उनके नाम निम्न प्रकार से हैं: एक चुगाई अर चार ठग, ब्राह्मण और ठग, छैल छैल की नगरी में बाई छल ठग, मामा भानजा, गफूरियो ठग, ठग और राजा, मूंछ मूंडो राजकी इत्यादि। उक्त चोर और ठगों की बातों की भांति यहां धाड़तियों की बातें भी सुनने-पढ़ने लायक हैं। इनमें डूला धाड़ी, दयाराम धाड़ी, बांभण और धाड़ी, धनपाल सिंह, मियां और मीणो, बनेसिंघ, डूंगजी-जवारजी, ऊदो पोकरणी, वजीर मल धाड़वी, जिमनजी धाड़वी, खादर बक्स धाड़ी, धाड़वी और सेठ, मेघजी चारण धाड़वी [निजी संग्रह] प्रभृति बातें बड़ी प्रचलित हैं। नीचे एक धाड़वी लोक गीत दे रहा हूँ –

बाजो ढोल्यो रे जिमजी लाडाणी
बम पोही मे तम्बू तणाया चोरां आगम दिखाई
चौपां में बाबा री खाल खोड़ा मेफल मंडाई
धाड़वां बलम्या री मावां भाई पोळ मीढ लगाई
सावीड़ा में हुकम कराओ धाड़ा करी चुकाई
गाय भरीवा बाव म बासी कूंठा करी लुंटाई
पड़वा मोवा पुर बळ राळी ऊंटा रेव चढ़ाई

प्राचीन साहित्य में तो ऐसी अनेक गीत कथाएं भी उपलब्ध होती हैं, जिनमें चोरों की चतुराई और वीरता की घटनाओं का प्रचुर उल्लेख है।

१२ प्रश्नोत्तर [बुझावल] बातें— अब हम प्रश्नोत्तर कहानियां लिख रहे हैं। ये कहानियां काफी हैं। मगर अपने पास स्थानाभाव है अतः इन्हें उदाहरण स्वरूप ही समझिये। इनमें शंका समाधान के विषय रहते हैं।

अ– अयोध्या में वीर केतु राजा था। उसके राज्य में एक रत्नदत्त सौदागर रहता था। राजा ने अपने राज्य में एक चोर को पकड़ा और उसे मृत्यु दंड का हुक्म सुना दिया। चोर को

प्रस्नात्मक कहानी का यह भेद बड़ा रंगीला है। इसमें एक निरीक्षण का तत्व महत्वपूर्ण होता है। इसका उदाहरण देखिये —

— गुरुजी ने दो लड़कों को पानी लेने भेजा और कहा — न ताल का लाना, न पाल का लाना कोई तीसरा ही जल लाना।

इस पर एक लड़का तो भौंचक्का सा खड़ा रहा। मगर दूसरे ने अपने ज्ञान और प्रकृति निरीक्षण के सहारे ओस का जल लाकर प्रस्तुत कर दिया जो ताल का था न पाल का।

राजस्थानी लोक कथा कहानियों में संतों महंतों की करामाती तथा चमत्कारिक कथाएं भी चलती हैं। ये धार्मिक एवं दैविक कहानियों में समाहित हैं। जैसे—नरसी भक्त, पूरणमल भक्त, मीरां बाई, जाम्भोजी, जसनाथजी, तपसी जाट, मूरख सूं महात्मा और सू साधू नाम की सत बातें हैं। इसके अतिरिक्त गुवाळियो राजा, राजा भोज की पन्द्रहवीं विद्या, भाणिकी विद्या, फूलां माळण, एसटकियो, कफोळ सस [निजी संग्रह म], जीवतो भूत, मड़ भूवो राजा, आंधियो पांगळियो [निजी संग्रह], बातां रा टका लाय जैसी नाना प्रकार की बातें भी बहुत हैं। जो उक्त प्रकारों में सम्मिलित की जा सकती हैं।

राजस्थानी लोक कथाओं के शीर्षक — संभवतः यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि *लोक कथाओं का नामकरण किस रूप में होता है।* वस्तुत प्रत्येक कथा को संकेत या शीर्षक रूप से पहिचानना एक महत्वपूर्ण आवश्यकता भी है। प्रत्येक कथा अपने प्रचलित रूप में अनजाने ही किसी न किसी शीर्षक को प्राप्त कर लेती है। राजस्थान की कथाओं के नामकरण मे *निम्नलिखित मुख्य प्रवृत्तियां काम* करती हैं

१ नायक के नाम पर आधारित शीर्षक यथा अमरसिंह, पाबूजी, तोडो, जगदेव पंवार आदि।

२ कथा के प्रमुख पात्र की जाति पर नामकरण यथा सुनार का पुत्र, बनिये का पुत्र, ढांभी की बात, चोरी की बात आदि।

३ कुछ कथाओं के शीर्षक कहावती रूप लिये होते हैं। ऐसी कथायें कहावतों पर आधारित हैं यथा यह धन गया लाली न लेहे, भलाई व्यथ नहीं जाती आदि।

४ व्रत कथाओं के शीर्षक मुख्यतया व्रत के नाम पर निर्मित होते हैं यथा आशा माता की बात।

५ जिन कथाओं में राजा या राजकुमार का नायक रूप में वर्णन होता है उन्हें राजा की बात या राजकुमार या राजकुमारी की बात कह दिया जाता

है। अधिक कथायें इसी सामान्य नामकरण के साथ प्रचलित रहती हैं।

६ कुछ कथाओं का गठन के आधार पर नामकरण होता है यथा चौबोली नामकरण के पीछे चार बार बालने की बात प्रमुख है।

७ प्रेम कथाओं के नामकरण म नायक-नायिका के नाम साथ रहते हैं। यहां एक विशेष तथ्य की ओर भी ध्यान अवश्य जाता है। राजस्थानी प्रेम कथाओं में पहिले नायक फिर नायिका का नाम आता है। यथा नागजी-नाग वन्ती, रिसालू नौपदे, रतनपाळ-जस्मादे, बींझा-सोरठ, जलाल-बूबना। इसके विपरीत यदि हम मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित कथाओं को देखें तो उनमें नायिका का नाम पहिले आता है यथा लैला-मजनू, हीर-रांझा, सोहनी-महिवाल आदि।

८. उद्धरणात्मक, उपदेशात्मक एवं नीति कथाओं क कहने में संपूर्ण तथ्य के उल्लेख के बाद ही कथा कही जाती है। यहां नामकरण में सांकेतिकता या शीर्षकत्व का आभास नहीं मिलता।

९ पशु पक्षियों की कथाओं के शीर्षक मुख्यतया पशु-पक्षी के नाम अथवा कहानी में आये हुए दो पात्रों (पशु-पक्षी) के संबंधों को लेकर रखे जाते हैं। यथा खरगोश की बात, हिरण की बात, चिड़ा चिड़ी की बात, सियार और लोमड़ी की बात आदि।

इन्हीं प्रमुख प्रवृत्तियों पर सामान्य-समाज कथाओं को विशिष्ट संज्ञाओं से अभिहित करते हैं। आजकल लोक कथाओं के प्रकाशित रूपों में जो शीर्षक हमें देखने को मिलते हैं, उनका निर्माण वस्तुत लेखक अपनी विवेकसम्मत बुद्धि से करता है। जन-समाज में मौखिक रूप से प्रचलित शीर्षकों में इतना वभिन्य नहीं हुआ करता।

राजस्थानी कथाओं का रचना तत्व

शास्त्रीय विवेचन के रूप में किसी भी कथा की रचना में हम इन सात तत्वों की खोज करते हैं — कथावस्तु, पात्र कथोपकथन, चरित्रचित्रण वातावरण शैली एवं उद्देश्य। राजस्थान की लोक कथाओं को इन शास्त्रीय कथा-तत्वों की दृष्टि से देखने का प्रयत्न करते हैं तो उनमें कथात्मक गठन, पात्र चयन चरित्रचित्रण और वातावरण के रूप में विशिष्टता दृष्टिगत होती है तथा कथोपकथन व शैली का लिखित रूप नहीं होने के कारण, उन्हें भिन्न रूप से समझना आवश्यक बन जाता है। कथा के उद्देश्य रूप में शास्त्रीय एवं लोक कथा के बीच विशेष अन्तर नहीं रहता।

सामान्यतया शास्त्रीय कथा साहित्य में कथावस्तु का विभाजन कहानी एवं उपन्यास के रूप में होता है। कहानी का आकार छोटा और उपन्यास का

आकार बड़ा होता है। आकार के कारण ही कहानी का क्षिप्र, संक्षिप्त ए
अपने लक्ष्य की ओर एकाग्रता से बढ़ना पड़ता है और चूंकि उपन्यास को अप
आकार की चिन्ता नहीं होती इसलिए वह मन्थर गति से कथा को अने
गहराइयों में पहुंचता हुआ एक पूर्ण समस्या के निदान के रूप में बढ़ता है। ठी
इसी दृष्टि से लोक कथाओं का दर्शन भी ज्ञात होता है कि आकार के साथ
दोनों प्रकार की कथायें प्राप्त होती हैं। कुछ कथायें बिल्कुल संक्षिप्त, क्षिप्र और
एकाग्रता लिये हुए हैं और कुछ कथायें निश्चय ही काफी कलेवर लिये हुये रहती
हैं। कथावस्तु के रूप में एक अन्य विभेद भी प्राप्त होता है जिसे हम प्रमुख
कथा एवं गौण कथा या प्रासंगिक कथा के रूप में जानते हैं। प्रमुख कथा उसे
कहते हैं जो प्रारंभ से अंत तक अपने विवेकपूर्ण विकास की गति से बढ़ती है
और प्रासंगिक कथा को कथात्मक अंश कहलाता है जो प्रमुख कथा के विकास
हेतु कथा में कहीं भी प्रारंभ होकर बीच में ही विलीन हो जाता है। यह प्रास
गिक कथा प्रमुख कथानक के लिए सहयोगी का कार्य तो अवश्य करती है लेकिन
प्रमुख कथा का आन्तरिक भाग नहीं होती। लोक कथाओं के कथानकों को
भली प्रकार देखने पर ये दोनों विभेद भी प्राप्त हो जाते हैं। कथानक के इस सत्य
को सामने रखने पर हम सहज ही एक बात को समझ सकते हैं कि जो बड़ी
आकार की कथायें हैं, उनका कलेवर मुख्यरूप से अनेक छोटी छोटी कथाओं
से [अभिप्राय रूप में] गुंथा हुआ है। वस्तुतः छोटी छोटी कथाओं के सुन्दर
पुष्पों को एक माला में पिरोने का प्रयत्न मिलता है। हमें अनेक ऐसी लोक कथायें
भी मिलती हैं जिनमें विशिष्ट प्रकार के अभिप्रायों को एक तर्कसंगत कथा में
जोड़ दिया गया है। राजस्थान की प्रसिद्ध लोक कथा चौबोली इसका महत्वपूर्ण
उदाहरण है। इस कथा में चार कथाओं का संकलन प्राप्त होता है और उन्हें
एक प्रमुख कथा-सूत्र में पिरोया गया है। इस कथा के विभिन्न कथानक भी
मिलते हैं। कहीं राजा भोज का नाम आता है तो कहीं एक सामान्य ठाकुर का
नाम भी है। इसी प्रकार चार भिन्न कथाओं में भी समान प्रकृति की विभिन्न
कथाओं के रूप भी आ जाते हैं।

लोक कथा के पात्रों की दुनिया में विश्व के सभी सजीव प्राणी व निर्जीव
तथ्य समाहित हो जाते हैं। मनुष्य के पात्रत्व के अलावा पशु-पक्षी एवं सरीसृप
वर्ग के सभी प्राणी, वनस्पति से पेड़ पौधे व बेल तथा कीट वर्ग से कीड़े, मकोड़े,
पतंगे आदि सभी जीवधारी प्राणी इनमें आ जाते हैं। इतना ही नहीं प्रकृति के
सभी बृहत्तर तथ्य यथा चन्द्र, सूर्य, तारे, समुद्र, वन, अग्नि, वायु भी पात्र के
रूप में लोक कथा के निर्माण में सहायता देते हुये मिलते हैं। पहाड़, नदी, नाले,
तालाब, पत्थर, सूने मकान, कुए, बावड़ी आदि निर्जीव पदार्थ भी कथा की

आत्मा में योसते हुए पात्र के रूप में प्राप्त हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त मनुष्य के विश्वासों एवं धारणाओं के कारण जो अलौकिक व्यक्तित्व से अलंकृत देवी-देवता या दस्य, डाकिन, स्यारी बनकर समाज के सामने आ गये हैं—वे भी पात्र-रूप में अपना योगदान प्रदान किया करते हैं। अत लोक कथा के पात्रों की इस दुनियां में कोई भी तथ्य नहीं बचता जो विश्व की निर्मिति में किसी न किसी रूप में सहायक सिद्ध हुआ हो।

लोक कथा के पात्रत्व में दो विशिष्टताओं की ओर ध्यान अवश्य आकर्षित होता है। प्रथम पात्र चाहे किसी सामाजिक वर्ग एवं प्राकृतिक सत्व से आया हुआ हो, वह हर रूप में मानवीय गुणों या अवगुणों से अलंकृत रहता है और द्वितीय हर पात्र सामान्य जन की मन स्थिति और व्यावहारिकता से पर नहीं होता। इन दोनों ही विशिष्टताओं की स्थापना के लिए लोक कथाओं के पात्रों ने अनेक बार प्रतीक शैली का सहारा भी लिया है।

लोक कथाओं के पात्रों के चरित्रचित्रण की दृष्टि से सीधे दो रूप हैं। एक चरित्र यदि अच्छा है, सद् है, कुशल है तो वह संपूर्ण कथा में अपने चरित्र की श्रेष्ठता को कायम रखता है। उसका कोई कार्य, कोई व्यवहार, कोई चारित्रिक अंश ऐसा नहीं होता जो सद् की सापेक्ष-मान्यता का खंडन करता हो। इसी प्रकार दूसरा चरित्र जो बुरा होगा, असद् होगा तो वह पूर्ण कथा में कुटिलता, प्रपंच और बुराई का ही कार्य करता रहेगा। लोक कथा के चरित्र चित्रण में अच्छाई और बुराई की यह स्पष्ट रेखा अवश्य अंकित रहा करती है। इन दोनों चारित्रिक विशेषताओं में विजय हमेशा सद् की बताई जाती है। लोक कथाओं के चरित्रचित्रण में हमें पात्र के अंतर्द्वंद्व के वर्णन नहीं होते। साहसी और वीर नायक निर्द्वंद्व रूप से पहाड़ों को पार कर लेता है, समुद्र में मार्ग बना लेता है और अलौकिक पात्रों को जीत लेता है। वह एकाकी ही जिस रूप में अपनी सत्ता को स्थापित करने में समर्थ बन जाता है, उसी सत्ता के प्रति श्रोता की ललक, जिज्ञासा और सहानुभूति बनी रहती है।

लोक कथाओं में वातावरण का मूल आधार स्थानीय विशेषताओं में निहित रहता है। वस्तुत लोक कथाओं की विश्वजनीनता में यदि उसे राष्ट्रीयता की सीमा में कोई तथ्य ला सकता है तो वह कथा का वातावरण ही है। राष्ट्र या प्रदेश की भौगोलिक व प्राकृतिक स्थिति ऐतिहासिक मान्यतायें, सांस्कृतिक उपलब्धियां एवं सामाजिक मानस के गठन के जो तत्व होते हैं वही तत्व लोक कथा को अपने विशिष्ट वातावरण में घुलामिला कर प्रस्तुत किया करते हैं। पात्रों के नाम, जाति, उनके रहने के स्थान, उनके व्यवहार, उनके पेशे और उनकी प्राकृतिक परिस्थितियां कथा के परिवेश को अपने ही वातावरण में प्रस्तुत किया

करती हैं। इसीलिए लोक कथाओं के अध्ययन में एक राष्ट्र या प्रदेश से अन्य राष्ट्र या प्रदेश की यात्रा पर विचार करना पड़ता है तो उसके वातावरण संबंधी तथ्यों के आवरण को हटाना आवश्यक बन जाता है।

शास्त्रीय कथा साहित्य में कथोपकथन एवं शैली की समस्या को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि कथा के लेखन में लेखक इन दो रूपों को अपनी वैयक्तिक विशिष्टता के रूप में अभिव्यक्त किया करता है। लोक कथा का मूल रूप लिखित नहीं होता। वह मुख्यतया मौखिक होता है, अतः उसमें कथोपकथन का सौन्दर्य और शैली का गुण सुनाने वाले की योग्यता पर निर्भर करता है। जहाँ तक कथा के कथन का प्रश्न है, लोक कथाकार निश्चय ही सपूर्ण कथा को कथोपकथन की प्रणाली द्वारा ही व्यक्त किया करता है। इन कथोपकथनों के सौन्दर्य से कहानी का कहा जाना सुन्दर व सुष्ठु बना करता है। लिखित कथाओं में जो निश्चितता होती है, उसका मौखिक कथा में अभाव रहता है। मौखिक कथाकार का सबसे बड़ा संबल ही कथोपकथन रहा करता है। कथोपकथन के माध्यम से वह चरित्र की विशिष्टताओं को दर्शाया करता है। ठीक यही तथ्य शैली को समझने के लिए काम का समझना चाहिये।

यहाँ शैली संबंधी एक विशिष्ट समस्या के प्रति भी कुछ सतर्क होकर सोचने की बात है। मौखिक रूप से कथा कहने वाला, किसी भी रूप में अपने व्यक्तित्व की छाप, कथा से नहीं हटा सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे लेखक अपनी सृजित कथा में अपने व्यक्तित्व से नहीं बच पाता। एक ही कथा को मौखिक रूप से दो कथाकारों से सुनने पर यह तथ्य एकदम स्पष्ट हो सकेगा। शैली को जानने के लिए यदि कोई भी महत्वपूर्ण बात है तो वह वस्तुतः रचित-वस्तु में व्यक्तित्व की विशिष्टता ही है। लोक कथा में व्यक्तित्व की विशिष्टता का अंश उसी व्यक्ति में निहित होता है जो कथा कहता है। कथा के कहने वाले की शैली में ही कथा का सौन्दर्य सन्निहित रहता है। इस दृष्टि से प्रत्येक लोक कथा, वह चाहे कितनी ही छोटी या बड़ी क्यों न हो उसमें पीढ़ियों से कहने वाले कथाकारों का व्यक्तित्व भी मिला हुआ प्राप्त होता है। किन्तु यहीं, यह प्रश्न भी उठ सकता है कि शैलीगत वैयक्तिकता के बावजूद भी लोक कथा का स्वरूप ज्यों का त्यों किस प्रकार रह जाता है? इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर मिल सकता है कि लोक कथा के घटनात्मक गठन में इतनी शक्ति होती है कि वह 'व्यक्तित्व' के तत्व को अपने पर हावी नहीं होने देती और अपने स्वरूप को सुरक्षित रख लेती है। किन्तु इस बात की स्वीकृति के बाद भी लोक कथा के कहने की शैली के महत्व को कम नहीं माना जा सकता।

कथा के तत्वों में अंतिम प्रश्न है—उद्देश्य का। लोक कथा का प्रारंभ,

सभ्य और भद्र मनुष्य की सद्‌वृत्तियों की खोज और स्थापना के लिए होता है और उसी उद्‌देश्य की परिपूर्ति उसका एक मात्र लक्ष्य रहा करता है।

लोक कथाओं में अभिप्राय — लोक कथाओं का कथात्मक कलेवर मुख्यतया विभिन्न अभिप्रायों से गठित रहता है। इसलिये अभिप्राय का अर्थ समझ लेना अनिवार्य होगा। अभिप्राय वस्तुतः उस घटना एवं कथात्मक तत्व का नाम है जो विभिन्न लोक कथाओं में, अपने ही रूप मे, निरंतर अथवा वारंवार आते हैं। लोक कथाओं की मौखिक परंपरा के साथ यह बात जुड़ी हुई है कि एक ही प्रकार की घटना अपने ठीक उसी रूप में बराबर पुनरावृत्त होती रहती है। इस पुनरावृत्ति का अर्थ यह नहीं होता कि समान अभिप्राय की पूर्ण कथायें एक ही प्रकार की हों। वस्तुतः एक ही प्रकार की घटना को विभिन्न कथाओं मे विभिन्न प्रकार से जोड़ दिया जाता है। एक ही कथा में अनेक अभिप्रायों का प्रयोग होता है और कुछ ऐसी छोटी कथायें भी हो सकती हैं जिनमें एक ही अभिप्राय का उपयोग मिलता हो। अभिप्राय से केवल इतना ही अर्थ संकेतित है कि विशिष्ट घटना का एक से अधिक कथा मे घटित होना।

यदि हम अभिप्राय को इस मान्यता की दृष्टि से संपूर्ण भारतीय एवं विश्व की लोक कथाओं में देखने का उपक्रम करें तो सहज ही ज्ञात हो जाता है कि 'अभिप्रायों' की रचना और उपयोग में लोक वाङ्मय विश्वजनीनता का पुष्ट प्रमाण है। अभिप्रायों के अध्ययन के साथ ही ज्ञात हो जाता है कि संपूर्ण विश्व के लोक कथा साहित्य में समान अभिप्रायों का निरंतर प्रयोग किया जा रहा है।

अभिप्रायों को समझने के साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मानक कथा [टेल टाईप] और अभिप्राय के अर्थ में भिन्नता है। टेल टाइप्स को समझने के लिए कथा को टुकड़े-टुकड़े में नहीं देखा जाता। वहां कथा के घटनात्मक गठन की एकता के आधार पर ही उनका वर्गीकरण किया जाता है। एक कथा का मानक रूप एक ही होगा किन्तु बहुत संभावना है कि उसी कथा में अनेकानेक अभिप्राय समाहित हों।

विश्व विख्यात लोक साहित्य के विद्वान स्टिथ थोमसन ने अभिप्रायों पर बृहद ग्रंथ की रचना की है और उन्होंने अभिप्रायों को विशिष्ट विषयों के अनुरूप संख्या एवं क्रम के अनुसार प्रकाशित किया है। लोक कथाओं के अध्येता अब मुख्यतया उन्हीं के वर्गीकरण के आधार पर अभिप्रायों की चर्चा किया करते हैं। टेल टाइप्स के सिलसिले में अंटी आर्ने का विशिष्ट योगदान है।

भारतीय साहित्य लोक कहानियों से भरपूर है। इस विषय में पुराण, उपनिषद्, जातक, कथासरित्सागर एवं कथा कोष आदि मुख्य ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों की लोक-कथाओं में मूल अभिप्राय बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं।

इनको कई श्रेणियां हो सकती हैं। अभिप्राय कथा का एक सजीव एवं मुख्य अंग है। इसे कथा की परिणति या गति भी कह डालें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। हिन्दी में इन तत्वों को अभिप्राय, मूल अभिप्राय, प्रेरक अभिप्राय आदि नामों से भी पुकारा जाता है। डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सर्वप्रथम हमारा ध्यान इनकी ओर आकर्षित किया था। यह कहानी की परमोदात्त भावनायें हैं।

पिछले कई वर्षों से पाश्चात्य विद्वान ब्लूम फील्ड, बेनिफी, टॉनी, पेंजर, आर्ने एवं थामसन आदि लोक साहित्य विद्वानों ने विश्व की लोक कथाओं का अध्ययन करके कुछ अभिप्राय [Motif] निश्चित किये हैं। अभिप्राय सब देशों की लोक-कथाओं में प्राय समान रूप से पाये जाते हैं। मोटेतौर पर ये दो प्रकार के होते हैं। एक लोक विश्वास पर आधारित और दूसरे कल्पित। राजस्थानी लोक-कथा महाभारतीय लोक-कथा का परिवर्तित रूप है। इन लोक कहानियों में ऐसे असख्य अलौकिक अभिप्राय प्रचलित हैं, जो प्राचीन कहानियों से आये हैं। ये मूल कथानक भी कहलाते हैं। इनमें अपना सर्व-सपन्न सामाजिक जीवन चित्रित है। मानव और समाज का अध्ययन कहानी की आत्मा से संलग्न है। अत भाषा-शास्त्र एव समाज-शास्त्र के अध्ययनार्थ राजस्थानी लोक कहानियों का बड़ा महत्व है। कथा अध्ययन के साथ मूल-अभिप्रायों का अध्ययन भी आव स्यक है। इनमें आया हुआ एक अभिप्राय अनेक लोक कथाओं से स्पष्ट होता है। कहानियों के एक जैसे तन्तुओं से उनके नाना भांति के स्वरूप सामने आते हैं। इसलिए मानव का स्वाभावगत अध्ययन लोक कहानियों के मूल अभिप्रायों के द्वारा संपन्न होता है। मानव जीवन के ये तत्व [मूल अभिप्राय] हमारे प्राचीन साहित्य से शृ खलित तथा सबंधित हैं। कई जगह इनको रूढ़ि या कथा - नक रूढ़ि भी कहा गया है। राजस्थानी लोक गीतों में अनेक वर्णनात्मक रूढ़ियां भी पाई जाती हैं। अंग्रेजी के मोटिफ शब्द के लिए कथानक रूढ़ि, मूल-अभि प्राय आदि शब्दों का प्रयोग होने लगा है। किन्तु मोटिफ के लिए 'प्ररूढ़ि' शब्द अधिक उपयुक्त है और यही शब्द प्रकृष्ट रूढ़ि तथा कथांकुर दोनो के अर्थ में व्यवहृत होना चाहिये। रूढ़ि और अभिप्राय का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। इनका कार्य लोक कथाओं के मर्म का उद्घाटन करना है। लोक कहानी की ही भांति मूल अभिप्राय भी सार्वभौमिकता के पक्ष में होते हैं। किसी एक अभिप्राय को लेकर हम उसकी चर्चा करते हैं तो पचासों कहानियों में वे हमें प्राप्त हो जाते हैं। अत यहां लोक कहानियों के कुछ मूल अभिप्रायों को प्रस्तुत किया जा रहा है

१ हाथी द्वारा राजा का निर्वाचन— राजस्थान की अनेक कथाओं में अभिशप्त राजकुमार या राजा को किसी अन्य राज्य में अपना आश्रय लेना पड़ता है। उन

यक्षों के नगर में राजा का चयन किया जाना होता है और हाथी के सूंड में माला डालकर घुमाया जाता है। यह घटना ही अभिप्राय कहलाती है।

२ लाखीनो दूहो— अनेक कथाओं में एक दोहे का बेचने व खरीदने का उल्लेख आता है। इस दोहे में कुछ सीख दी हुई होती है जो कथा का पात्र अपने जीवन में उतारता है और उससे लाभान्वित होता है। इस दोहे को 'लाखीणा दोहा' कहा जाता है। एक ऐसा ही दोहा है—

> बैठ बैठवी पाव ठोकरयी भिया मारग टाळ
> पहरो रतां सांची चीजो भाई रीस निवार

इसमें बैठे हुए सतकना बरतनो, पांव से चोट करके स्थान को देखना मार्ग में मिली अनजान स्त्री से बचकर निकलना, सच्चा पहरा देना और क्रोध को रोक कर काम करने के निर्देश दिये गये हैं। घटनाओं के क्रम में इन्हीं निर्देशों से पात्र सफलता को प्राप्त करता है।

३ विवाहार्थियों के भाग्य-पाश — इस अभिप्राय के अन्तर्गत लोककथाओं की वे कथायें आती हैं जहां नायिका किन्हीं शर्तों की परिपूर्ति के बाद विवाह को स्वीकार करती हैं। यदि शर्तों अथवा प्रश्नों का उत्तर सही नहीं बनता है तो विवाहार्थियों को कैद होना पड़ता है या मृत्यु को प्राप्त होना पड़ता है। ऐसी घटनाओं से अनुरंजित अनेक कथायें राजस्थान में प्रचलित हैं।

जादू की डोरी — इस अभिप्राय की घटना में किसी नायक के गले में डोरी बांधकर पक्षी बना लिया जाता है। डोरी के खुलते ही वह पुन: पुरुष बन जाया करता है।

हंसना और रोना—मृत्यु दंड या भय किसी कारण से पात्र अपनी मृत्यु की भावना पर रोता और हंसता है। इस रोने और हंसने का कारण पूछने पर विभिन्न प्रकार के उत्तर मिलते हैं। एक कथा में ठग के घर में एक व्यक्ति को ठग की पुत्री मारने के लिए पहुंचती है। वह व्यक्ति पहिले तो रोता है फिर हंसता है। उसे हंसते देखकर ठग की पुत्री पूछती है कि तुम मृत्यु को देखकर भी हंस क्यों रहे हो? वह उत्तर देता है कि पहिले तो मैं मृत्यु के भय से रोया था लेकिन फिर यह समझकर हंसने लगा कि तुम मुझे जिन लोगों के कहने से मार रही हो क्या वे तुम्हारे पाप के भागीदार बनेंगे? इस उत्तर को सुनकर वह ठग की पुत्री उसे जीवित छोड़ देती है। ठीक यही घटना विभिन्न रूपों में अन्य कथाओं में भी मिलती हैं।

६. अपने प्राणों को दूसरे स्थान या प्राणियों [पशु पक्षियों] में रखना—दैत्यों की कथाओं में हम देखते हैं कि उनके प्राण अवश्य ही किसी सुरक्षित स्थान अथवा

किसी पक्षी में सुरक्षित रहते हैं। नायक इन्हें मारने के लिए ऐसे गुप्त स्थान व प्राणी का प्राप्त करने या मारने का उपक्रम करता है और सफल होता है। अपने अनिष्ट की आशंका से प्राणों को अन्यत्र रखा जाना एक अभिप्राय माना गया है।

७ प्रेत रक्षार्थ लगाये गये पेड़ से जीवन एवं मृत्यु का संकेत – प्रेत की अनिष्टकारी क्रिया को व्यर्थ करने के लिये जादू-टोनों वाले संरक्षक पेड़ मनुष्य को सावधान करते हैं।

८ लौटने की प्रतिज्ञा – इसे हम सत्य प्रतिज्ञा भी कह सकते हैं। पुराण (स्कंद) और बौद्ध कथाओं में पशु पक्षी भी मानव वाणी म बात करते हैं। वे शुद्ध भाव से अपने वायदे के अनुसार शिकारी या व्याध के पास वापिस पहुंच जाते हैं।

९ रूप परिवर्तन – इसको लिंग परिवर्तन या योनि परिवर्तन भी कह सकते हैं। इनमें मनुष्य से पशु-पक्षी और पशु-पक्षियों से मनुष्य बन जाने संबंधी परिवर्तन ही सम्मिलित नहीं है अपितु स्त्री से पुरुष या पुरुष से स्त्री बन जाना भी सम्मिलित है। ऐसे अनेक अभिप्राय पुराण और लोक कथाओं में मिलते हैं। दुर्गा सप्तशती में महिषासुरवध और जैन-ग्रंथ कथा-कोष की धीरांगद और सुमित्र की कहानी म रूप परिवर्तन के उदाहरण प्राप्य हैं। रूप परिवर्तन यदि अल्पकालीन न रह कर स्थायीत्व ग्रहण करले तो उसे योनि परिवर्तन कहा जायेगा।

१० लिंग परिवर्तन–राजस्थानी लोक-कथाओं में लिंग परिवर्तन संबंधी अभिप्राय बहुत महत्वपूर्ण है। इसके अनेक रूप मिलते हैं। बैताल पच्चीसी, कथा-कोष, महाभारत (शिखंडी कथा और नारद कथा) आदि में भी इसके बहुत से उदाहरण प्राप्त हैं। राजस्थान के इस मूल अभिप्राय के कुछ निष्कर्ष देखिये–[क] तीर्थ या किसी सरोवर में नहाने से लिंग परिवर्तन होता है और कहीं नहीं भी होता है। जैसे–बन्दर बन्दरी की कथा। [ख] कहीं कहीं लिंग परिवर्तन वास्तविक न होकर बहाना मात्र होता है। जैसे – लड़की वीर वेष धारण करके वीरोचित कार्य करने में सफल होती है। [ग] कहीं शिखंडी की कथा की तरह लिंग परिवर्तन या विनिमय का स्वरूप धारण कर लेता है। [घ] धार्मिक कथाओं में किसी देवता के शाप से लिंग परिवर्तन होता है या किसी के शिक्षार्थ। यह मूल अभिप्राय विश्व भर के देशों म पाया जाता है।

११ होड़ अथवा स्पर्द्धा – दो व्यक्तियों में होड़ लग जाती है और आपस में एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश की जाती है। यह पारस्परिक स्पर्द्धा ही कथा को गति देती है। इस अभिप्राय को डांडा-मेड़ी कहा जाता है। श्री कन्हैयालाल

शास्त्र ने संयोग और वियोग की करामात वाले ढोला मेड़ी की कथा का वर्णन किया है। मेरे पास ऐसी अक्ल और भाग्य की होड़ (स्पर्द्धा) की कई कहानियां हैं। ये आपस में एक दूसरे से बढ़कर सिद्ध होना चाहते हैं। इनमें न्याय निर्वाह और सुख-सन्ताप की समाप्ति है। इनमें विशेष बात यह है कि अक्ल और भाग्य तथा संयोग-वियोग जैसे अमूर्त भावों को मूर्त (मानवीकरण) रूप दिया जाता है। अमूर्त का मूर्त द्वारा ग्रहण करना कठिन से सरल की ओर जाने की मनोवैज्ञानिक पद्धति है। कथा का स्तर सामान्य से ऊपर उठकर विशिष्टता के कारण पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है।

१३ असम्भव द्वारा असम्भव का निराकरण — कई लोक कथाएं ऐसी हैं जिसमें एक व्यक्ति किसी असम्भव क्रिया द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को ठगना चाहता है, किन्तु दूसरा व्यक्ति अन्य असंभव क्रिया के सहारे पहले का परास्त करने में सफल हो जाता है। कहीं कहीं इस कार्य में उसे तीसरे व्यक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। इनमें चूहों द्वारा लोहा, चील द्वारा कुंवर और बिल्ली द्वारा ऊंट को उड़ा ले जाने की आश्चर्यजनक बातें होती हैं।

> जाट कहै हे जाटणी, ई गांव में रहणो।
> ऊंट बिलाई ले गई हांजी हांजी कहणो॥

कूट वणिज जातक, पचतंत्र, कथासरित्सागर, जैन साहित्य एवं लोक कथाओं में ऐसी अमक घटनायें हैं। ठग और बुढ़िया सुनार व गुरुजी ब्राह्मण एवं जजमान को भी ऐसी ही कथाएं हैं।

> करता रै संग कीजियै सुण रै राजा मीत।
> चोलै नै घुण खायगियो, तो छोरो लेगी चील॥

आवश्यक चूर्णि में चतुर रोहक की कथा चतुराई भरी है। एक सेठ की लड़की की सगाई, गांव के पानी का प्रभाव, देवर-भौजाई सूतां री पाडा जणे, बदरिया रानी, सुहागण र बिल्ली रो जन्म, ठाकुर एवं जाट, राजपूत और तेली जाट और मियां आदि अनेक कथाओं में असम्भव द्वारा असम्भव का निराकरण मिलता है। इनमें नीति के मूल-अभिप्राय बुद्धि व्यवहार सहित चित्रित रहते हैं।

१४ हंस कुमारी — हंस कुमारी नामक मूल अभिप्राय से संबंधित अनेक लोक-कथाएं हैं। उनमें हंसगामिनी कुमारी का लावण्य, सुन्दर वेश, हाव भाव, अदा, पकड़ जाने का ढग, स्नान की महत्ता आदि सब बातें आकर्षण में वृद्धि करती हैं। कथा का नायक सरोवर में स्नान करती हुई अप्सराओं को देखता है और किसी एक के वस्त्र चुराकर उसे पत्नी के रूप में प्राप्त करना चाहता है। वह किसी शर्त पर तैयार होती है। शर्त तोड़ देने पर वह सुन्दरी अदृश्य हो जाती है। भारत

के प्राचीनतम वैदिक और पौराणिक साहित्य में इस प्रकृति के अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं। राजस्थानी लोक-कथाओं के प्रसग में हम धांधल और अप्सरा को निश्चय रूप से हंस कुमारी नामक अभिप्राय में लेते हैं। हम उस लोक वात का थोड़ा अंश उद्धृत करते हैं – " धांधलजी महेवे रहै। सुए उठे सूं अठे पाटण र तळाव आय उतरिया। अठे तळाव ऊपर अपछरा ऊतरै। ताहरां धांधलजी रौ डेरां थका अपछरावां ऊतरी। ताहरां धांधलजी अपछरावां देखने एक अपछरा नूं आपड़ राखी। ताहरा अपछरा बोली—कहि थ्हा राजपूत थे बुरी कीनी। मनै [अपछरा न] अपड़ी न हुती। तठ धांधलजी कही जु तू म्हारै घरवास रेव। तद अपछरा बोली—कहीं जे थां म्हारी पीछौ समाळियो तो हूं थासूं परीजाईस।

१५ सत्य क्रिया—यह एक महत्वपूर्ण अभिप्राय है। राजस्थानी लोक साहित्य में इसे किरिया धीज, दिव्य और दिव्य परीक्षा आदि नामों से जानते हैं। कथा को गति देने में यह प्रकृति अत्यन्त उपयोगी है। वेद-पुराणों की कथाओं के आधार पर राजस्थानी लोक-कथाओं में सेठ पुत्र वंशी और नवल सुनार की कथा सत्य क्रिया का उदाहरण है। इस कथा में सत्य क्रिया के द्वारा मारा हुआ सेठ पुत्र वंशी जीवित हो गया और उसने अपने लोभी मित्र को भी जीवित करवा लिया। यहां सत्य क्रिया नामक मूल-अभिप्राय सत्य की अप्रतिहत शक्ति का ज्वलन्त उद्घोष है।

१६ भाग्य लेख — राजस्थानी लोक में विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य का भाग्य मेहमाता [विधाता] स्वय अपने हाथ से जन्म के पश्चात छठी रात को उसके घर आकर लिखती है

> विधना रै हाथां लिख्या छठी रात रा अंक
> राई घटै नै तिल बधै रहू रै जीव निसंक

हमारे यहां इस विषय को स्पष्ट करने वाली अनेक बातें प्रचलित हैं। श्री मनोहर शर्मा ने एक साधू और उसके जाट सेवक की लोक कथा बड़े सुन्दर ढंग से लिखी है। राजपूत सरदार और ब्राह्मण पुत्र की चंवरी में मृत्यु नाम की कहानी भी भाग्य लेखों में सम्मिलित है।

बेमाता के लेख को होणी भावी, भाग्य, लक्ष्मी आदि कई नामों से चित्रित किया गया है। इन सबकी अलग अलग कहानियां हैं। यहां बेमाता को लोक-देवी के रूप में मान्यता प्राप्त है। अत भाग्य लेख अमिट माना जाता है। चतुराई, चरित्र बल एव उद्योग से भाग्य को बदल भी सकते हैं।

१७ भौजाई का ताना — राजस्थानी बातों में ऐसी अनगिनत कथाएं मिलती

है, जिसमें भौजाई के ताने को सुनकर देवर विवाह अथवा किसी साहसिक कार्य की सिद्धि के लिए घर से निकल पड़ता है। लोक-कथा में रतनसिंहजी को उनकी भौजाई अपनी बहिन विवाह देने की बात कहती है। रतनसिंह के आनाकानी करने पर भौजाई ने ताने के साथ कहा जान पड़ता है कि पूंगलगढ़ की पद्मनी पवफूला के साथ ही विवाह करेंगे। बीझ-बीजे की बात में बींजा की स्त्री अपने देवर बींझा को चितौड़ से घोड़ी लाने का ताना देती है। हिन्दी के कवि भूषण के विषय में भी ऐसी चर्चाएं हैं। यह अभिप्राय जीवन की यथार्थता पर अवलम्बित है और मनोवैज्ञानिक, प्रवृत्तियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। व्यंग मानव जीवन में बड़ा प्रेरणाप्रद होता है। व्यंग कसा जाता है, तब उसको निर्मूल करना ही पड़ता है।

१८. दृष्टि गर्भ — किसी पुरुष पर आकर्षित होकर देखने से गर्भाधान का वर्णन लोक-कथाओं में सर्वत्र मिलता है। मगर राजस्थानी लोक कथाओं में नारी किसी सर्प जैसे जीव पर आकर्षित हो जाती है। जिससे गर्भाधान होकर पुत्र रत्न की उत्पत्ति होती है। ऐसी लोक कथाओं को दृष्टि गर्भ नामक प्रकृति की पंक्ति में लिया जाता है। लोक कथाओं में दृष्टि गर्भ अभिप्राय का अंगीभूत अभिप्राय अमृत, साधु का दिया चिटिया और आम हैं।

१९. उपश्रवण — यह बहुत प्राचीन मूल अभिप्राय है। छान्दोग्य उपनिषद् के चतुर्थ अध्याय में राजा जानश्रुति और रैक्व के उपाख्यान में यह वर्णन मिलता है। राजस्थानी की अनेक लोक कथाएं इस अभिप्राय के संबंध में प्रचलित हैं। नदी में मुर्दा जा रहा था। उसकी जांघ में चार लालें थीं। जिसकी बात आधी रात के समय एक सियार ने पशु पक्षी की बोली जानने वाली एक कोक-शास्त्र पढ़ी साहूकार लड़की को सुनाई। उसीको एक बार एक कौए ने सूखे नीम वृक्ष के नीचे चार मोहरों के बर्तन बताये। जैसे मनुष्य पशु-पक्षियों की बोली जान लेते हैं। वैसे पक्षियों में भी बड़ी सूझ बूझ होती है।

> कोक पढ्योड़ी कामणी, कीवा सुगन विचार।
> सूकै नीम री जड़ां में नीचें धन है चार॥

ऐसी एक लोक कथा राजा भोज की भी है। राजा किसी जन्तु की बोली सुनकर हंसता है। रानी इस पर रूठ जाती है। तब उसको हंसने की बात बताने के लिए दोनों गंगा को चलते हैं। रास्ते में किसी शहर के पास एक बकरा अपनी बकरी की मांग को राजा भोज की बेवकूफी का उदाहरण देकर टालता है। राजा उन दोनों की बातें सुनकर वापस घर आ जाता है। ब्लूम फील्ड का विचार था कि मूल अभिप्रायों में उपश्रवण नामक अभिप्राय का स्थान उसकी सब शाखा

म्यता और महुमूल्यता के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहेगा।

२० यक्ष-यक्षिणि सिद्धि — वैदिक उपासना पद्धति के अनुसार जगह जगह देव स्थान बने और यक्षों की पूजा शुरू हुई। यक्षों को वीर और पीर भी कहा जाता है। राजा विक्रमादित्य और रिसालू के वीर वश में थे। वे उनसे कई असम्भव काम भी करवा लिया करते थे। श्री वासुदेव शरण अग्रवाल और डाक्टर आनन्दकुमार स्वामी ने यक्ष नामक तथ्य एवं मूर्तियों की खोज की है। कथाओं में ये लोक तत्व [अभिप्राय] खूब मिलते हैं। महाभारत में युधिष्ठिर यक्ष प्रश्नोत्तरी द्रष्टव्य है। इस विषय में राजस्थानी व्रत कथाएं और पुण्य कथाएं ध्यान देने योग्य हैं। यक्ष देव का स्थान किसी वृक्ष में माना जाता है। अत पीपल पथवारी सींची जाती है। नगर बसेरा नाम के नगर में घुसने से प्रथम वृक्ष पूजा की जाती है। — "नगर बसेरा जो करै सो नर भोग पाव, ताता मांडा लापसी देसी म्हारी माय माय न देसी मायसी देसी द्वारका री नाथ, बर्कों रा बास मीठा मीठा गास पावण नै सुख बास।' यक्ष क्रूर एवं स्वामी प्रकृति के भी माने गये हैं। लोगों को धन भी देते हैं। आधुनिक समय में पेड़ों में भूतों का मानना यक्ष प्रथा का ही पालन है। ये भूत लोगों के सिर चढ़ते हैं। यहां भूतों की भयकर प्रतिमाएं बनाई जाती हैं। भूत भी वश में होकर धन देते हैं। ऐसे धन देने वाले देवों में विनायक वृद्ध विनायक, क्षेत्रपाल हनुमान, भरुजी की कथाएं मिलती हैं। लोक कथाओं में यक्षिणि सिद्धि की बातें भी मिलती हैं। पदुमावत मे राघव चेतन्य को यक्षिणि सिद्धि का वरदान बताया गया है।

> राघौ' पूजा जाखिनि दूइज देखाबा सांज।
> पथ प्रथ मै जे चत हि ते मूसहि बनमांज॥

पिता का अपमान होने पर पंडित के प्रथम लड़के ने अमावस्या की रात को चन्द्रमा दिखा दिया। दूसरे ने कच्चे सूत के सहारे आकाश में जाकर अपने अलग अलग अंग गिराकर इन्द्रजालिक खेल दिखाया और तीसरे ने जल दृष्टि से राजा को प्रभावित किया। ये सब यक्ष सिद्धि के कार्य प्रसिद्ध हैं। याद करने पर ये यक्ष या वीर तुरन्त हाजिर होकर बड़े से बड़े कार्य को रात भर में पूरा कर देते हैं। अत राजस्थानी लोक कथाओं में यक्ष तत्व बड़ा रोचक है। यहां यक्ष भूतों और यक्षनियों की अनगिनत कथाएं हैं।

२१ सृष्टिकर्ता के शत्रु — दुर्गा सप्तशती की लोक कथाओं में इस मूल-अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। सृष्टिकर्ता के निद्रा मग्न होने पर शत्रु उपद्रव करने लगते हैं। यदि पौराणिक कथाओं का विश्लेषण किया गया तो उनमें लोक कथाओं के ऐसे अनेक मूल अभिप्राय उपलब्ध हो सकेंगे।

२२ कमल पूजा — राजस्थानी में कमल का अर्थ शीश [मस्तक] है। और यहां के साहित्य में कमल पूजा एक विशिष्ट अभिप्राय है। मुंहता नणसी री ख्यात का यह उदाहरण देखिये– 'तद बरसी माता री इच्छना मन में करी–म्हारै बाप रौ वैर बळ। गयन्द हाथ आव तौ हू कमल पूजा करन श्री मभियाणी नू माथो चढाऊ।" उक्त ख्यात में वीरों के कमल पूजा सबंधी अनेक प्रसग आते हैं। बगड़ेव पंवार की बात में, जगदेव कह्यौ — "जो म्हारौ माथौ रौ न मिपराव रौ ऊमर वधारौ तौ म्हारौ माथौ तैयार छै।" कमल पूजा अभिप्राय दक्षि पूजा का शाब्दिक रूपान्तर है। यहां इसका क्रियात्मक प्रयोग भी मिलता है।

कर केक कमळ धरै है कर अंक साहि कटारियां।
वधायूं वक है केहो हाथ हमीरियां॥

वीर हमीर अपना कमल (शीश) कहने पर एक हाथ में लेकर दूसरे हाथ कटारी चलाकर युद्ध को समाप्त कर देता है। राजस्थान में ऐसे योद्धा को जुम्झार के नाम से पुकारा जाता है जो बिना सिर की धड़ द्वारा पराक्रम काम किया करते हैं। ऐसा रूप पनिहारिने देखती हैं।

"बिना सिर रौ मोटयार लुगाई जाय देखौ हे भेणौं पणियारी तौ पाणी कावरी' [जन काव्य पृथ्वीराज सूरजां] मूल रूप कमल पूजा एक विशेष भावना का अभिप्राय है।

२३ पंप रा फूल— राजस्थानी लोक वार्ता में वर्णित पंप के फूलों का अभिप्राय पारिजात के फूलों से है जिनको पा लेना एक कठिन कार्य है। फिर भी नायक घर से निकलता है और अनेक कष्ट उठाकर भी इस काय में सफल होता है।

२४ भलाई व्यर्थ नहीं जाती— इसमें शंख डफोल और सर्पों की लोक-वार्ते हैं। क्षमा, कछुआ और सर्प अपना उपकार करने वालों का उपकार करते हैं।

२५ नटो तो कहो मत — पशु पक्षियों की भाषा को समझना भी एक अत्यन्त औत्सुक्यवर्धक मूल अभिप्राय है। इसमें भेद की बातें होती हैं। भेद रखने की कठिनाई और उसको प्रकट करने का खतरा। संक्षेप में इस अभिप्राय का नाम नटो तो कहो मत हो सकता है। अरू यार नटिनै कहियां थांरो मरण हुसी। यह अभिप्राय इटली की लोक कथाओं में भी पाया जाता है। और घर पुत्रक बालक व महाकोसळ में भी मिलता है। राजस्थानी की लोकाली कथा को इस मूल अभिप्राय में नई परिणिति दी गई है। इसके साथ कई गौण अभिप्राय भी आये हैं। जैसे १ पशु-पक्षियों की भाषा एवं मन्त्रहर्षी विद्या २ मौन धारण तथा मौन भंग ३ विवाहार्थी मागपाश ४ प्राण प्रतीक ५ निषिद्ध फल ६ मृत्यु पत्र ७ बाकछल। डॉक्टर सहल ने नटो तो कहो मत' नाम से

एक पुस्तक लिखी है। राजस्थानी लोक कथाओं में इस मूल अभिप्राय का प्रयोग बहुत होता है। परम्परित कथाओं में बार बार आवृत होने वाले सरल प्रत्यय भी मूल अभिप्रायों का स्वरूप धारण कर सकते हैं। जैसे—फूला - मालिन, ठग ठगनियां, परियां, जादूगरनियां, दैत्य दानव, सौतली मां आदि मूल अभिप्राय कहे जा सकते हैं। इनके अलावा पूर्ण खोज करने पर निम्नलिखित मूल अभिप्राय और मिलते हैं। १ सदाव्रत बिछुड़े हुए लोगों को मिलाने वाले स्थान २ राम घाटे से सहायता लेना ३ मृतक का पानी या अमृत के छींटों से जीवित करना ४ निपुत्रों का मुंह न देखना ५ आंखें निकलवाना या घानी [कोल्हू में] डालकर पिसवा देना ६ योद्धा की जान सात समुद्र पार सिवड़े के तोते में होना ७ मनुष्य को पत्थर में परिवर्तित कर देना ८ मनुष्य को मक्खी बनाकर दीवाल के चिपका देना ९ काले कपड़ों से सुहाग देना १० चवरी के लिए अपनी तलवार भेजना ११ मातृ - वात्सल्य के वर्णन में स्तनों से दूध की धार निकलना १२ राजा का रात्रि पहरा देना १३ राजकुमारों के देसूटे १४ किसी को तेल में तलकर खाना १५ रानियों का किसी वस्तु के लिए शकुन त्याग १६ अंगूठी पहचान १७ जादू की कढ़ाई १८ परकाय प्रवेश १९ स्वप्न के बीच जगा लेना २० मनुष्य की आंखें न निकालकर हरिण की निकालना। श्री मनोहर शर्मा ने लोक गीतों में भी कुछ मुख्य एवं वर्णात्मक रूढ़ियों की खोज की है। राजस्थानी लोक गीतों में बहुत सी लोक रूढ़ियां प्रयुक्त होती हैं। जैसे १ सरोवर गमन रूढ़ि [पणिहारी, काछबो, नटड़ो और तुलसी गीत साथा गीत, चन्द्रावली मुरली झूमादे रतनादे री वेल और जापे आदि के गीत] २ दाम्पत्य जीवन के प्रतीक वृक्ष—पीपळी मेंहदी नीमड़ली अड़लो, निम्बूड़ो ' मरवो केवड़ो वधावे आदि गीत हैं। दाम्पत्य पल्लवित, पुष्पित एवं शीतल वृक्ष के समान ही है। ३ पुरुष वेष की वर्णात्मक रूढ़ि—इसमें घूमी हुरजस, बनड़ो में सवारी विषयक रूढ़ि वर्णनात्मक रूढ़ि के गीत हैं। इसमें नारी के रूप और वेष वर्णन की रूढ़ियां हैं। ४ ओलंग रूढ़ि [प्रवास अथवा प्रवास की सेवा] ऊमादे, लखपत गीत ५ मार्ग वर्णन रूढ़ि कलाळी जंवाई के गीत—इसमें रात वासौ, [ठहराव] आतिथ्य गृहस्थ संपन्नता, यथावा देश के मुख्य स्थान, मुख्य जातियों आदि के विषय में वर्णनात्मक रूढ़ियां प्रचलित हैं।

५

लोक कहावतें

कहावतों की संक्षिप्त पृष्ठभूमि — कहावत कुछ शब्दों का समूह है जो विशिष्ट
अभिलषित अर्थ की व्यंजना के लिए जन-सामान्य द्वारा प्रयोग में लिया जाता है।
उन शब्दों से प्राप्य अभिधार्थ सहज दिखता हो, किन्तु प्रसंगानुकूल उनकी व्यंजना
किसी सामाजिक रूप से अनुभूत सत्य को व्यक्त करती है। इसी बात को दूसरी
तरह से व्यक्त करें तो कह सकते हैं कि वस्तुत कहावत स्वयं 'एक शब्द' है
जो विशिष्ट अर्थ-व्यंजना को अपने में समाविष्ट किये हुए है और सामाजिक
व्यक्ति उसी प्रचलन के कारण ठीक उसी अर्थ को ग्रहण कर लेता है। सूक्तियों
के इस प्रचलन के पीछे सामाजिक अनुभव की अचेतन सत्ता कार्य करती है। विभिन्न
कार्यों के दौरान में, घटनाओं में, प्रकृति के कार्य-व्यापारों में, पशु-पक्षियों के
व्यवहारों में और मानसिक उद्वेलन की स्थितियों में सादृश्यता या विरोध मूल-
कता शाब्दिक श्लेष या शब्द-वैचित्र्य प्रास या तुक की कल्पना से अनुभूत
सत्य तिक्त वाक्य या पद में निर्मित हो जाता है। निश्चय है कि इस प्रवृत्ति का
जन्म वाणी या भाषा के साथ ही हो गया होगा और मनुष्य के विकास के क्रम
में उसने नित नवीनता ग्रहण की होगी।

भारतीय वाङ्मय में वेदों की प्राचीनता असंदिग्ध है और उसी काल
उपकाल में हमें सूक्तियों की प्रथम किरणें मिलने लग जाती हैं। ऋग्वेद एवं
अथर्ववेद के कितने ही पूर्ण या अर्ध श्लोक अथवा पाद या अर्धपाद में हमें अपनी
कहावतों का उद्गम मिलना प्रारम्भ हो जाता है।

१ वेदों की कहावतें—वैदिक कहावत प्राचीन समय से लेकर अभी तक कोई
वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हुआ है। इस... आधार पर प्रथम एक नीति-मंजरी
नामक ग्रंथ उपलब्ध है। इसमें आठ अध्याय और दो सौ श्लोक हैं। श्लोक के
पूर्वार्द्ध में कोई सूक्ति या कहावत है और उत्तरार्द्ध में ऋग्वेद की कथा का स्पष्टी
करण है। उदाहरणार्थ नीति मंजरी का केवल एक श्लोक उद्धृत कर रहा हूँ —

सत्यविहारि संसारे मूढो भवति मोदन ।
तस्या सरमायासविज्यम नवो वदे ॥

ब्राह्मण ग्रंथों में भी अनेक कहावती उक्तियां मिलती हैं। उनमें आने वाली मूक्तियां और सुभाषित शब्द कहावत या लोकोक्ति के ही रूप मालूम होते हैं। "पुरुषों यभूत्या पञ्चया वपनि' सूक्ति का राजस्थानी का काला मग बरसत स और ' मधुरें सत्यम्" का आम्यां देनी परसुराम बद न मूरो हाव स मिलादेवे। जनसाधारण में जस लोकोक्ति का प्रचलन है विद्वानों में वैसे ही प्रायोक्तियां चलती हैं। उपनिषदों में तम लौकिक न्याय, कहावती उपमाएं, कहावती वेशभूषा आभाणक और निदर्शन आदि अनेक वाक्य प्रयोग में आते हैं। ये सब प्राचीन की उक्तियां हैं जो न्याय, दृष्टान्त उदाहरणादि के व्यवहारिक प्रयोगों में लाए सामान्य के योग्य अपनानी पड़ती हैं।

२ महाभारत - रामायण की कहावतें — रामायण में अनेक लोकोक्तियां हैं, जो प्रवाद के रूप द्वारा हमारी दृष्टि में आती हैं। वेदों के बाद आदि कवि वाल्मीकि की रामायण का ही सांस्कृतिक सम्मान है। रामायण, महाभारत और मान वाशिष्ठ को हमारे इतिवृतात्मक साहित्य के सिरताज हैं। पुरानी कहावतों की चर्चा भी इन्ही वर्ग में सम्मिलित होती है। पुराण व्यवहारिक सामाजिक एवं नीति ग्रंथ हैं। उनमें जीवन के साथ अंग प्रसंगों से सबंध रखने वाली सूक्तियां भरी पड़ी हैं। ये सूक्तियां एक प्रकार की कहावतें ही हैं। सूक्तियां आदम मानव के नैतिक नियम हैं। ऐसी सूक्तियों और लौकिक प्रवादों से रामायण भरा पूरा है।

रामायण में एक सूक्ति आई है गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला इव तोयदा। इसी उक्ति के साथ ही यदि हम राजस्थानी की कहावत को साम्य दर्शाने के लिए लायें तो वह होगी — गाज सो बरस नहीं।

रामायण की अन्य उक्ति है

यथा छित्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत्तु कः ।
यश्चैनं पयसा सिञ्चे नैवास्य मधुरो भवेत् ॥

इसी प्रसंग में राजस्थानी की कहावत दृष्टव्य है

नींव न मीठा होय सींचो गुड़ घीव सूं ॥
ज्यांरा पड़या सुभाव के जासी जीव सूं ।

महाभारत भारतीय संस्कृति का है। इसमें मानव जीवन की अनेकानेक कहावतें उपलब्ध होती हैं। इसमें सूक्तियों और लोकोक्तियों का संपूर्ण अनुशीलन दुस्साहस है। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। ' सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम्। ' अर्थात् हर मनुष्य अपने आपको बुद्धिमान मानता

है। राजस्थानी में इस आशय की कहावत, पराय धन री अर आपरी अकल री के सेठी, द्रष्टव्य है।

योग वाशिष्ठ में भी सूक्तियां और कहावतें बहुत हैं। "यावत्तिलम् तथा तलम्" कहावत के बराबर हमारी 'तेल तिलां सूं नीकळे' की कहावत मिलायी जा सकती है।

"जेष्ठ पितृसमो भ्राता-" बड़ा भाई पिता तुल्य, यह पौराणिक उक्ति है। इसके समकक्ष राजस्थानी में भी प्रचलित है। "आहरे न कारे कण्या सोहारे" के भावार्थ की सस्कृत सूक्ति पुराणों में मिलती है। "आहारे व्यवहारे च त्यक्त-लज्ज सुखी भवेत्।" इनके सिवाय स्मृतियों की कहावतो, नीति वाङ्मय, चाणक्य नीति अर्थशास्त्र, सुभाषितरत्नाभाण्डागार, सस्कृत काव्यों में प्रयुक्त कहावतों, पाली भाषा [जातक] की कहावतों प्राकृत की कहावतों, अपभ्र स की कहावतों आदि से भारतीय कहावत कोश समृद्ध बना है। भारतीय आधुनिक भाषाओं के प्रख्यात व अज्ञात कवियों के दोहे पक्तियां, चौपाइयां, कवित्त आदि भी लोक प्रिय होकर कहावतें बन गई हैं। विदेशी कहावतों का इतिहास और उनका आपसी तुलनात्मक अध्ययन भी मानव विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। इनका विशेषाध्ययन अत्यावश्यक है।

कहावतों की गरिमा और परिभाषा — भाषा तथा साहित्य लिखने या बोलने में सौन्दर्य और सौष्ठव लाने के लिये कहावतो का व्यवहार सदा से प्रचलित है। ये साहित्य को सलोना बनाती हैं। इनसे भाषा भी सजीव और स्फूर्तिदायक बनती है। इनका प्रयोग करने वालों का तत्काल एक परपरित सूझ-बूझ मिल जाती है। वे जानते हैं कि इस प्रकार की घटना पहले भी घट चुकी है। जिससे लोगों को पूर्ण हिलकर बल मिलता चलता है और उसी स्थिति के प्रत्यक्षानुभव पर वे अपने विचारों को प्रकट करते आये हैं।

(कहावतों को शिक्षित और अशिक्षित सभी लोग समय समय पर काम में लेते रहते हैं।) मनुष्य जीवन की समस्याएं ही कहावतों को पैदा करती हैं। मानव की असंख्य उलझनात्मक परिस्थितियों का सग्रह ही तो जीवन है। अत इनकी प्राय पृष्ठभूमि घटना परक होती है और जटिल उलझनें, पक्का ज्ञान तथा जीवन ससार के बड़े बड़े प्रश्न जब चुकीले छोटे एवं आकर्षक वाक्यों द्वारा निसृत होते हैं तो प्रवादों की उत्पत्ति होती है। कहावतों का जनक कोई एक व्यक्ति नहीं हो सकता। कहावत एक विस्तृत जन-समूह रूपी जननी की कोख से जन्म लेती है। अत यह एक केवल कथन है एक उक्ति है। लोग अपनी प्रिय उक्ति बनाकर ही उसका नाम लोकोक्ति रखते हैं। जनता-जनार्दन के अनुभव वचन, विशद वाक्य विलक्षणोक्ति बनकर पटुता से पोषित होकर

लोकोक्ति कहलाते हैं।

बड़े बड़े महात्माओं ने अपने उपदेश एवं व्याख्यान के समय कहावतों को काम में ली हैं। योरोप आदि देशों की शिक्षण पद्धति में भी लोकोक्तियों व कहावतों का उपयोग किया जाता है। जापान जैसे देशों में तो खेलों तक में कहावतों का प्रयोग होता है। भाषा विज्ञान अभ्यसाओं के लिए भी कहावतें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा सामाजिक जीवन, पुराने रीति-रिवाज, नक्षत्र विद्या आदि का ज्ञान होता है। जाति विज्ञान एवं संस्कृति के विद्वान भी कहावतों और मुहावरों को श्रमिक जनता की सामाजिक तथा ऐतिहासिक अनुभूतियों के संक्षिप्त रूप बताते हैं। भाषा की सुन्दरता, सरलता तथा प्रभावशालीनता का बहुत बड़ा श्रेय कहावतों को है। इनमें गागर में सागर भर देने की क्षमता प्रसिद्ध है। डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकोक्ति साहित्य का महत्व बताते हुए लिखा है कि 'लोकोक्तियां मानवी विज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनंत काल तक धातुओं को तपा कर सूर्य रश्मि नाना प्रकार के रत्नों उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं। जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।'

विश्व के स्थल भाग पर जितने भी देश और जातियां हैं, सभी कहावतों के कायल हैं। दुनियादारी के आपसी सभी सुन्दर कार्य और साधारण सूझबूझ का ज्ञान इन कहावतों में मिलता है। ये मनुष्य प्रकृति और सभ्य मिलनसारी के माप तौल वाले पूर्वजों से प्रदत्त बाट-बटखोरे हैं जो हर समय हमारे जीवन कारबार में काम आते हैं। लोक-जीवन के ये सफल वाक्य, हंसी-खुशी और आनन्द उत्साह के फव्वारे हैं मगर कभी अगतिशील नहीं रहते। क्या घर और क्या बाहर? मानव जीवन का संपूर्ण पथ प्रदर्शन करना ही कहावतों का कर्तव्य है। लोग समाज में किस सभ्य व्यवहार से मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन सुखमय हो सकता है? कहावतों में इनके उपदेशात्मक उदाहरण मिलते हैं। मनुष्य ठोकर खाता है। मगर कहावतों की सच्ची शिक्षा से वह बच भी सकता है। इनमें न धोखा धड़ी है और न अन्याय! ये तीखे तीर की भांति हमारे हृदय में बैठ जाती हैं। बड़े बड़े तार्किक वकीलों से भी हम लोकोक्तियों द्वारा विजय प्राप्त कर सकते हैं। इन सारगर्भित कहावतों के सामने कई बार पंडितों को भी मात खा जाना पड़ता है। इस साहित्य में नीति तो होती है, ग्रामीणता के दर्शन भी इसमें होते हैं। ऐसी ज्ञान एवं नीति-न्याय की कहावतों से राजस्थानी भाषा तथा साहित्य समृद्ध तथा संपन्न है। यहां की कथा कहानियों में लोकोक्तियों की सजावट दर्शनीय है। कुछ धर्म शास्त्रों में तो लोकोक्तियों को अपने व्यवहार

का अलंकार ही मान लिया है ।

साधारण जिन्दगी में कहावतों का स्थान महत्त्वपूर्ण एवं सम्माननीय है । ग्रामीण लोक में ये गीता रामायण की गरज सारती हैं । एक पंडित जैसे अपनी बात पुष्ट करने के लिए वेद शास्त्रों के श्लोकों से उदाहरण देता है, वैसे ही एक जन साधारण कहावतें कहकर अपनी बातें पक्की करता है । कहावतों में राष्ट्र या समाज की संगृहीत ज्ञान राशि लोक मुखासीन रहती है, तभी तो किसी ने इनको मानव जाति के अलिखित कानून बताया है । डॉ सहल की राय में अपनी कथा पुष्टि हेतु उपदेश, उपालम्भ, व्यंग, चेतावनी आदि देने के समय किसी घटना की आड़ में जो सारगर्भित और प्रसिद्ध उक्ति को काम में लेते हैं, उसे कहावत कहा जाता है । राजस्थानी में इनका सारगर्भत्व संक्षिप्तता नुकीलापन, उक्ति वैचित्र्य, सार्थकता, चटपटापन, सुकुमारता आदि अनेक शक्तियों में हैं । इनके समान प्राचीन और अर्वाचीन कवियों की सूक्तियां भी कहावतों का स्थान ले सकती हैं । इनसे देश जाति के विचार, रीति - रिवाज, सामाजिक - संगठन, सदाचार, शिष्टता, नैतिक आदर्श आदि सभ्य भाव जागृत होते हैं ।

विश्व के विद्वानों ने कहावतों की अनेक परिभाषाएं की हैं ।

१ एक की सूझ जिसमें अनेकों का चातुर्य सन्निहित है । — लार्ड रसेल

२ जनता में निरन्तर व्यवहृत होने वाले छोटे छोटे वचन । — जॉनसन

३ जनता में प्रचलित कोई छोटा सा सारगर्भित वचन अनुभव अथवा निरीक्षण निश्चित या सबको ज्ञात किसी सत्य को प्रकट करने वाली कोई संक्षिप्त उक्ति ।
— आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी

४ लोक साहित्य का एक प्रकार जो साधारण घरेलू वाक्यों के रूप में जीवन की तीक्ष्ण आलोचना करे । — ब्रिटिश विश्व कोष

५ कहावत ज्ञानी जनों की उक्तियों का निचोड़ है । — बाइबिल

६ कहावतें वे प्रसिद्ध और सुप्रयुक्त उक्तियां हैं जिनकी विलक्षण ढंग से रचना हुई हो । — इरेस्मस

७ कहावतें वे संक्षिप्त वाक्य हैं जिनमें सूत्रों की तरह आदिम पुरुषों ने अपनी अनुभूतियों को भर दिया । — ऐग्रिकोला

८ कहावतें वे छोटे छोटे वाक्य हैं जो जीवन के दीर्घ कालीन अनुभवों को अन्तर्हित किये हुए हैं । — सर्वेंटीस

९ कहावतें वे रत्न हैं जो पांच शब्द लम्बे होते हैं और जो अनन्त काल की अंगुली पर सदा जगमगाते हैं । — टैनीसन

१० कहावतें ज्ञान के संक्षेपीकरण हैं । — जूबर्ट

११ संक्षिप्त और प्रयोग के उपयुक्त होने के कारण विध्वंस और विनाश से बचे हुए अवशेष को कहावत की संज्ञा दी गई है । — अरस्तु

१२ एक विद्वान ने संक्षिप्तता तथा सारगर्भितता और सप्राणता कहावत को

तीन अनिवार्य तत्वों के रूप में ग्रहण किया है। — अज्ञात

१३ व्यावहारिक जीवन में मार्ग दर्शक वचन। — फीरम्जे

१४ वे वचन जो प्रमाण हैं, जिनके निर्माता का पता नहीं। — ट्रेंच।

विश्व में मिस्र, बेबीलोन आदि के नीति व बुद्धिमूलक साहित्य का प्रभाव बाइबिल आदि ग्रंथों पर स्पष्ट है। चीन, स्पार्टा, इंग्लैंड आदि देशों की कहावतें भी भारत के समान ही प्राचीन हैं। सैंट जेरोम ने अपनी कृतियों में चौथी शताब्दी में कहावती प्रयोग किये हैं। जगत प्रसिद्ध शेक्सपीयर ने अपने नाटकों के शीर्षक ही कहावतों के रूप में रखे हैं। स्पेन के उपन्यासकार सर्वेंटीज, सर्टिन के कवि प्लेटो, फ्रांस के दा सगर रावले व फान्तेन तथा पुश्कर ने कहावतों का भारी प्रयोग किया है। सर वाल्टर स्कॉट ने भी अपने उपन्यासों में लोकोक्तियों को अपनाया है। हिन्दी में बाबू भारतेन्दु, उपन्यास सम्राट प्रेमचंद, महाकवि जयशंकर प्रसाद ने अपने लोकप्रिय ग्रंथों में कहावतों का प्रयोग किया है। भारतीय विद्वानों ने भी लोकोक्तियों को परखा है उसे भी पढ़िये

१ मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र घनीभूत रत्न।
— डा. वासुदेव शरण अग्रवाल

२ लोकोक्तियाँ अनुभूत ज्ञान की निधि हैं। — डा. उदयनारायण तिवारी

३ लोकोक्ति सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य बुद्धि का निदर्शन है।
— प्रोफेसर कन्हैयालाल सहल

४ लोकोक्ति वह लोकाभिव्यक्ति है जो ईमानदारी के साथ लोक के अनुभव से लेकर कही गई है। — डा. शंकरलाल यादव

५ किसी सज्जन ने कहावतों को नीतिवाक्य की बीजगणित बताया है।
— पीपल आफ इंडिया, रिजले

६ कहावतें हमारे देश की निधि हैं जो प्राचीन महानता की परिचायक हैं।
— भारतीय कृषि कहावतें विषय प्रवेश — लेखक रामेश्वर अशान्त

डाक्टर कन्हैयालाल सहल ने राजस्थानी कहावतों के अध्ययन में बहुत सी प्रसिद्ध परिभाषाओं के साथ तटस्थ लक्षण, स्वरूप लक्षण, सम्य और विरोधाभास तथा निष्कर्ष नाम से कहावत की परिभाषा के पांच भेद किये हैं। अतः कहना पड़ता है कि कहावत वह लोकप्रिय पंक्ति है जो लोक जीवन के दैनिक कारोबार, सास-ससुर और प्रेम वार्तालाप आदि के चोखे चुभते आकर्षक नगीने हैं। इनकी प्रयोग पटुता से और ज्ञान गरिमा से मानव मान बढ़ता है ऐसी मेरी निजि धारणा है।

३ कहावत की व्युत्पत्ति और पर्याय — व्युत्पत्ति इस विषय में अभी मतैक्य नहीं है। मगर कुछ अनुमानित व्युत्पत्तियां प्रस्तुत की जाती हैं

१ डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल प्राकृत कहाए धातु से भाव वाचक संज्ञा

बनाने के लिए –त– प्रत्यय जोड़कर कहावत से कहावत बनी बताते हैं।

२ रामदहिन मिश्र कथावत से कहावत की व्युत्पत्ति मानते हैं।

३ कुछ लोग कथोद्घात, कथावत कथावस्तु से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। कह धातु के आगे अरबी आवत प्रत्यय लगाकर कहावत शब्द बना बताते हैं। कहाव के आगे–त–प्रत्यय लगाने से कहावत शब्द बन सकता है। कथापत्य कथापुत्र कहउत आदि अनुमानिक शब्दों से भी कहावत की व्युत्पत्ति हुई बताते हैं।

४ एक कहावत विषयक निबंध में कहावत का सरल अर्थ कह+आवत अर्थात् परंपरा से कही हुई आ रही हो वह बात कहावत।

५ ठाकुर कवि ने कहावत को कहनावति कहा है। हिन्दी शब्द सागर प्रथम भाग पृष्ठ ५१५ पर कहनावत शब्द भी कहना + आवत से उत्पन्न बताया है।

६ श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपनी बोल चाल रचना में कहनावति शब्द को अपनाया है।

कई सज्जन इसे कही हुई बात मानकर– जुग जासी पण बात न जासी–' का प्रमाण देते हैं। श्री तुलसीदासजी ने एसी स्थिति में बतक शब्द का प्रयोग किया है। डाक्टर सुनिति कुमार चाटुर्ज्या और मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने भी कहावत की पांडित्यपूर्ण व्युत्पत्ति लिखी है। नेपाली शब्द कोष में टर्नर ने इसका अनुमानित मूल रूप कथावार्ता बताया है। उन्होंने नेपाली कहावत, पंजाबी कहौत और सिंधी कहाल आदि शब्दों के साथ हिन्दी कहावत को लिखा है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन एवं मुनि जिनविजयजी के मत भी उपरोक्त पक्ष में मिलते हैं। डॉ बाबूराम सक्सेना अपने कहावती विवेचन में हिन्दी [कहावत] शब्द का अर्थ कथावार्ता से भिन्न बताते हैं। कहावतों को मालवी बोली में कैवात या कहणात कहते हैं। यदि हम इस [कहावत] शब्द की व्युत्पत्ति शब्द सादृश्य के आधार पर मानें तो लिखावट, सजावट, रुकावट सुनावट बनावट, रुकावट, पहुरावट मिलावट आदि शब्द कहावत के नजदीक पड़ते हैं। इस ढंग से राजस्थानी भाषा के कथनीय अर्थ में कई आज्ञार्थी शब्द कुवावट, हावट और कैवावट आदि काम में आते हैं। अत कहावत की व्युत्पत्ति के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कह देना संभव नहीं है।

४ कहावत के पर्याय शब्द — असंख्य विदेशी भाषाओं में प्रयुक्त कहावत के अनेक समानार्थी या पर्याय रूप मिलते हैं जिनकी तुलना करने से इसके अर्थ और उत्पत्ति पर पूर्ण प्रकाश पड़ सकता है। अत केवल भारतीय भाषाओं के प्रयुक्त शब्दों को ही आप विज्ञजनों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रथम हम अपनी सबसे समृद्ध एवं प्राचीन भाषा संस्कृत को ही आगे लाते हैं। इसमें कहावत के लिये कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं। विभिन्न ग्रंथों में कहावत के विभिन्न पर्याय रूप मिलते हैं। ब्राह्मण ग्रंथों की सूक्तियां और सुभाषित कहावत रूप में

गी भाषा म आत हैं। गोरानि, गोर प्रमा, परवा, आमाणक, लोकिकी गाथा, प्रवाणा आदि शब्दों का संस्कृत में सबन प्रयोग पाया जाता है। वग न ग्रन्थ, वाल्मीकि रामायण, कादम्बरी, बृहद् कथा और कथा सरित्सागर जैसे ग्रंथों में उक्त शब्दों का यथा अवसर प्रयोग हुए हैं। पाली भाषा के कवि समय सुन्दर ने सीताराम चौपाई में एक जगह कहावत के लिए आहोण शब्द का प्रयोग किया है। आहाणय, आहाण, अणाणय, किंवदन्ति और भाषित शब्द का व्यवहार भी पाली भाषा में पाया जाता है। अपभ्रंश भाषा में कहावत के अर्थ में-अभाणउ [आभाणक] शब्द व्यवहार में आया है। इस तरह से हमारी प्राचीन भाषाएं कहावत शब्द के प्रयोगों से परिपूर्ण हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में तो कहावत शब्द के पर्याप्त पर्यायवाची शब्द प्राप्त होते हैं। हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी में कहावत शब्द के पूर्ण रूप कहना वत कहाउत कहनूत उपखान, पखाना लोकोक्ति आदि कई शब्द उपलब्ध हैं। उर्दू में जरबुल मिसाल, सिंधी में अखाण कश्मीरी में दमातों और मिश्र भाषा [आसामी] में दग लम्बोर या लम्बरीम कहा जाता है। बंगला में परवाद वचन, प्रवचन लोकोक्ति प्रचलित वाक्य आदि शब्द कहावत के लिए काम में आते हैं। मराठी में म्हेण म्हैणणी आणा, आहाणा न्याय, लोकोक्ति जग कई शब्द कहावत के पर्यायवाची शब्द हैं। गुजराती में दृगव कहेयत, कहेनी, कथन, कहेणी और उखाणू नाम के पर्याय हैं। मालवी में कवात और राजस्थानी में कोम, कैवत, कुवावत कुवावट, ओखाणा आदि शब्द कहावत के पर्याय स्वरूप शब्द हैं। मद्राबी लमाणा की एक पुस्तक में इसको पखाणा बताया गया है।

२ कहावतों में व्यंग और विशेषताएं – राजस्थानी कहावतें बड़ी मूल्यवान हैं। ये नीति शास्त्र की भांति जीवन के समस्त कार्य-कलापों पर आधारित हैं। राजस्थान में बहुत से लोग विश्वास के साथ इन्हीं के अनुकरण पर कार्य करते हैं। कहावतों में मानव जीवन के व्यवहार की सत्यता प्रकट होती है। इसलिए कहावत हमारा मन मस्तिष्क अपनी ओर खींच लेती है। ये व्यवहार कुशलता की कुंजियां हैं। इन उक्तियों से किसी भी व्यक्ति की चेष्टाओं क्रियाओं और अन्तःकरण को तोला जा सकता है। सचमुच कहावतें सच्चे खरे खोटे को परखने वाली कसौटी हैं। कोई धूर्त आदमी जब ऊपरी सुन्दरता बनाकर लोक ठगने के प्रयत्न मे लगता है, तब हम भी अपनी कहावती बुद्धि से उसे पहचान जाते हैं और तुरन्त कह डालते हैं – 'लाम घूघटाळी लुगाई अर मुळकणियो मोटयार – बड़े खराब होते हैं। यदि कोई आदमी एकदम धर्म छोड़ देता है तो उसे रास्ते पर लाने के लिए मीमाणे वाले सेमड़े की कहावतोपाधि प्रदान की जाती है– 'मीमाणा सेमड़ो ऊग्यो, [एक धुमित कथा] – के सींगां बैठस्यां' लाक्षणिक ढंग से

बताया गया कि तुम्हारी बेइज्जती हो रही है। साथ में उत्तर भी दे दिया गया कि इसी में मजा है। कहावत नसीहत की कला है। इन कहावतों में मनुष्य की ऐसी निर्लज्ज मनोवृत्ति को सुलाने व छुड़ाने वाले अनेक उदाहरण मिलते हैं। किसी कसूरवार के कसूर को अन्य व्यक्ति के पीछे माफ करते हुए कहा जाता है — 'कुत्ता तरी कांप क तेरे भमी की'। कुत्ता तक कहकर लजाया जाता है और फिर कसूरवार के किसी संबंधी व्यक्ति पर एहसान करके माफ कर दिया जाता है, ताकि उस आदमी से फिर कभी कसूर होने की संभावना ही नहीं रहती। दूसरे अनुचित लाभ करने वाले पर तो बड़े व्यंग के साथ एक लज्जित करने वाली कहावत है। कहने वाला अपने ऊपर ही लेकर कहता है — म्हारी मां मोठी ही रूपी रै बरळे हांडी उठा लावती ' मोठी शब्द काकु वक्रोक्ति है। मां को चालाक बताया गया है। चालाकों की ऐसी और कहावत हम पाते हैं — ' इस्यो ही गुमानियों माळो जको भूखो मरा में आव। ' याने भगवानिया बड़ा चालाक है, वह भूखा मरे घराने कदापि नहीं आयेगा। कई स्थानों पर दूसरे के अधिक नुकसान के साथ अपने वैसे ही रंग रूप वाला नुकसान मिलाकर भोलापन प्रदर्शित करने की हास्यात्मक कहावतें कही जाती हैं। एक व्यक्ति अपनी भैंस मर जाने पर अफसोस व्यक्त करता है। तब दूसरा उसके साथ मिलकर कहता है— 'थारी म काळे मन सू लणियो कोनीं, म्हार ही आज डमायड़ियो [जल गर्म करने का लघु पात्र] फूटग्यो।' ऐसी दूसरी कहावत देखिये

भैंस मरी तो कांई हुवे, ओल ही मर जाय।
धणको बैठी कानियें मरी चिमम गुड जाय॥

लोक कहावतें गहरी चोट करने वाले अचूक व्यंग हैं। उनकी अप्रस्तुत योजना के अभिव्यंजनात्मक विधान से धायल श्रोता किसी को कहने तक का साहस नहीं कर सकता। ' उस उताई के बेटो बायो माळे पत्यो नाक कटायो। चपलता के ऊपर तीव्र बाण है। आगे कुछ और व्यंग देखिये

१ ठाकरां कठ बाबी ? के या ही कुत्ती नू कुवाई।
२ ठाकरां ठावा किसाक ? के कमजोर रा तो बैरी पड़पा हां!
३ टाबी क्यू ही ? के लाव हां। नोकर क्यू करो ? के मठ रा पूत हां।
४ सीतळा माता मोड़ी चाये ? के म्हे ही नवे गई।
५. बाबाजी कोपीन काई ? के ऐवे निर्लोक बाबा है।
६ पायो कोरी लकड़ी ? के बाबो कुत्ता।
७ मकोड़ी कै मो मुन री येली स्याऊ ? के कतदू कामी बैल।
८. मिनकणी में कोरी चार्य ? के फिरतो ले कार्ड।
९. धाराजी चाली तो बाण [पावर] भूखी चोर्ड ? कभा मैं ही कुवर पाळो, बाटी-चूटी मिळै। बोलयो — बाप म्हारो क्यारी है ? म्हे दर्या री भैस पावळा

[दूहा] देखूं मर र्म म्हानैं काटी बाबा का मूटकी लांक देवें ।

१० राजा रै तोता रा पामड़ा ? के , मुड रा हुवै तो ही तोता ।

११ बैठा बस्ता के बीस्सा ? न बस्ता न बिस्सा म्हे साव बाड़िया ! तो फिर पोता ? के , करवी पीता ! जीम बीना तो मनामी देतीसा ।

१२ कंवरजी भैंसा सूं उजरषा भोडल री भळको । बगळावा बोधै नहीं , बोलै तो बरको ।

वास्तविक ढंग से कहावतों में हम मूर्खों को निम्न पशुओं के नाम से सबोधित कर देते हैं । जैसे -- बकवादियों को -- ' मुसमां कुत्ता खाणा नहीं ' के संयत शब्दों द्वारा विवेचित किया जाता है । ऐसे ही गुणहीन व्यक्तियों की झूठी नाम वरी [प्रसिद्धि] को लक्षित करके एक कहावत कहते हैं -- ' कागां रै कायड़ी हुवै तो उडतां री दीसे ' अर्थात् -- कौओं के कच्छे पहने हुए होते तो उनके उड़ते समय सबको दिखाई देते । द्वितीय कहावत और देखिये जो पूर्व अवगुणों की द्योतक है । ' कांई कीनें परणाई ? के , बुगां नें ! कांई बुगां ही जोगी !

मानव मनोवृत्ति ऐसी होती है कि वह अपने आपको सदैव दूसरों से विशेष गुणवान समझता है और बढ़ बढ़कर बातें बनाया करता है । मानो विधाता ने उस व्यक्ति को जन्म से ही कान में फूंक मारकर इस लोक में भेजा हो कि तेरे जैसा निपुण एवं सगुण इस लोक में और किसी को ही नहीं बनाया है । अज्ञानी , अस्पष्ट और कमजोर आदमी जब अत्यंत अहं के साथ अपनी बहादुरी या प्रशंसा की डींग मारता है , तब उनके हीन भाव को प्रदर्शित करता हुआ दूसरा व्यक्ति इस तरह की [अधोलिखित] कहावतें कहता है ? ' धूण कब मर्‌यं ही सीर में घाली कोई बात हुई ? सीरा खराब घोड़ा ही करना है ।

२ ' राबड़ी केवै मन मढ़ै हुटै बरतो ' [अनुचित बात की खिल्ली बताना]

३ ' राबड़ी केवै मनै ई दांतां सूं खाओ ' इस तरह से झूठी गप्पें [डींग] हाकने वालों का उनकी महान कमजोरी दिखाकर निरुत्तर कर दिया जाता है । नहीं तो राबड़ी जैसे खट्टे एवं साधारण पदार्थ का विवाह के विशेष समय में उपयोग बताना ! साथ ही साथ उसके पतलापन और नर्मपन पर दांतों का प्रयोग करवाना विरोधाभास नहीं तो क्या है ?

' म्हांनें मीठी लाव राबड़ी जांग दांत लागै न बाबड़ी ।

मनोविज्ञान वालों ने स्वयं प्रशंसकों की इस कृति को हीन भाव कहकर विवेचन किया है ।

ग्रामीण लोग अपने वार्तालाप में कहावतों का विशेष उपयोग करके अपने कथन को प्रमाण-पुष्ट बना लेते हैं । इनमें अनेक प्रकार के गुण एवं उनकी विशेष सार्थो के भाव हैं , जो लोकप्रियता में प्रथम हैं । संस्कृत में -- ' स्वल्पा च भाषा

थूको गुवाप, की संक्षिप्तता ही इसकी दूसरी विशेषता है। यह लाघवता ही महानता की मोड़ है। सारगर्भिता और चटपटापन तो इस कहावत के मनमोहक गुण हैं।

कुछ कहावतें आंतरिक पीड़ा की घटना से संबंधित होती हैं, जैसे

१ रे पांखिया बासीस ! के पांतड़्यां देसी।
२ बाबाजी धापी ? के भी बांचे।
३ बाबाजी बाछड़िया टाळ्या ? के, बाछड़िया टाळ्या तो बरा कोनी हा के ?
४ भाई मरयै री बोली नी ! भुरजाई री बठ मीठ्ठ जाय ठो !
५. निम्बा जाव मर जाव ? के, जाव तेरी मौत है !

कहावत में अनुभव एवं प्रत्यक्षता का सार भरा रहता है, जो सत्य का साक्षी है। अतः कहावत की नींव सत्यता है। यह इसकी तृतीय विशेषता है। किसी ने अपने अनुभव निरीक्षण से कथन को सत्य पाया। जिसकी एक कहावत है — 'खर्ची खूटी अर यारी टूटी।' देखिये कैसा गंभीर अनुभव एवं सत्य है। यह वाच्यार्थ ही नहीं केवल लक्ष्यार्थ ही है — 'स्वार्थी प्रेम।' खर्च करने के लिये धन नहीं रहा तब मित्रता टूट गई। ऐसी एक स्वार्थमयी साधारण कहावत और मिलती है— 'सुलफिये यार किसके दम लगाये और खिसके। आजकल के मित्र चिलम तम्बाखू, गांजे-सुल्फे तक ही होते हैं। राजस्थानी कहावत की चौथी विशेषता उसकी व्यावहारिक घरेलू भाषा ही हो सकती है। कहावत जनपदीय बोली की अपनी वस्तु है। इसमें सरल वातावरण, सीधी सादी भाषा और सार्थक शब्द होते हैं। उक्त दृष्टि से एक कहावत देखिये — 'अणहूंत आठ सूं काठी हुय।' अर्थात् दुर्बल परिस्थिति के लिए यह कहावत कितनी यथोचित है ऐसी एक सामाजिक कहावत और लिखी जाती है— 'रावत राजी रावड़ो, डूम राजी गुमराज।' इसमें मुंह बोलता सामाजिक चित्र है। ऐसे ही कई चित्र देखें 'मूठ री ठाको डाग मैं फाड़े।' २— 'पुरै रा दो डागा ३ — बांह देयर गळो करणो।'

पांचवीं विशेषता कहावतों की है — उसका बिना संयोग [नामशून्य] के प्रचलित होना। इसमें रचयिता के नाम की कतई छाप नहीं रहती। जैसे — 'तिया तेरह मरद अठारह।' स्त्री तेरह और पुरुष अठारह वर्ष में ही विवाह के लायक होते हैं। यह कहावत कब कहां और किसके द्वारा उत्पन्न हुई सब अज्ञातनामा है। डाक्टर सत्येन्द्र ने लोकोक्तियों को तुक और अन्योक्ति पक्ष को भी विशेष माना है। वे कहते हैं तुक से कहावत का रूपांश खिल जाता है। लेकिन यह बात विद्वानों के लिये विचारणीय जान पड़ती है।

कहावत के साथ मुहावरे — यदि व्याकरण को भाषा का अस्थिपंजर कहें तो

कहावत और मुहावरे उसकी आन हैं। कई बार कहावत के साथ मुहावरा इस तरह घुल-मिल जाता है कि पहचानने में भी नहीं आता। अतः कहना पड़ता है कि यह [मुहावरा] एक 'डौर' शब्द से बना हुआ अरबी शब्द है। इसका अर्थ अभिधेय अर्थ से विलक्षण होता है। जैसे – जेब गरम करना, एक मुहावरा [वाग्धारा] है कारण गर्म शब्द साधारण न होकर लाक्षणिक अर्थ में काम आया है। हिन्दी शब्द सागर में ऐसे वाक्यांश या वाक्यों को रोजमर्रा बताया है। शुक्लजी उक्त मत के पक्ष में हैं। लेकिन केशवराम भट्ट रोजमर्रा और मुहावरे का एक ही बताते हैं। मौलवी अल्ताफ हुसैन हाली मुहावरे का दूसरा रूप रोजमर्रा बताते हैं। श्री गयाप्रसादजी शुक्ल मुहावरे को वाक्यांश बताते हैं जो वास्तव में लक्षणा व्यंजना द्वारा सिद्ध होकर एक बोली या लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित अर्थ [प्रत्यक्ष अर्थ से विलक्षण] होता है। आधुनिक भाषा में मुहावरा बड़ा प्रचलित एवं प्रसिद्ध वाक्यांश है। संस्कृत में इसके यथार्थ अर्थ प्रतीति वाला कोई शब्द नहीं मिलता। हिन्दी और संस्कृत में – वाग्धारा वागरीति, प्रयुक्तता और भाषा संप्रदाय रमणीक शब्द आदि शब्द मुहावरे के बदले में काम लिए जाते हैं। गुजराती में इसको रूढ़ो प्रयोग के नाम से पुकारा गया है। अतः हमें इसका अन्तर बताना पड़ता है।

कहावत एक नियमित एवं नैतिक कथन है तो मुहावरा विशुद्ध कार्य व्यवसाय। कहावत के वाक्य सर्वांग अमर हैं, मगर मुहावरे के वाक्यों में काल, पुरुष, वचन और व्याकरण के प्रभाव द्वारा परिवर्तन लाया जा सकता है। लोकोक्ति में नीति निपुणता के दर्शन होते हैं, परन्तु मुहावरों में नीति की जरूरत नहीं। उनमें तो प्रयोग की लाक्षणिकता तथा ध्वन्यात्मकता होनी चाहिये। राजस्थानी भाषा में – अबो दबो बूढ़िये के सिर पड़ो। और 'अकल सरीरां ऊपजे, दियां आवे डाम आदि कहावतें हैं और 'लार लगना फूत्री डोल होना, सिर पड़ना चाम्गे होना, छिपर आना छामड़ होना दाळ में काळो होना, माडी वाळना, सींग आना अंगूठा दिखाना रंग आ जाना, पूंछ रा बड़ा करना, कान पीळा करना, रावळी सूं कान चेपना। छाती पर मूंग दळना। कुरेड़ी मतिरियो होना। हाथां आसण छूटना आदि मुहावरे हैं।

लौकिक न्याय, लोकोक्तियाँ और प्राग्योक्तियाँ — प्राचीन साहित्य में न्याय शब्द का व्यवहार भी जगह जगह मिलता है। ये छोटे छोटे वाक्य होते हैं, मगर इनके भाव बड़ी गंभीरता लिए रहते हैं। संस्कृत में लोक प्रसिद्ध उक्ति को ही न्याय नाम दिया गया है। इनके अनेक भेद पाये जाते हैं। जैसे—पोमहिषी न्याय, अजा कृपाणि न्याय गलहस्तन न्याय, अन्ध गज न्याय, सरस डाकिनी न्याय, काक तालिये न्याय कूप मंडूक न्याय, घुणाक्षर न्याय, पंक प्रक्षालन न्याय,

घासाति मुष्टि न्याय, चक्र भ्रमण न्याय, अरण्य रोदन न्याय, ऊसर वृष्टि न्याय, भरि असत्य न्याय हैं, जो शास्त्रीय न्यायों से बहुत दूर कहावत नियमों के पक्ष में प्रचलित हैं। इन न्यायों के मूल में कोई न कोई कथा अवश्य रहती है, जिसका ज्ञान उस न्याय के अर्थ को जानने के लिए जरूरी है। इस तरह से कई कहावतें भी अपने पीछे ऐसी कथाएं लिए चलती हैं, जो उनका उद्गम होती हैं।

नीति शिक्षा — उच्च भाग्य और सत्य ज्ञान के लिए संस्कृत साहित्य में प्रज्ञा सूत्र, विद्या सूत्र, व्यवहार सूत्र, प्राज्ञोक्ति, वक्रोक्ति, मरमोक्ति, मर्मोक्ति, छेकोक्ति, सुभाषित, मुक्तक आदि अनेक शब्दों के प्रयोग हुए हैं। जो अर्थ गौरव, सरलता, लाघवता, चटपटापन एवं सारगर्भितता की दृष्टि से कहावत के निकट जान पड़ते हैं। कहावतें जैसे जन साधारण के काम आती हैं, वैसे ही प्रज्ञासूत्र आदि पंडितों के व्यवहार की सूक्तियां हैं। इनमें प्राज्ञोक्तियां प्रचलित हैं। प्राज्ञोक्तियों में नैतिक निचोड़ होता है और कहावतों में लोक व्यवहारिक तत्व रहते हैं। अत कहावतें लोकोक्तियां भी कहलाती हैं। यह एक गौण अर्थालंकार है। समवत सर्व प्रथम - कुवलयानंद - में अप्पयदीक्षित ने इसकी परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से की है — 'लोकप्रवादानु कृतिर्लोकोक्तिरिति भण्यते —' अर्थात् लोक विख्यात किसी कहावत के अनुकरण से लोकोक्ति अलंकार होता है। विद्वानों ने लोकोक्तियों को मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न बताये हैं जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणें फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियां प्रकृति के स्फुलिंग [रेडियो एक्टिव] तत्वों की भांति अपनी प्रखर किरणें चारों ओर फैलाती रहती हैं। लोकोक्ति साहित्य संसार के नीति साहित्य [विजडम लिटरेचर] का प्रमुख अंग है। ये लोक वाटिका के नीति सौरभ पुष्प हैं तथा सदाबहार के लोक-मुख पौधे पर अत्यन्त ताजगी के साथ सदैव खिलते रहते हैं। तथा अपने अभिप्रेयार्थ का छोड़कर अन्योक्ति के रूप में प्रस्फुटित होते हैं। मनुष्य अपने प्रस्तुत लाभ को छोड़कर जब अप्रस्तुत लाभ की ओर झुकता है, तब कहावतोप देश द्वारा उसे सन्तुष्ट किया जाता है। डाक्टर सहल के लिखे उद्भव आधारानुसार इनकी [कहावतों की] उत्पत्ति के कारण लोक कहानियां ऐतिहासिक घटनाएं तथा प्राक्कथन हो सकते हैं। डा पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने ठीक ही लिखा है कि कहावत के द्वारा कहानी का संकेत दे दिया जाता है। संकेत प्राय चरम वाक्य द्वारा दिया जाता है। डा सहल ने कहावतों के लोक कथा आधार प्रसंग में चरम वाक्य कथा से शिक्षा असंभव अभिप्राय और कहावतों से कथाओं की उद्भावना नाम के विभाजन व सोदाहरण चार भेद छांटे हैं। सर हर्बर्ट रिजले ने कहावतों के दो वर्ग निर्धारित किये हैं। (क) सामान्य और (ख)

कहावतों के वर्गीकरण — १ मेन वारिंगने — मराठी प्रावर्बस नामक पुस्तक में कहावतों को कृषि, जीव-जन्तु, अंग प्रत्यंग, भोजन, नीति स्वास्थ्य और रुग्णता गृह, मन, नाम, प्रकृति, संबंध, धर्म, व्यापार तथा परकीय नाम के चौदह वर्गों में विभक्त किया है। २ बिहार प्रावर्ब स के सम्पादक कहावतों के निम्नलिखित ६ वर्ग निर्धारित करते हैं — क मनुष्य की कमजोरियां, त्रुटियों तथा अवगुणों से संबद्ध। ख सांसारिक ज्ञान विषयक। ग सामाजिक और नैतिक। घ जातियों की विशेषताओं से संबद्ध। ङ कृषि और ऋतुओं संबंधी। च पशु और सामान्य जीव-जन्तुओं से संबंधित। ३ डाक्टर शंकरलाल यादव ने अपनी पुस्तक में लोकोक्तियों के ६ वर्ग करके अध्ययन किया है। क जाति परक ख स्थान परक ग इतिहास परक, घ कृषि वर्षा परक, ङ नीति परक, च व्यंग्यात्मक।

४ डाक्टर सत्येन्द्र ने कहा है — लोकोक्ति के दो अर्थ माने जा सकते हैं — एक पहेली दूसरा कहावतें। ब्रज में उक्तियों के कुछ रूप और मिलते हैं। वे हैं — मनमिलना मेरी, अक्का, ओठ्याव, सुधी, गहमड़ और मालना। डॉक्टर सत्येन्द्र ने कहावतों को अलग मानकर उसके सामान्य और स्थानीय नाम के दो प्रकार भी माने हैं।

५ डॉक्टर श्याम परमार ने कहावतों का निम्नानुसार वर्गीकरण किया है। विषयानुसार, स्थानानुसार, भाषानुसार जाति अनुसार। ६ कहावत साहित्य मनीषी श्री मुरलीधरजी व्यास ने इनके दो विभाग क सार्वदेशिक व सार्वकालीक ख एक देशीय व एक कालीक नाम की सूक्ष्म रूपरेखा द्वारा किया है।

डॉक्टर कन्हैयालाल सहल ने कहावतों के रूप और वर्ण्य विषय दोनों को लेकर राजस्थानी कहावतों का अध्ययन किया है। रूपात्मक अध्ययन में तुक, छन्द, अलंकार लौकिक न्याय, अध्याहार, संवाद संख्या, व्यक्ति आदि तथा उक्त तत्वों पर विचार किया है। १ वर्ण विषय को लेकर उन्होंने राजस्थानी कहावतों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है — १ ऐतिहासिक २ स्थान संबंधी, ३ राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र [क] जाति संबंधी कहावतें [ख] नारी संबंधी कहावतें। ४ शिक्षा ज्ञान और साहित्य — क शिक्षा संबंधी कहावतें। ख मनोवैज्ञानिक कहावतें। ग राजस्थानी कहावतें। ५ धर्म और जीवन दर्शन — क धर्म और ईश्वर संबंधी कहावतें। ख शकुन-संबंधी कहावतें। ग लोक विश्वास विषयक कहावतें। घ जीवन दर्शन संबंधी कहावतें। ६ कृषि विषयक कहावतें ७ वर्षा विषयक कहावतें। ८. परकीय कहावतें। प्रस्तुत प्रबंध विषय को ध्यान में रखकर हम भी राजस्थानी कहावतों को नीचे लिखे हुए वर्गों से स्पष्ट करें १ मानव जाति और उसकी बिरादरी से। २ इतिहास एवं स्थान से। ३ ईश्वर नीति और धर्मोपदेश के जीवन से। ४ कृषि, वर्षा तथा लोक शकुन

विश्वास से। ५ मनोविज्ञान और व्यंग से। ६ प्रकीर्ण परिधि से– क कहा नियों की कहावतें। ख राजस्थानी साहित्य की कहावतें। ग अन्य कहावतें।

१ मानव जाति और उनकी बिरादरी से — 'नारी' – राजस्थानी कहावतों में नर-नारी के स्वभाव और उनकी वर्ग बिरादरी के आचार विचार तथा नीति रीति का वर्णन मिलता है। इनके कहावती कोष, वर्ग बिरादरी की अनेक तस्वीरें हैं, जो पाठकों के सम्मुख मानव-वृत्तियों को प्रकट करते हैं। राजस्थानी कहावतें हैं— नारी नर की खान। लुगाई की कूख ली है। नारी का तो एक भी चोखो, सूरी का बारह भी के कार का? पहली में नर रूपी रत्न की खान नारी को बताया है। दूसरी में लुगाई का कूख [कुक्षी] की प्रशंसा की है और अन्तिम में शूकरी के बारह बच्चों की बजाय सिंहनी के मात्र एक शावक को उत्तम बताया है। अतः हम अपना मानव जाति और बिरादरी विषयक अध्ययन नारी को लेकर ही आरम्भ करेंगे। क्योंकि मनु ने भी कहा है — यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवता—अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता रमते हैं। हां! हमारे देश में नारी का प्राचीन काल से आदर रहा है। ज्ञान अधिष्ठात्री सरस्वती, द्रव्यदेवी लक्ष्मी और शस्त्रदेवी शक्ति, नारी ही हैं। सीताराम, राधेश्याम में प्रथम नारी का ही नाम आया है। श्री मैथिलि शरण गुप्त का निम्नलिखित कथन ठीक ही है—एक नहीं वो दो मात्राएं, नर से भारी नारी –। मगर इन आदर्शों के साथ उसके कलह जैसे अवगुणों की करतूत वाली कहावतें भी मिलती हैं—१ तेरा गमाया घर गया म कांदा खाणी नार –अर्थात् हे प्याज खाने वाली औरत तुम्हारे उजाड़ने से ही घर नष्ट हुआ है। २ देश बड़ी का थाळा सिर मूंडा मुंह काळा – ३ नारी गिज्या सो नर मुवा आदि। नारी जीवन समस्या पूर्ण है। उसमें अनेक उलझनों वाली कष्टकर कहावतों का भी बाहुल्य है।

१ त्रिया –

१ तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार।
२ तिरिया तेरै मरद अठारै।
३ तिरिया रै दो सासरा का पीहर का सासरा।

लुगाई –

१ लुगाई री गहागणो मरद री कामणी।
२ लुगाई री बमारी ग्यारी।
३ लुगाई री कम कोई देखनो कूख देखणी।

नारी के पारिवारिक कुछ नमूने –

१ सासी पाणी भी बोहिली नै फेरा मावै।

२ अम्मा जिसा ही अम्मा ।

३ माथी काळा कुत्ता वाटी मांगता फुगसी ।

४ मरी मां जीवी मासी ।

५ पीहै री छोकरी, टहो सिर मुंडाई री ।

६ म्हारी कांम कुण करियो ? के बहू । बहुवां वने चोर मरावे चोर बहू रा भाई ।

७ बेटी मर बळ्य पुलो भी न्हावै ।

८ बेटी री मां राणी भर्ई बुढापै पाणी ।

६ बहन होती री भिरोथी है पांती री भीं ।

जाति संबंधी मान्यिता –

१ भिकमी बामण पाटया मूई ।

२ बाण्य हाथ बठीवे मैं कमूं जाय ? बेमन ग्रीम मूको कमूं बाय ?

३ कुम्हार कुम्हारी नैं नी नावई गर्ध रा कान मरोड़ै ।

४ बोकण सूं छीपी के भाट बीरै मोसरी बीरै भाठ ।

५ मोली पारका बोबे बरहाळा बोबनी भाग मरै ।

अन्य –

१ लामी रै बाड़ी इमामी ।

२ असर्दै सेमसी निराज सूं टही मेले भ्यात सूं ।

३ बोळी बुर्ई बोळी नै के करोसा होळी नै ? का चावळ का लापसी बोळी बोळी पापडी ।

४ मैं ही राणी तूं ही राणी कुण घालै चूल्हे में छाणी ।

५ कुछड़ मर मार्ई किवाड़ी कुता मिल चाल्या रेवाड़ी ।

उसके पीहर और ससुराल के बहिन बेटी बहू वाले पद पराधीनता, सौभाग्य दुर्भाग्य फूहड़पन, माता, अच्छा छोकरी, सास, ननद मान्यताएं, परिस्थिति आदि के संबंध मे यहां काफी कहावतें है। इनमे त्याग तपस्या की भावनाएं प्रबल हैं।

किसान और हरिजन तथा अन्य — नारी के बाद निष्कपटजनों में किसान और हरिजन का नंबर आता है। वे सीधे सच्चे और मेहनती स्वभाव के होते हैं। उसे हर कोई हर बात कह सकता है। उनकी इच्छाएं अधिक नही होतीं। किसान कहता है —

१ मखी मूंग री साट के न चूवै टापरी भैकसभणो दो चार के पूर्ग बाजरी।
बाजर हुवा गेर दही में मोसमा ढ्याड़ा दे करतार फेर नही मांगणा ॥

२ पाटण गीद किसान री खोय १ करमो रात कमावे बाण्यां रा बेटा खाय।

[किसान बनिये के लिए कमाता है।]

हरिजनों के विषय में भी अनेक कहावतें सुनी जाती हैं। कुछ आधुनिकता

के बाद भी चल पड़ी है। जैसे– डेढ़ां री भर मेढ़ां री आत्मपस पड़ियोड़ी है। [समान उन्नति] १ मासगाई डेढ़पी बिलोयण म पग देव २ डेढ़ा ढळको [नवीन कार्यों में उत्सुकता] ३ डेढ़को पाळो जोबन [अपने को प्रकट करना ४ बात री डेढ़पी मींटोड़ी मावे कोनीं ५ के धोरी भी मायमो ? [धोरी का क्या बाना] ६ के सातिय री मास [सातिये का क्या प्रमाण]। ७ डूंमा री सी बेरी [अस्त व्यस्त वस्तुएं] ८ ससी री सी सांगी [गदगी] ९ भगो रा सा वस्त्र [अनुपयुक्त पहनाव] डूम और संसी की यात बात में कहावतें बोली जाती है। जैसे–

> मिळ्यं निकारां पोढ़वी खटरस भोजन खाय।
> रांगी बणपी डूमणी पम ठाढीर न जाय॥
> मांच बढ़ै घर डूम ठीकारी मांगै

क अधिक खाने के समय कहे– डूम है के ? ख स्वादिष्ट खाने के समय कहे– डूम है के ? ग अधिक सोने के समय कहे– डूम है के ? घ देरी से उठने पर और च बाडा लगने पर कहे– डूम है के ? छ. बेकार रहने पर कहे – डूम है के ? ज किसी चीज मांगने पर कहे– डूम है के ? झ. डूमड़ा गांव छोड़, के ठठा रे छोरा होको। स्नान न करने पर कहे–संसी है के ? ट हाथ न धोने पर कहे संसी है के ? ठ. मेला रहने पर कहे– संसी है के ? ड अणमणिया भीख मम बाप्पा पसांभ। अनिच्छित भीखों से स्वच्छा पूर्वक काम लिया जाता है। पिछड़ी जाति के पेशेवर लोक १ आंख मीण री सी [बकेतों की सी खूंखार आंखें] २ खोड़की बाबरी री सी [बड़ा साफा] ३ कसाई डेढ़ा-चोरधा री सी [असम्य लोगों] ४ बाबरी गूजरी री सो [माटी] ५ धोबी री सी मोगरी [छोटी एव मोटा गौरव] ६ माळी बाहै वरसता [पानी का दम्भुक] ७ माई री भी पांसळी [चतुर] ८ नौ माई पौण मुगाई [दुर्बल] ९ भाव कूण बधायी ? क गरीब [गरीब को पैसों के लिए अनाज सस्ता देना पड़ा] १० भाव कूंण घटायो ? गरीब [गरीब को पेट के लिए अनाज महंगा भी लेना पड़ा] ११ गरीब का सैंग गुण गळ जावे [गरीब के गुणों की कदर नहीं होती] १२ नट बुद्धि आ जाय जट बुधी नीं आव [नट बुद्धि से जट बुद्धि जबरदस्त] १३ वर्जी कहता है– जींया जीतै सींया [जीवन पर्यन्त सीना] १४ भो गोसी ! भो गोसी कहे– गोसी थारो बाप। [कम असल जाति] १५ जातिब क्यूं बळीते नैं जाय ? [जाती की स्त्री को ईंधन लाने की क्या जरूरत] १६ तेमी रा तेरह मर जाय [हठ धर्मी] १७ गाळिमे कळव रै गुळा री के जेब ? [साधारण व्यक्ति के लिए कोई काम अशोभनीय नहीं] १८. गदकी सगिण भावर हुओ। [मनुष्य वही, पहनाव दूसरा १९ जाबेवी भी शक्कर बिष पो। [जाबे की लड़की से मुसल-

मानों में अच्छी शादी गिनी जाती है] २० मियां है जठ फजीती घणी [एक लोक कथा] २१ भील रै कांई शील। [काय तस्कर] २२ तेलो किको बेलो। [तेली किसी का मित्र नहीं] २४ सत्री कीर मित्री। [स्त्री किसके मित्र हुए हैं] २५ नाई मास गमाई। [चुगलखोर नाई] २६ जाट मागड़ा पाट। [हल चलाने वाला] २७ तेल बळे दरबार रो, नाई रो के जाय। २८. धाणका मां का न भोण का [धाणक किसी के सगे नहीं] २९ लोह जाण लुहार जाण, मालो री बलाय जाणे। [सबसे अलग] ३०. जो सुनार रो अेक लुहार री। ३१ सुनार मां रो हांसळ [स्तन] ही नीं छोडे [बीच में उड़ा लाना]

तुलनात्मक कहावतें [जातियों की] — १ विकटी चमार बंको, मूड़ बंको बाणियो, खोट में सुनार बंको, कुबध बंको कांमियो।

२ छोरा छोलण बूंट उमाड़ण, पचपचियो अर नाई, इतरा चेला मत करो गुरुजी कुबद करला कांई।

जाट — मारवाड़ की प्राचीन संस्कृति में जाट का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लोक मानस में उसकी खूब कदर ली है। जाट पर यहां पर्याप्त उक्तियां पाई जाती हैं। सरल स्वभाव और अजीब मसखरापन के साथ उसकी हाजिर जवाबी तथा मसखरापन प्रसिद्ध है। स्थानाभाव के कारण इस जाति की कहावतों के दो चार नवीन उदाहरण आपके सामने रखे जा रहे हैं — एक नट पानी का घी बनाकर लोगों से कह रहा था — यह घी है। यह सारे पदार्थों को स्वादिष्ट बना देता है। इस पर जाट तुरन्त कह उठता है। 'तम्बाकू बणाय से' [तो फिर तम्बाकू को सुधारा जाय —] सब हंसने लगते हैं। नट लज्जित हो जाता है। तब से कहावत चला है — जट बुद्धि नां जाय। १ किसी ने पूछा — चौधरी मंगाई देखो बोल्यो — गाडी किसे मुल्क सूं ही ? २ जाट मागड़ा पाट, मन्नो जठे गुड़ा बरोबर ३ जाट जंगळ ना छोड़िये हाटां बीच किराड़ आठ फिरंगी सौ गोरा, एक जाट रा दो छोरा ४ लोग्यो जाट करणियो मणी बाल्म रो उमान ५ बामीआं रा नपिया खावड़ा जोगी हुग्या जाट। ५ जाट जवाई भाणजा, रैबारी सुनार ६ जाट री बेटी बाकोबो री मोत ७ जाट जाय जट्टण दो पांची जट्टण। आज इस जाति का यहां आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक पक्ष उत्तम रहा है।

बाणिया — जाति संबंधी कहावतों में सबसे अधिक बनिया जाति की कहावतें प्रचलित हैं। उनकी कुछ आधुनिक कहावतें लें —

१. रांपड़ा रै आवेटा सूं बाणिया शिखेम है।
२ बोर बिगाड़यो बाणिया नर बिगाड़यो बिगाड़यो लिसी लिखो बोतांला।

३ सठियोड़ा मोपाळ के गुठा-बाणिया, जेबा पास्या हाथ चढ़े म्हा बाणिया।

४ बाम्या तेरी बांच कोई नर बाणे नहीं।
पांणी पिये छाण मोही प्रब छाण्यी पीबे॥

५ वणिक पुत्र कागद लिखे, कानां मात न देय।
हींग मिरच चोरी मिल, हुंग मर मर कर देय॥

६ बांणिया मीत न वैस्या सती, साप न बोले मक रती।

७ बाघ मारै बांणियो पीछाण मारै जाट।

८ मोर मत्री सब कीजियै जक न कीजियै बांणियो।

९ बड़ो बांणियो पड़ै समान, पड़ग्यो बांणियो मरै समान।

१० घरा बुलावे मीठो बोले, कर मन रा बांणिया।

११ बनवणी री घाटी — बनवणी रै घाटी लाग्यो सार करै सब कोई।
गिरघनियो डूंगर सूं पड़ग्यो खबर न लेवे कोई।

राजपूत — राजस्थान की यह जाति अपनी शूरवीरता के लिए प्रसिद्ध है। इसने बेक की पूरी प्रतिपालना की है। अच्छे राजा के राज्य में प्रजा चैन की वंशी बजाती है। १ राजा राज प्रजा चैन २ रणखेती रजपूत री ३ राजपूत री बात कमी ४ रजपूत नै रेबारै री गाळ। ५ रजपूती रही नहीं, पूगी समदरां पार ६ रजपूतो घोरा में रळगी, ऊमर रळगी रेत ७ राजा मांनै सो रांणी बा मरी पाणी। रजपूतां री रांम नीसरग्यो है तब्या राजा बामी अगन बळ।

बामण — राजस्थानी कहावतों में बामण की मूंसा वृत्ति, भिक्षा वृत्ति, पाप वृत्ति, दान इच्छा, मूर्खता आदि की भरमार है। इनकी कहावतें सुनकर कान बंद करने पड़ते हैं

१ बेक मूर्त में बामण री माड़ कट जावे २ बामण रीसै माबुर्या ३ बामण री बीमण में ४ बामण बारह मन खाणे वाळो। ५ मूंस्यो बामण रीस करं। ऊत के नाटकों में बामण को जहां कहीं भी विदूषक बनाया गया है वहां पको मिष्ठान्न प्रियता की हंसी उडी है।

ब्राह्मण के लिए हीन वृत्ति वाली कहावतें — १ काळ कुसमे ना मरै, बामण करी ऊंठ वो मांगे मा फिर चरै, वो सूखा चाबै ठूंठ। इस मेंहगाई और काल के जमाने में तो ब्राह्मण की ऐसी लोकोक्तियों को बहुत प्रोत्साहन मिला। जैसे–भिक्षावृत्ति तेरा ही सहारा है। ब्राह्मण हाथी चढ़ियो ही मांग अर्थात् मूढ ब्राह्मण भी मांगने के स्वभाव को बनाये रखता है। इस कहावत की एक सा देखिये। किसी राजा ने अपने ब्राह्मण को अपने परगने की हाकमी प्रदान की। उसका आदेश ब्राह्मण को मिला। उसमें उसका पेटिया लिखा है या नहीं ी मी उसने पूछ लिया–इस में हमारी पेटियौ पण लिखे है स–राजा ने कहा– उबयोग्या नहीं बिप्रा भिक्षायोग्या पुनः पुन। ब्राह्मण में साठ बरस ताई तो बुध

आव कोया भर पछ आवै मर । यह कहावत ब्राह्मण की मूर्खता की निशानी है। पग रा लागू किसा ? ब्राह्मण, नाई, कुत्ता । कुत्ता बामण कुमा हाथी, कदै न बाधि न माथी । बाळ पागड़ सू ऊजे, पुरी बामण सू होय । बामण सू बळाणो, आर बाणो आयो । बामण तो हुपळम रो सीरी है। मीद मरो बीनणी मरो, बामण रो टको सवार है। बामण जाटो, पागड़ काटो आटो राबड़ खाय, मेपतड़ो काख पड़यो तो जातो था न जाय । बामणां रो बाजार भर कुत्तां री कतार कम देसी।

२ इतिहास एवं स्थान से— अ राष्ट्रीय परंपरा में ऐतिहासिक कहावतें कहावतों म राष्ट्रीय इतिहास एवं भौगोलिक स्थिति का वर्णन भी रहता है। ये सही जानकारी व निर्देशन स्वरूप है। इनमें वीर, विद्वानों तथा स्थानों की विशिष्ट संस्कृति का ज्ञान होता है। राजस्थान की पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतें एक प्रकार स राजस्थान की ऐतिहासिक गाथाएं ही हैं। गाथा शब्द, ऋग्वेद, एतरय ब्राह्मण और निरुक्त म यहां काम आने लगा है। सतपथ ब्राह्मण तथा एतरय ब्राह्मण में वैदिक गाथाओं क पर्याप्त नमून मिलते हैं। पाली, प्राकृत एव अपभ्रंश के बाद पुरानी राजस्थानी भाषा में तो इनक पाठ शुरू हो गये थे। वात, ख्यात और कथा काव्य तो इन गाथाओं के पिटारे हैं, जिनको हम ऐतिहासिक कहावतें, उपाख्यान तथा परवाद नाम से चुन चुनकर निकाल रहे हैं।

[आ] घटनाओं वाली ऐतिहासिक कहावतें — निम्नलिखित ऐतिहासिक कहावतों का अर्थ घटनाओं से स्पष्ट होता है। कई जगह इनको वातासार्थ भी कहा गया है

१ कामा बामा कमबखा की बायी मोकी ।
चूक बासी ठाकरां बायसां ढोला ॥

२ मैंकी पहुंची समझी नहीं मेंहदी का रंग कहां गया ।
अब प्रेम नहीं उस प्यारी से वह पामी मुस्तान भया ॥

३ मान रखै तो पीव तज पीव रखै तज मान ।
दो दो गयन्द न बन्धहि ओकै खंभू ठाम ॥

४ छपनकिया काळ मड़ै मत भाई म्हारै देस में।
[ऐसी ऐतिहासिक भयंकर स्मृति को भी लोक मेवा अभी तक याद रखती है।

[इ] व्यक्ति प्रधान ऐतिहासिक कहावतें

१ भीमां तू मांटी मोटा मबरा मांगसी ।
कर राखू काठी सकर ज्यू सेवा करै ॥

२ ठरवर बांही मोरिया सरवर मांही हंस ।
बाजी ज्यांही भारमली ठाकर ज्यांही मंस ॥

जब सोपा री बैसणो , बंधो मड़ चितौड़ ॥

यो -

रैंसी री रखवा केरैं सूपी सहूपां साय ।
बांधी बापड़ी क्या करै कुहियां से घर जाय ॥

(३) ईश्वर नीति एव धर्मोपदेश के जीवन से — (क) ईश्वर संबंधी—यहां हम ईश्वर विश्वास नीति मूलक और भाग्यवाद की कहावतें लिखते हैं। राजस्थानी में इस विषय की कहावतों का सर्वत्र प्रचार है। कुछ ईश्वर विषयक नई कहावतें भी चल पड़ी हैं। जैसे आज के रामराज्य की लीला न्यारी है —

१ रांम री मां नैं भाठो मारणो २ राम सूं बैर बुरी है ३ रांम मारै जोर नहीं चालै ४ रांम देवे ५ रांम का मारया ६ रांम के घर न्याय है ७ रांम देवै तो छप्पर फाड़र देवै ८ धांर्यां री मावो रांम उतारै ९ मोरण वाळा सूं जिमाड़ण वाळो मोटो है १० रांम भुला देना।

नैतिक संबंधी — (ख) इसमें अच्छी बुरी [नैतिक अनैतिक] दोनों प्रकार की कहावतें आयेंगी।

१ नीयत माड़ी २ नीयत री चोर ३ नीयत री काळी ४ नीयत रा फळ ५ नीयत धारे बरकत ६ धर्म नैं धाव कोनी ७ धरम उठा गयो ८ धरम री बाड़ हरी ९ धरम धारे १० धरम बुदम्मी ११ धरम फळे १२ कुड़ में घूड़ कोनी। १३ नेम निभावे धरम टिकावे।

धार्मिक— (ग) १ मसाई रांड कुत्ता री भू २ पाप बधै ३ कुड़ परोटे किरांणी। ४ कर्म पाप बाजी बाय ५ पाप री घड़ी मोड़ो भरीजे ६ पापी ५ मन पछै बाय ७ टाया टायां टोपली बाकी रा लंगोट।

आस्तिकता होकर रहती है—(घ) १ मौत रो पाणी कानी है २ बूटी नैं बूटी कोनी ३ भाभी प्रबल है ४ कुरोई भी बना करोई मुट्ठी भिन्ना ५ करम कमेड़ी री सो मन राजा री सो ६ मन चाहे टट्टू [भाग] नहीं चालै ७ जंगळ पांणी री बात ८ धांमैं धांमैं पर मोर नाच ९ लिखियोड़ो जुर्वे १० करणी रा फळ चाखैं ११ को मी मीठो समणो कम दीठो। १२ भाग बिना सानै १३ चोई री घर भरव री भाव फिरयां खुले १४ अजमर पड़यो पखाड़ में बाता देवण हार १५ करमां री बातें १६ की मांगे तो करो।

४ कृषि वर्षा तथा शकुन विश्वास से — (क) कृषि ज्ञान की कहावतें १ राजस्थान कृषि कार्य का मुख्य प्रदेश है। इसमें कृषि संबंधी जितनी कहावतें मिलती हैं उतनी और कहीं नहीं मिलती। कृषि संबंधी कहावतें जो किसान, खेत, पशु, ऊंट आदि का ज्ञान जनता के समक्ष सदैव पेश करती रहती हैं। इनमें खगोल-भूगोल का सम्मिश्रण अनुपम और अद्वितीय है। यथा — खेत बड़ा घर सांकड़ा, हळ हाळा खेत पड़ाला— उक्त कहावतों का वातावरण कृषि मूलक है एवं इनका

वर्षा मेही या रवी, पाव तपा प्रभात ।।

४. मंत्र नहीं चलोलड़पा, कुकत रैण कुयोग ।
 बादुरवासी बाल वळ, वळण सुभाषण राय ।।

५. मित्रपद रंग थिर नो होय, मक्को चटर्ट देह ।
 माणसी चहचहु करै, पद भत चोरै मेह ।।

जन्तुओं द्वारा वर्षा ज्ञान — १ चरवाई पर पिच्छु करै घर बैठी मार चढ़ी मरै ।

२ सुकरवारी बादळी, रही सनीचर छाय ।
 कंक कहै मैं संभळी, बिन बरस्यां ना जाय ।।

३ मामी रावी, मह माठो । (४) मामी पीळो मेह बीळो ।

५. रल्ले री पाछळी, मावम मोम हुलास ।
 बाकळ कर गिरमी करी बस बरसण री आस ।।

६ मार्ग मळ री चोर है, बळ भर चाद मळर ।
 ईंगळो करणी करसी सुरज रै चौफेर ।।

७ धोबी मारै मेह आवे, बेटा मारै बहू आवे

तिथि द्वारा वर्षा ज्ञान — (१) सावण सुकला सुर गुरा जे चन्दो ऊगंत ।
 कंक कहे हे भडळी, चळ चळ बोल करंत ।

१ बावरा सूं पण ग्रावणा पाड़ा दिया बणाय ।

३ रोहणी पार्गे कीरत रा बरसे । टूक टूकड़ा मैं दुनिया तरसे ।

४ बरसे भरणी छोडे परणी ।

५ बाड़ा बाय बाय तो पढ़ी झूंपड़ो झोका खाय ।

६ इसठी मूंड समाळे, तो पोटो बाई गाळे ।

७ सत मिस ऊपर वेव सुर मंगळ सिमवार ।
 घन मास करै ना हुवै रल्लह पम्मावार ।।

८ कमो पाहेली के वेबै सामेही । (६) — पिछली बाड़ी पुम्बाई लागे ।

उक्त ज्ञान सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और तारों के द्वारा होता है ।

सम्मिश्रण द्वारा वर्षा ज्ञान — संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में वर्षा के लिए कार्तिक से आसोज तक बारह महीनों के दिनों का क्रम निर्धारित किया गया है । राजस्थानी भाषा में भी इसी तरह के कहावती पद्य बारह महीनों के लिए प्रचलित हैं । यहां केवल एक पद्य नमूने के तौर पर दिया जा रहा है — मी दिन कहिजे मीरसा पुरम चेत र मास । मळ बूठे बिजळी हुवै जाणो गरम विणास ।। अर्थात् चैत-शुक्ल पक्ष नौ रात्रि में यदि पानी बरसे तो समझलो कि वर्षा के गर्भ का नाश हो गया । आगे वर्षा नहीं होगी । प्राचीन ग्रंथों में इस वर्षा गर्भ का सपाकम, प्रसव उपघात, दोहद [ऊक दगार] आदि का उल्लेख है । गर्भ धारण के छः महीने और पन्द्रह दिन [१९५ दिन] बाद वर्षा गर्भ का प्रसव होना माना है । इस विषय में निम्नलिखित दोहा देखें —

जिण दिन होवै गरमड़ी, तिण पाछी दै मास ।
फार पन्द्रह दीहड़ै, बरसै मेह सुवास ॥

[ग] शकुन अपशकुन की कहावतें— हिन्दू अपने धर्म को सही बताते हैं और अन्य अपने को। हिन्दुओं में भी शैव, शाक्त वैष्णव, जैन और सिख अपने अपने सिद्धान्तों, विश्वासों एवं भावनाओं को सही बताते हैं। व्यक्ति अपने में व्यक्त नहीं रह सकता। वह सदैव समाज के विचारों से प्रभावित होता है। अतः कहा जा सकता है कि मनुष्य सत्यासत्य की खोज से मुक्त रहकर अपने को समाज के आगे समर्पण कर देता है। वह सामाजिक लोगों से जो भी सुनता है उसे अन्धा पुण्य मान जाता है। वह पूर्वजों से अपनी जातिगत रूढ़ियों को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त करता चलता है। इसे हम कच्चे घड़े का रंग कह सकते हैं, जो बचपन से ही रंगा जाकर कितना पक्का हो जाता है ?

दूसरी बात, मनुष्य अपने तत्व ज्ञानी पूर्वजों की मान्य परम्पराओं के पथ में रहकर ही मानव धर्म का पोषण करता है। ऐसी पीढ़ी दर पीढ़ी से चली आती हुई धारणाएं दान पुण्य और शकुन स्वरोदय को चिरस्थायी बनाये रखती हैं। तभी तो हम अपने विवाह यात्रा आदि के मंगल समय में नीचे लिखी बातों पर पूर्ण विचार करते हैं —

आटी काटे घी घड़ी, खुलै केशां नार।
बांवों भलो न दाहिणो, ल्याळी बरड़ सुनार ॥

अर्थात् आटा, कटक, घी से भरा घड़ा तथा बाल बखेरे हुए औरत यदि यात्रा के समय सामने आ जाय तो महा अशुभ मानते हैं। नाहर, बरस और सुनार तो चाहे दाहिनी ओर मिलो या बायीं ओर किसी भी अवस्था में शुभ नहीं होते। जैसे— हथेली में खाज आना धन प्राप्ति और पर में खाज [खुजली] आना यात्रा का विधान माना जाता है, वैसे ही यहां रास्ते में लकड़ी की गाड़ी विधवा नार, जोगी सोगी, बिल्ली नाहर, बरस, खाली घड़ा, कन्या की छींक, बायीं कोचरी का बोलना, दाहिनी तरफ गधे का गुजरना, मरद की बाईं आंख फुरकना आदि बातें अपशकुनों में शुमार हैं। शिशुपाल रुकमणि का ब्याहने बरात लेकर रवाना हुए तब ये उपरोक्त सारे उल्टे अपशकुन उन्हें हुए थे —

तिलक बिहुणी मिल्यो पांडयो, सामै विधवा नारी। ग्रामीण परम्परा में गाय, भैंसा, सियार, तीतर नीलटांस, सोन चिड़ी मालाळी चौफ निपुणा, भारा, बास माग, [धूम्र युक्त] मौवड, पागल काली चीजें, आदि को दायें बायें देखकर शकुन मनाये जाते हैं। राजस्थानी कहावतों में अनेक रूपों में अभिव्यक्ति हुई है। इस भाषा में शकुन को 'सूण' नाम से संबोधित किया जाता है। जैसे— मिनख सूण री रोटी खाय।

१ गर्ध तीतर बावें खाऊ, डाब चर बोलै दसराऊ।
बाद सूंढ़ो बों बों करै, लंका री राज बिभीखण करै।
२ खर बावा सिध साँवणा।
३ तीन कोस की मिल बाव कांसी की पाळी पर मैं माजागी।
४ मांस फटूके धणो, बाव भभूको सहणी।
५ गाई सामो बावळो दरसन हाय मिमंत सुकन बिचारे पंथियां माथा से पूजत।

यात्रा पर जाते समय बायें तरफ लोमड़ी के बोलने पर अपशकुन माना जाता है। उसका प्रभाव मिटाने के लिए निम्न प्रकार की कई कहावतें कही जाती हैं —

[क] बाट बाटमो रांधे खीरो, लोमड़ी रै मुंह में बेकड़ो री बीरो।
[ख] तरवरिया तक ऊपरां बगा मेळ करंत।
मिरघनियां घन होयसी बिघड़ पा माय मिमन्त।।
[ग] कूंम करै जो लोमड़ी हड़मन्त नै हिरण्यो।
इतरा सीरे जीमणा प्रभातो मिरग्यो।
पाठांतर - कूंम केरै जो लोमड़ी, बिषधर नै बाराह।
इतरा जीवें जीमणा बाकी सब बाबाह।।
[घ] कंथ करै जो लोमड़ी बायां बावै बाव।
पं बोलै जै जीवणी, मिळै परायो राज।।
[ङ] काळी हाळी बाळवी गारेळी पखाळ।
साव देव रक्षा करी, पंबिक पूंछाळ।।

राजस्थान में कई लोग शकुनों के ज्ञाता हो गये हैं, और कई आज ही मौजूद हैं। यहां शकुनों की लोक-कहानियां भी प्रचलित हैं। आगे कुछ छींकों की कहावतें देखें —

छींकत खावै छींकत पीवै, छींकत रहिज सोय।
छींकत पर घर कदी न जावै, जांठी बाबी होय।।

अर्थात् राजस्थान में भोजन, स्नान, दान-पुण्य में बायीं अथवा पीछे की छींक को और विद्या अध्ययन, दवा सेवन, प्रदेश एवं युद्ध गमन तथा खेत बोनने जाते समय दाहिनी, सामने की एवं अपनी छींक शुभ बताई गई है।

हल जोतने जाते समय तो लोग बड़े शकुन स्वरोदय से जाते हैं। वे साथ में प्रह्लाद की [होली में जलाये नारियल की] सुरक्षित रखी चिटकी अपशकुन न लगने की गरज से ले जाते हैं। इस समय-संबंधी भी कहावतें हैं। एक कम हीन की खापड़ी की लोक-कथा भी उक्त विषय के संबंध में प्रचलित है। राजस्थानी लोक साहित्य में कौए के द्वारा भी शकुन मनाये जाने की कई कहावतें मिलती हैं। घर पर कौआ आकर बोलता है, तब किसी के प्रियजन आने की

इसप्रकार शकुन मानी जाती है।

> जेठ मास उजाळा रहे गई, आधी बीज भड़क्क।
> आधी पूरी काम चळ, आधी गई तड़क्क।

शकुन देशानुसार — एक प्रांत में शकुन दूसरे प्रांत में अपशकुन भी हो सकते हैं। राजस्थान में यात्रा पर जाते हुए व्यक्ति को कोई पीछे से आवाज देता है तो उसे अपशकुन माना जाता है। बंगाल में यदि कोई छींक करे तो शकुन माना जाता है — 'पीछे थाके डाकन भालो' ऐसी यह जो राजस्थानी अपशकुन भी बंगाल में शुभ माना जाता है। जैसे—मोरवी थाके गाली भालो, यदि मोरवी जाय। आगे थाके पीछे भालो, जोदि डाके माय। अर्थात् भरे घड़े से खाली अच्छा होता है। यदि वह मरा जाने के लिए जा रहा हो तो और आगे की अपेक्षा पीछे की आवाज [सम्बोधन संबंधी] शुभ होती है यदि माता बुलाती हो तो यहाँ की अपशकुन वाली और भी कई कहावतें यहाँ शुभ मानी जाती हैं। बंगाल में सध्वा दर्शन अशुभ और विधवा का शुभ माना जाता है। अन्तिम बात यह है कि मनोविज्ञान वाले भी शकुन मानने वाले व्यक्ति के लिए कुछ मनोविश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। मगर ये सब शकुन हैं रहस्य, अगम और अनागत और अनन्त की लीला।

लोक विश्वास की कहावतें — लोक विश्वास अथवा अन्ध विश्वास वैसे तो एक ही हैं। लेकिन अन्ध विश्वास असत्य विश्वास है और लोक विश्वास सहेतुक एवं युक्तियुक्त विश्वास है। राजस्थान में डाकण [डाकिनी] होने के अनेक विश्वास जमे हुए हैं। वे व्यक्ति तथा समाज के बौद्धिक विकास के साथ सुदृढ़ हैं। फिर क्यों न विश्वास पर युक्तियुक्त कहावतें बनें? राईकाणी ही अर डाकण व्हैगी, चढ़ चाळ बधारो ऊंटां चढ़ चढ़ मिनख खावण लागगी। — अर्थात् ऊंटों की ग्वालिन थी, डाकिनी हो गई और ऊंटों पर चढ़ चढ़ लोगों को खाने लगी। मुटियो राजा लोय है, डाकण छुरी पसार है। — एक घर डाकण ही छोड़े। डाकणां रै ब्याह में भूतां रा काळजा बंटै। आपरी मां नै डाकण कुण कवै? डाकण बेटा ले के दे? — डाकण सूं गांव रा नाळा के छाना? लोक विश्वास विषयक अन्य कहावतें भी बड़ी प्रचलित हैं। जैसे — एक मरे बच्चे की मां अपने दूसरे बच्चे के लिए फिर डरती है। उस विश्वास दिखाने के लिये कोई खैरख्वाह कहता है — 'बिल बिल गोह थोड़ी ब्याई है?' राजस्थान में इस तरह की विश्वस्त कहावतें बहुत हैं।

१ मीर मिलोळा कर्म ठिकाणा। (२) आद करै जणाव। (३) लोक व्यार्थ न दूर जावै। (४) कर्म रा भाग मोटा। (५) निर्धन री धन रांम। (६) मौ-नजर रैवह सवार। (७) पाणी सूं सांगो मार कुट माथ गांवो। (८) मरां माहूरां लिब

लोक साहित्य में कहावती साहित्य की बड़ी महत्ता है इसमें छोटे छोटे तेज, सीधे चुभने वाक्यों में गहरे अनुभव, जटिल समस्याएं एवं कठिन प्रश्न सिमट कर आ जाते हैं। बिन्दु में सिन्धु और गागर में सागर भर देने का गुण इस ज्ञान धारा की विशेषता है। यह मानव ज्ञान से तपे हुए परम्परित अनमोल रत्न होते हैं। इनके अनुभव पृष्ठों में जीवन के घटना-व्यापार स्पष्ट दिखाई देते हैं। अत तमाम कहावतों की पृष्ठभूमि घटना परक होती है। लेकिन वह घटना-कथा लुप्त हो कर उपजमीन बन जाती है और समाज मन बुद्धि को प्रभावित कर एक मानस को पैदा कर देती है। बाद में स्वयं नष्ट भी हो जाती है। लाड रसेल ने कहावतों को अनेकों की बुद्धिमानी और एक की चतुराई बताया है।

राजस्थानी में बहुत सी ऐसी कहावतें मिलती हैं जिनके रंग रूप आकार प्रकार को देखकर तुरन्त मालूम कर लिया जाता है कि इसके पीछे कोई कथा है। विविध कथात्मक कहावतों के रूपों में से उदाहरण के तौर पर कुछ प्रस्तुत करता हूँ। जो किसी घटना के बाद प्रचलित हुई हैं।

१ आप आपरा कामा-कामा कर जका में छाजें।
कूकर काज गधो कर करें चोरा मूसळ बाजें॥

एक कुत्ता अपने मालिक के घर सदैव रखवाली किया करता था। वह दिन में तो चोरी बहुत मुस्तैदी से किया करता मगर रात को कभी सिर भी नहीं टेकता। एक दिन कुत्ते के मन में रात भर सुख से सोने की इच्छा प्रकट हुई। उसने अपने परम मित्र गधे को घर की रखवाली करने के लिए तैयार किया। तब गधा सबके सो जाने पर उस घर का पहरेदार बना और उसने कुत्ते को बेफिक्र सो जाने के लिए मुक्त करके उपयुक्त स्थान पर भेज दिया।

कुत्ते की अनुपस्थिति के कारण उस रात को घर में चोर घुस गये। पहरेदार गधे ने उनको देखा और जोर जोर से रेंकना आरम्भ कर दिया। उसकी कड़ी आवाज को सुनकर घर के सब लोग जाग पड़े। क्योंकि गधे के बोलने से उन लोगों की नींद में बाधा पड़ी। वे जाग रहे थे। अतः उन्होंने गधे की पीठ पर मूसल (लठ्ठ) के कई वार किये और उसे घर से बाहर निकाल आये। चोर एक बार तो चुप हो गये परन्तु सबके सो जाने पर माल असबाब निकालकर ले गये।

सवेरा हुआ। सब लोग उठे। घर की चोरी का पता लगा तो सब बड़े उदास हुए। अधिक हानि के कारण गधे की चतुराई और अपनी मूर्खता पर वे बहुत पछताए। गधा भी मूसल की मार से दुखी था।

आप आपरा कामा कामा करै जका में छाजें।
कूकर काज गधो करै जद मपरो मूसळ बाजें॥

ऐसी कहावतों की कहानियां सभी देशों में प्रचलित हैं। परन्तु बहुसंख्यक राजस्थानी कहानियों के पीछे रहस्यमयी रमणीक और नीति पूर्ण कहावतें सम्पन्न हैं। इनके प्रचलित वाक्य तो एक दो ही बोल जाते हैं पर पीछे की

प्रकट करने वाली, निर्धन एक संबंधी, ऋतु-नक्षत्र और त्योहार विषयक, तथा जुगत संस्कारों की प्रबलता प्रकट करने वाली, नारी विषयक एवं नारी चरित्र संबंधी, पुरुष स्त्रियों के नामों वाली, ईश्वर की शक्ति और कृपा का परिचय देने वाली आदि आदि विषयों पर बहुत सी कहावतें चलती हैं। गुजराती भाषा के प्रसिद्ध कवि मांडण ने अपनी प्रबोध बत्तीसी में ठीक ही लिखा है कि—अवनी रही उखाणा भरी, तो किम सकाई पूरी करी? अर्थात् पृथ्वी कहावतों से भरी है, जहाँ से खोदिये कहावतें निकल पड़ेंगी।

इस विषय के भारतीय और अभारतीय सारे प्रकाशित ग्रंथों की नामावली [लेखकों सहित] मैंने इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में लिखी है। यहाँ केवल राजस्थानी भाषा से संबंधित कहावती पुस्तकों की सूची ही लिख रहा हूँ— १ मारवाड़ रा ओखाणा [लक्ष्मण भाय] २ मारवाड़ी वेदर प्रोवर्ब्स [लालचन्द विद्याभास्कर] ३ मारवाड़ी कहावतें [जोधपुर] ४ मारवाड़ी कहावतें [श्री जगदीश सिंह गहलोत] ५ मारवाड़ की कृषि कहावतें [वही] ६ गुजराती कहावत संग्रह [दुलीचन्द शाह] ७ मालवी कहावतें [रतन लाल मेहता] ८ मेवाड़ी कहावतें [श्री लक्ष्मी लाल जोशी] ९ राजस्थानी कहावतें [भाग क और ख श्री स्वामी और व्यास] १० भीलों की कहावतें [फूलजी भाई भील] ११ राजस्थानी कहावतें [श्री कन्हैया लाल—हिन्दी संगम मंडल कलकत्ता] १२ राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन [डा सहल] इनके अलावा राजस्थानी कहावतों के बहुत से निबंध भी प्रकाशित हुए हैं। हमारे पास भी कहावतों की सैकड़ों कहावत प्रकाशित और अप्रकाशित संग्रहीत हैं।

कहावतों के इतिहास से तो यह सुस्पष्ट है कि कहावतें Fragments of wisdom हैं। अनुभव दुहिता हैं, ज्ञानविज्ञान की रश्मियां बिकीर्ण करने वाली ऐसी मणियां हैं जिनका प्रकाश आज भी मन्द नहीं पड़ा है और यावच्चन्द्र दिवाकर वे अपने अंतर्हित सत्य के बल पर जगमग करती रहेंगी। [राजस्थान वीर जनवरी १९६१]

६

पहेली

पहेली, प्रवाद और अन्य पहेली — ईश्वर की सृष्टि रचना की महत्ता के प्रथम प्रश्न के साथ मानव मस्तिष्क तक की तरफ बढ़ा और उसने सूर्य, चन्द्रमा, उषा, वायु, अग्नि को अपने अपने कार्य में अटल परिश्रम करते देखा। तब तत्काल उसके सामने इस लीला का एक बड़ा प्रश्न पहेली का रूप धारण करके आ टिका। परमात्मा की सृष्टि सचमुच विश्व की आदि पहेली है। उसे सुलझाने के लिए असंख्य युगों से विश्व के सहस्रों दार्शनिक योगियों ने साहित्य रचना की है। आज भी मानव का ज्ञान विज्ञान, आचरण-संस्कृति और शोध उपलब्धियां इस सृष्टि की पहेली के प्रति सतत सजग हैं। मानव और पहेली का प्राचीन संबंध यही है

> क्रीडा गोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्ण मंत्रणे।
> परव्यामोहने चापि सोप योगा' प्रहेलिका ॥ [1]

अर्थात् – खेल गोष्ठी तथा विनोद काल में प्रहेलिका जानने वाले पारस्परिक विचार विनिमय अर्थात् परामर्श एवं श्रोतृ वृन्द को मोहित करने के लिए अर्थात् आश्चर्य चकित करने के लिए इसका उपयोग करते हैं। वेद ज्ञान राशि के प्रमुख स्रोत हैं और उनमें पहेलियों के सुन्दर तथ्य उपलब्ध हैं। ब्रह्म निरूपण की कतिपय शक्तियों के वर्णन में पहेलियों का अतुल प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल का १६४ वां सूक्त जिसमें ५२ मंत्र प्राय प्रहेलिकामय हैं। उसी के दसम् मंडल के ७५ वें सूक्त के प्रथम १२ मंत्र पहेलियां-स्वरूप हैं। समय-तथा इसीलिए ऋग्वेद को पहेलियों का वेद कहा है। डा सत्येन्द्र ने लिखा है— पहेलियों को संस्कृत में ब्रह्मोदय भी कहा गया है। वैदिक मंत्र में प्रचलित ब्रह्मोदय शब्द का अर्थ—ब्रह्म – चैतन्य और उदय— जागृत करना रहा होगा, यही निश्चय है।

---

१ साहित्य दर्पण दशम् परिच्छेद पृष्ठ ४११।

पहेली शब्द संस्कृत के उसी ब्रह्मोदय का प्रयोग एवं प्रहेलिका का उद्भव रूप है। हमारे देश मे इसका प्रचलन वैदिक काल से पाया जाता है। पहले यह अश्वमेध यज्ञ मे अनुष्ठान का एक प्रकार माना जाता था। अश्व बलि से प्रथम होता एव पंडित ब्रह्मोदय पूछते थे। अन्य देशों में भी उस समय पहेलियों को अनुष्ठानिक महत्ता प्राप्त थी। दी गोल्डन बो, सर्ग भाग पृष्ठ १२१ पर फ्रेजर महोदय ने लिखा है कि पहेलिया की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन होगी। उसी परम्परा में कई स्थानों पर कतिपय जातियां आज भी विवाह संस्कार के समय पहेली बुझाने का काम शुभ मानती है।

वेद से पूर्व भी इस मौखिक साहित्य ने वेद निर्माताओं को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। ऐसा ऋग्वेद में आये हुए प्रश्नावलियों से ज्ञात होता है। संस्कृत साहित्य में जिन ६४ कलाओं का उल्लेख मिलता है उनमें पहेलियों की भी गणना आई है। यथा—अन्तर्लापादि।

मनुष्य मनोविनोद के बिना नहीं रह सकता। लोगों का मनोरंजन, साहित्य, संगीत, नृत्य और काव्य से होता है। भारतीय साहित्य ऐसे मनोरंजक विषयों से भरपूर है। उसमें विभिन्न विषयों पर प्रमोदार्थ अनेक तरीकों से बुद्धि मथन तथा ज्ञान विकास के तत्वों को दिलचस्प बहार है। पहेली साहित्य इसका एक नमूना है। इसलिए पहेलियों को हम केवल ज्ञान-वैभव एवं ज्ञान वर्धना का ही माध्यम नहीं मानते उनका बुद्धि-मापक यंत्र भी कह सकते हैं। ये बाल-मनोरंजक के सिवाय समाज विशेष की मनोदशा को प्रकट करने वाली रुचिकर रश्मि मणियां है। अत कहा जा सकता है कि पहेलियां मनुष्य सभ्यता के साथ ही उत्पन्न हुई हैं। तभी तो इस पुरातन पहेलियों की ज्ञान-गरिमा को देखकर आश्चर्य दांतों में उंगलियां लगानी पड़ती है। ये आदिवासियों की शान और आर्येतर जातियों में ज्ञान की खान स्वरूप प्रस्थापित हैं। आर्यों तक आते आते तक तो यह प्रथा बिल्कुल पुष्ट हो चुकी थी। संस्कृत में इसके प्रहेलिका, अर्थ कूट श्लोक, अन्तरालाप बहिरालाप, बहिरस्त प्रश्न आदि प्रश्न पश्च प्रश्न, उत्तर प्रश्न आदि अनेक भेदापभेद हैं। अग्नि पुराण में गोष्ठियों में वाग्द्वन्द्व जैसे कुछ शब्द गुम्फन विधा के सात भेद किये गये हैं। उसमें से यहां व्यापक गूढ़ का प्रयोग होता है उसे प्रहेलिका कहते हैं। प्रहेलिका में शाब्दी और आर्थी दो भेद बताये हैं। शाब्दी प्रहेलिकाओं के अन्तर्गत भेद प्रभेद मिलते हैं। अनेक आचार्य शास्त्रियों के साथ दंडी ने सोलह प्रकार की गूढ़ पहेलियों के लक्षण और चौदह दुष्ट पहेलियों के लक्षण दिए हैं। उक्त प्रकारों का नामोल्लेख करना आवश्यक है। वे ये हैं—समागता वंचिता व्युत्क्रान्ता, प्रमुदिता, समानरूपा, परुषा

हस्यता, प्रकल्पिता, नामान्तरिता, निभृता, समानशब्दा संमूढा, परिहारिका, एकच्छन्ना, उभयच्छन्ना और संकीर्णा।

समय पाकर पहेलियों में दृष्टिकूट, उलटवांसी, मुकरियां आदि आ मिली हैं, सिद्धों द्वारा दार्शनिक तथा रहस्यात्मक विवेचन, संतों द्वारा उक्तियों को चमत्कृति एवं प्रभाव पूर्ण बनाने के तरीके और लोक-जीवन में विनोद और बुद्धि परीक्षा के प्रयोग होने लगे। आगे इनका परम्परित पथ बन गया।

महाभारत काल में वेदों की हजारों वर्ष पुरानी इस परम्परा के सूत्र को स्वीकार करके लौकिक एवं साहित्य रुचि का सहयोग प्रदान किया गया। युधिष्ठिर से पूछे गये यक्ष के प्रश्न तथा उनके उत्तर लोक और साहित्य की अनुपम वस्तु हैं। यह बीज वेदों के ब्रह्मोदय के रूप में वपन किये गये आधुनिक लोक-गीतों की पहेलियों के परम्परित प्रेरक हैं।

सन्तों की उलटवांसियां विषय का ढंग और सधुक्कड़ी भाषा में पहेलियों का साहित्य लोक जीवन की प्रिय निधि बन गई है। तांत्रिकों ने, वज्रयानी सिद्धों ने इस उल्टा कथन प्रवृति को अपने सिद्धान्त भावना के रहस्यों में लपेटकर लोक सुलभ तथा व्यापक बनाया। इस में लोक-साहित्य तथा समाज और शास्त्र की प्राचीन मान्यताओं को उपेक्षित किया गया। यहां आप प्रथम एक गोरख वाणी का रसास्वादन करें जो कबीर की उलटवांसियों की मूल प्रेरणा है—

१ सुन्दर मछा जलि मुसा पाणी में बो लागा।
मरहट बड़ी तुसाळवा सुळे कांटा भागा॥
२ समदर लागी लाग नदि जळ कोयला भयी।
देख कबीरा जाग मंछी रुखां चढ़ गई॥
३ कुंवर को कीरी मिलि बैठी सिंघाई खाई अघानो स्याळ।
मछरी अग्नि मांहि सुख पायी।
४ पंगु चढ़ची पर्वत के ऊपर मृतक देखि डरानो काल।
जाको अनुभव होइ सु जाने सुन्दर ऐसा उल्टा ख्याल॥ १

एक विस्मय बोधक पहेली और देखिये—

(एक अचंभा देखा रे भाई ठाढ़ा सिंह चरावै गाई॥टेक॥
पहले पूत पीछे भई माई चेला के गुरु लागे पाई॥
जल की मछली तरवर ब्याई पकड़ बिलाई मुरगे खाई॥
बैलहि डारि गूनि घरि आई कुत्ता को लै गई बिलाई॥
तलि करी साखा ऊपरि करी मूल बहुत भांति जड़ लागे फूल।
कहै कबीरा या पद को बूझै ताकूं तीनूं त्रिभुवन सूझै॥ २

बड़ी रहस्यमयी पहेली है—सिंह खड़ा गाय को चरा रहा है [अर्थात्

१ सुन्दर ग्रंथावली पृष्ठ ५१० [सं १] २ कबीर ग्रंथावली पृष्ठ १६३ (पद १११)

स्थिर ज्ञान द्वारा अनुप्राणित वाणी उचित रूप में स्फुरित हुआ करती है] पुत्र का जन्म हो चुकने पर माता का आविर्भाव हुआ [अर्थात् जीव का शुद्ध रूप माया द्वारा परिच्छिन्न होने के पूर्व विद्यमान था] चेलों के पैरों पर गुरु माथा टेक रहा है [अर्थात् निर्मल चित्त के प्रति ब्रह्म स्वयं आकृष्ट हो जाता है अथवा मन स्वयं वशीभूत हो जाता है] जल में रहने वाली मछलियों ने वृक्ष पर जाकर अंडे दिये। [अर्थात् मूलाधार के निकट वर्तमान कुंडलिनी मेरुदंड के ऊपर जाकर फलप्रद हुई] बिल्ली को पकड़ कर मुर्गे ने खा लिया। [अर्थात् ज्ञानोपलब्धि हो जाने पर मन दुर्नीति को नष्ट कर देता है या सर्वथा त्याग देता है] बैल को बाहर छोड़कर गूण स्वयं घर को लौट आई। [अर्थात् स्वरूप में स्थिति हो जाने के पहले ही शरीर के प्रति उपेक्षा का भाव आ गया] कुत्ते को बिल्ली ले भागी। [अर्थात् अज्ञानी पुरुष को माया ने बहका लिया] शाखा नीचे की ओर हो गई और जड़ ऊपर चली गई [अर्थात् प्राणों के ऊपर चढ़ाये जाते ही इन्द्रियां वश में आ गईं अथवा सृष्टि का मूल ऊपर की ओर है। और उसका विस्तार नीचे की ओर है] तथा उसमें अनेक प्रकार के फूल फल भी लग गये। [अर्थात् सुषुम्ना के अन्तर्गत षट चक्रों का अस्तित्व है] कबीर का कहना है कि जो कोई इस पद के रहस्य को समझ लेता है, उसे त्रिभुवन की सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

यहां एक ऐसा राजस्थानी का अटपटा निर्गुण भजन लिख रहा हूं सो विचारें, भजन काया पर है।

> माटी पड़ै कुम्हार में घाटी में खोम रही लकड़ी
> धरती बरसै अम्बर भीजै काटै बिरछ कुहाड़ा छीजै
> म्हारी धरम ध्यान सू भीजै लोही गई लुहार में
> बाळी में आ गई मकड़ी ॥ १
> के कपड़ा धोबी ने धोवे बीज पकड़ हाळी में बोवे
> दुखिया हाँसै, सुखिया रोवे म्हारी ध्यान विचार में,
> ना रही मूरख संग लकड़ी ॥ २
> के कपड़ा दरजी ने सीवै, रोटी पकड़ मिनख नै जीमै
> बलदाँ खाय दूध वा घी में सोनी गई सुनार में
> भट मूर्ख बिलाई पकड़ी ॥ ३
> बणिया तुलै तराजू तोलै आंधा देखै गूंगा बोलै
> वंदू कर्म कोई चातरक जोलै पत्नी में पड़ी पंचार में
> अब गली आ गई संकड़ी ॥ ४ घाटी में खोम रही लकड़ी।

यद्यपि सगुण मार्गी सन्तों को ऐसी प्रतीकात्मक आश्चर्य जनक उलट कथा कहने की कतई आवश्यकता नहीं पड़ी और न उन्हें अपने आराध्य देवों के चरित्र

शिव के वचन में ऐसी कभी अखरी तथापि लोक जीवन की इस अद्भुत शैली
से वे सर्वथा लोभ संवरण नहीं कर सके। अतः सूर और तुलसी की अमर
कृतियों में इस बुद्धि-चमत्कार एवं प्रहेलिकात्मक शैली के पर्याप्त उदाहरण मिलते
हैं। सूर का एक दृष्टिकूट पद देखें — कहत कत प्रदेसी की बात।

मंदिर अरध[1] अवधि हरि बदि गये[2] हरि आहार[3] चलि जात।
अजिया भख[4] अनुसारत[5] नाहीं कत के दिवस सिरात[6]।
ससि-रिपु[7] बरष, भानु रिपु[8] जुग सम, हर रिपु[9] किय फिर घात।
मघ[10] पच में ले गये स्याम घन ताते जिय अकुलात।
नखत वेद ग्रह जोरि अरधकरि[11] को बरजे हम खात।
सूरदास प्रभु तुमहि मिलन को कर मींडत[12] पछतात।

इसी परम्परा में लोक साहित्य के गीतों को लोकायनी कवियों ने पहेलियों युक्त
बना दिये हैं। एक छप्पय देखें —

सारंग[13] में दृग सास, माथ सारंग[14] की सोहत।
सारंग[15] ज्यूं तनु स्याम बदन[16] लखि सारंग[17] मोहत।
सारंग[18] सम कटि[19] हाथ माथ बिच सारंग[20] राजत।
सारंग[21] माथे अंग देखि छवि सारंग[22] लाजत।
सारंग[23] भूषण पीत पट सारंग[24] पद सारंग[25] धर।
रघुनाथ दास बदन करत सीतापती रघुवंश वर।

यह पहेली परम्परा मध्य युग में आकर गूढ़ता गम्भीरता की जगह हास्य मनो
रंजन, विरोधाभास मंडन और आश्चर्यजनक परिस्थिति के पथ पर आरूढ़ हो
गयी। इस काल में खुसरो जैसे कवियों की सरस शृंगारिक पहेलियां, मुकरियां
और अनमेल ढकोसले लोकजीवन निरीक्षण - परीक्षण तथा चित्रण सहित बड़े
प्रचलित हुए हैं। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने बारहवीं तेरहवीं शताब्दी की हिन्दी
कवियों के साथ खुसरो की पहेलियों तथा मुकरियों का भी विवेचन किया है।
बीरबल आदि अन्य कवियों ने भी इस काल में पहेलियों को लिखा है। इसमें
धार्मिक पौराणिक, दार्शनिक तथा पारलौकिक प्रसंगो के स्थान पर अपने निकट

---

१ पक्ष १५ दिन। २ कह गये। ३ सिंह का भोजन (मास महीना) ४ बकरी का भोजन (पत्ती-पाती)। ५ नहीं भेजते। ६ बीते। ७ चन्द्रमा का शत्रु (दिन) ८ सूर्य का शत्रु (रात्रि) ९ कामदेव। १ मघा नक्षत्र से पांचवां नक्षत्र (चित्रा चित्त–चित्त) ११ नक्षत्र २० वेद ४ ग्रह ९=४० का आधा २० (विष) १२ मलते हैं। १३ कमल। १४ सोना। १५ सारस। १६ मुख। १७ चन्द्रमा। १८ सिंह। १९ कमर। २ नाग। २१ कर्पूर। २२ कामदेव। २३ सुहावने रंगीन। २४ कमल। २५ अनूप। [सारंग धारण करता]

के कारण ये हैं— १ एक ही वस्तु या तथ्य के लिए बहुत से शब्दों का प्रयोग। २ शाब्दिक भाव से इनका संबंध नहीं रहता। ३ इसमें प्रकट को गुप्त रखने की चेष्टा की जाती है। ४ ये बुद्धि कौशल के आधार पर चलती हैं। दूसरी ओर कहावत में सूत्र प्रणाली होती है। इसमें भाव की मार्मिकता घनीभूत रहती है और लाघवता व विस्तृत अर्थ व्यक्त करने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

पहेली मनुष्य की विकसित विधा का व्यावहारिक नमूना है। इसके अर्थ की कई लोगों में तलाश की जाती है। राजस्थान में यह सदा से उत्तम कोटि का मनोरंजन माना गया है। आज भी रात्रि के समय लोक-समूह में विनोदार्थ बड़े उत्साह से आपस में आडी डाली जाती हैं। इस कार्यक्रम से लोगों का श्रम परिहार एवं मनोविनोद संपन्न होता है। इसमें जीवन की उपयोगी वस्तुओं के कथन होते हैं। कुछ नमूने की वस्तुएं लिखी जाती हैं। मिसाइये—दीमक, भाग, हुक्का खाट भोजन, सामग्री, बंदूक, तलवार, कागज, कलम, पशु-पक्षी, खेत खलिहान, पेड़ पौधे, चांद तारे, सूरज चांद, बावड़ी और सरोवर आदि की झांकियां पहेलियों में गुम्फित रहती हैं। इनमें अनुभूतियों, मनोभाव, घटनायें, दिनचर्या, हास परिहास और ज्ञान लोक की ज्ञान-ज्योति को पनपाया जाता है। बालकों में बुद्धि बल एवं कौतूहल की उत्पत्ति होती है, जिससे जटिल समस्यायें सुलझाने की प्रवृत्ति बुद्धि का भंडार भरता है।

ऐसी कुछ पहेलियां दी जा रही हैं इनका भी अवलोकन कीजिये—

१ बिना फूंक बजावै बाजा बिना राज रै बाजै राजा। कही मामेसा कुण है राजा? (इन्द्र राजा)

२ बिना बैल माळियां रांधी बिना रोयां गैंवा पोषी। राती पीळी ओढ़ ओढ़णी कहदे क्यों रांधे रांधी। किम री बीनड़ किम री रांधी? (बीर् रांधी)

३ डोसर पांन बणामण वाडी बिना कुमार घड़ीजै हांडी। बिना कमावकी बनाईजै वही मरद रै पेट पलती वही? (मतीरो)

४ काची नारी कचकची भर जोबनियें वारी। मैं तनै पूछूं बालमा बूढी क्यूं व्हे प्यारी? (काकड़ी)

५ सिर केसर मुरगा नहीं नीलकंठ नहीं मोर। सांवी पूछ लंगूर नहीं चार पांव ना ढोर? (गिरगट)

६ ठंडी ठंडी चवी गिराळी मैं जाणी पांणी सूं काळी। समंदर परणी री दैरांणी, हो बाबू मैं पांणी पांणी? (बरफ)

७ कर नहीं मैं खाऊं पीवूं करें नहीं मैं चलूं। सदा रावळै घरां स्याळी, चोकीदारी करूं? (ताळो)

८ बिना पांख कुण उड़ जावै? काळी चढ़ अकास दिखावै? (धूंवो)

९ अरे कहांणी मैं कहूं सुणले म्हारा पूत। बिना पांखां ऊंची उड़ै बांध गळै में सूत? (पतंग)

१० पीळी पोळी पपली, मूळै री सी कपसी। खावै न पीवै, ईनैं देख देख जीवै ? (रुपया)

११ चार चौकड़ी मेळी बानर, तीन घोड़ा अेक असवार ? (रुपया)

१२ घांटी टेढ़ी घेरदो गळी गळी में रस, ई भाखी रो अरथ बतावो रिपिया देउं दस ? (जलेबी)

१३ धोरी सो कुरमाराव, कपड़ा पेहरे सौ पचास ? (प्याज)

१४ मण रांद भीरे सात बीसी गांठ ? (बालणी)

१५ छोटी सी लकड़ी तामक तैया मीठी लागे रे भैया ? (चारक)

१६ छोटी सो मीमसो राजा भेळो जीमलो ? (मक्खी)

अलंकार शास्त्रियों ने पहेली को अलंकार माना है। जैसे - प्रहेलिकालंकार

प्रसंगि न उत्तर अर्थ, कछु शब्द के फेर।
सो प्रहेलिका होय विधि सब्द प्रर्थगत हेर॥

१ देखी अेक अनोखी नारी गुण उसमें इक सब से भारी।
पढ़ी नहीं यह अचरज भावै, मरना जीना तुरंत बतावै॥ [हाथ की नाड़ी]

२ लक्ष्मीपति के कर बसै पांच बरन गनि लेब।
पहिलो अक्षर छोड़िके भाय हमें किन देब॥ [सु-दर्शन]

राजस्थानी पहेलियां वस्तु के गुप्त वर्णन के ढंग से बड़ी महत्व पूर्ण हैं। ये कई तो प्रश्नोत्तर के ढंग से चलती हैं और कई परिजन सवाद के रूप में। वार्तों और गीतों से भी इनका अधिक प्रचलन है। इनका अर्थ [पहेली] पूछते समय किसी के बाप दादे को भाई अथवा कुम तक की उपाधि देवी जाती है। उक्त बात पूछने के साथ ही कही जाती है। अत श्रोता के लिए पहेली बुझाना [अर्थ लगाना] आवश्यक हो जाता है।

१ गळा में गांठ पूठी में घूमड़ी।
ई भाखी री अरथ बता भीं बाप दादी डूमड़ी। [मकोड़ी]

२ छोटी सी टिकड़ी पीळो रंग पाई।
ई भाखी री अरथ नी बतावो बाप दादो नाई। [चना]

३ चार नार चिट्टू पिट्टू एक नार लंबी।
ई भाखी री अर्थ नीं के बाप दादी भंगी। [पंजो]

गूढ़ार्थ पदों की भांति पहेलियों के गोपनीय उल्लेख बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं। इनमें बेटी जाया बाप, मरद के पेट रखी बेटे का जन्म मां बाप से प्रथम बीस गीमला गाव अस्सी जीवड़िया पेट पण पाणी सिर बास्दे [आग] बाटे, पानी न बिना सीरा बनाना वाड़ी वाले छोकरे का बाजारों में बिकना फूल द्वारा बेल को खा जाना, मुरदे का आटा खाना आदि गोप्य वर्णन हैं, जो कहीं कहीं ऐसे क्लिष्ट कल्पनायुक्त हो जाते हैं कि पढ़ लिखे लोग भी

ग्रामीणों की इस विनोद-वार्ता का सही उत्तर देने में असमर्थ हो जाते हैं।

राजस्थान में एसी असंख्य पहेलियाँ हैं, जिनमें ऐसा उत्तम ग्रामज्ञान स्पष्ट झलकता है। आन-उर्वरग वाली यह राजस्थानी भरा पहेलियों में भी लोक बुद्धि उर्वरा की परिचायक है। किसी भी नया वस्तु का आविष्कार लोक के सामने आता है, वह तुरन्त पहेली का रूप धारण कर लेता है। इसलिये रेलगाड़ी, पोस्टकार्ड, पेंसिल और हवाई जहाज पर कैसी उपयुक्त पहेलियाँ बनी हैं।

१ एक लमी हम मावत देसा स्याम धन्त बरसी में रेसा।
हाथ सिराही मवळ पावें ब्याही है वर दूढ़त जावें। [रेलगाड़ी]

मंगल गान के साथ यह ब्याई है, किन्तु वर ढूंढ़त जावे दृष्टव्य है। टिकट लिया हुआ यात्री उसका पति है, फिर भी वह रुक रुक कर नये वरों को खोजती है।

२ धोळी धरती काळा बीज बावण वाळो जावें रीझ। (पोस्टकार्ड)

सफेद कागज [धरती] काली स्याही से लिखे हुए बीज रूप अक्षर विषय वस्तु के विषय में सार्थक है, जिन पर लिखने वाला [बावण वाला] रीझ जाता है।

३ बक मूर्खो बामणी फिरतो चाक बिगी।
पाटी मामी मदम काटी पाछो बामण चाव लिखी। [पेंसिल]

४ गरज गरज मन चाली फिरें तीन पता री मछली तिरें। [हवाई जहाज]

५ गूंग बुध री बनसी खेक कान री कवी।
ब किमो इयें पार फैंका धाई उर्व पार। [टैलीफोन]

हास्य और विनोद मनुष्य जीवन का एक तत्व है। लोक साहित्य में ज्ञान म्दोल्लास की रोचक भावनायें इसमें पाई जाती हैं। राजस्थानी में आडी माडन वाला [वक्ता] ललकार कर बूझने वाले [श्रोता] की ज्ञान परीक्षा करता हुआ कहता है — आडी मेसी क पाडी ? का गिरियों सूखो पाडी ? इस पर श्रोता उत्तर देता है — 'पाडी मूंगा। वह गिरियां सूपी पाडो का अर्थ भी सूथण [पाजामा] बता देता है। वक्ता फिर पूछता है — 'माम सावें ओमसी क, सेंग्री साग ? श्रोता – माम साथ। इस तरह के वार्तालाप के बाद आपस में दोनों आडी आडना शुरू करते हैं। जो बड़ा मनोरंजन का सुन्दर प्रसंग बनता है। और भी लोग सुनते हैं। राजस्थानी गीतों में भी स्त्रियां एकत्रित होकर चतुराई से पहेलियां पूछती हैं। उनमें मान-सम्मान वाले विशेषण लगाकर जवांई के प्रति स्नेह प्रदर्शित किया जाता है। गीतों में दोहों के द्वारा चुनौती, छल और गालियां भी दी जाती हैं। एक गीत देखिये —

नाजुकिया जवाँई म्हारी मरुधी री धर्म बी
थारी सूरता करो बी विचार। — अर्थ क्यो

टेक – मी बापा री पेट में ढोला मो मोसेरै जाय
मजो कई रौ फेर जबूं काळा में बै बाय
रही मूवी खाट में कोई पग फळसे सूं बार
थ बोबो तो बतावदो, मैं बागे बाळा मैं मी बूम्म
बाप बड़ो बटो भलो ढोला, पोतो बड़ो सपूत
पड़पोतो रो पलमियो ढोला सोळै मूठी उत
मैं सूं पैला नई जलम्यो ढोला, पछै बड़ो भाई
दूध मरक बाबो जलम्यो पछै जलमी बाई
मायर बेटी रो जब ढोला रयो बिच मच मरतार
बाप बेटो रो बचायो, ज्यां बिच मेकम नार
चतर हुए सो बतावदे ढोला, मूरख सूमोजै घास
मानिया भवाई राजन, म्हारी पहली रो अर्थ बतो

अर्थात् हे भले भवाई आप हमारी पहेली का अर्थ बता दीजिये। आप अपनी अकल से ठीक विचार करके अर्थ बताइये या साथ वालों को भी पूछ लीजिये।

१ मैं पूत जन्मे हैं जो पेट में हैं जो ननिहाल चले गए हैं। मेरी इच्छा हो तो और भी जन्म सकती हूं मगर अकाल के समय ये क्या खायेंगे? अब बताइये।

[काचर की बेल]

२ बाबा घर की खाल [कमरा] के अन्दर तो रहा है और उसके पैर दरवाजे के बाहर निकल गये हैं। यथार्थ अर्थ बताइये। [दीपक]

३ बाप अच्छा है, बेटा अच्छा है और पोता भी ठीक है। मगर पड़पोता बिल्कुल सपूत है। अर्थ बताइये। [दूध, दही, घी और छाछ]

४ सबसे पहले मेरा जन्म हुआ फिर बड़ा भाई जन्मा बाद में बाप का जन्म हुआ इसके बाद बहिन का जन्म हुआ। अर्थ दें। [दूध दही घी और छाछ]

५ मां बेटी दोनों के बीच एक पति है। अर्थ — (काजल का कपला)

६ बाप और बेटे दोनों के बीच एक नार। अर्थ — (आरती दर्पण)

यदि कोई चतुर होगा तो इन सारी बातों का अर्थ बतायेगा और मूरख के लिए तो केवल घास काटने के समान है। भवाई हमारी पहेलियों के अर्थ बता दीजिये।

इस तरह की पहेलियों वाले गीत यहां काफी मिलते हैं। इनमें रळो बधा बधो, बरप वाळो सुपनो और आमो मोळियो आदि गीत प्रसिद्ध हैं। इनमें अलं कार और छन्द भी यथा उपस्थित होते रहते हैं। लोकगीतों की तरह राजस्थानी कथाओं में भी पहेलियां बुझाई जाती हैं। डा सत्येन्द्र ने इन्हें बुद्धीबल कहानियों में सम्मिलित किया है। परन्तु इसका एक रूप, पहेली भी बताया है। उदाहरण १ मन री बाप? २ प्यार री मां ३ होण री मैण ४ अणहोत री भाई ५ बिगड़ी री मीत ६ बंकळ नगरी सावै सो सोवै। राजस्थानी में इस तरह की पहेलीयुक्त कहानियां पर्याप्त हैं। इनका उपयोग लौकिक जीवन में ज्ञान की

ग्रामीणों भी इस विनोद-वार्ता का सही उत्तर देने में असमर्थ हो जाते हैं।

राजस्थान में ऐसी असंख्य पहेलियाँ हैं, जिनमें ऐसा उत्तम ग्रामज्ञान स्पष्ट झलकता है। ज्ञान-उभरा वाली यह राजस्थानी धरा पहेलियों में भी साफ बुद्धि उभरा की परिचायक है। किसी भी नयी वस्तु का आविष्कार लोक के सामने आता है, वह तुरन्त पहेली का रूप धारण कर लेता है। इसलिये रेलगाड़ी पारटाइ, पेंसिल और हवाई जहाज पर कसी उपयुक्त पहेलियाँ बनी हैं।

१ एक सखी हम पावत देखा। श्याम घटा बग्गी मे रेखा।
हाथ सिरोही मखठ मारे ब्याही है बर ढूंढत पावे। [रेलगाड़ी]

मंगल गान के साथ यह ब्याई है किन्तु वर ढूंढत भावे दृष्टव्य है टिकट लिया हुआ यात्री उसका पति है फिर भी वह रुक रुक कर नये वरों को तलाशती है।

२ धोळी धरती काळा बीज बावण वाळो गाव रीझ। (पोस्टकार्ड)

सफेद कागज [धरती] काली स्याही से लिखे हुए बीज रूप अक्षर विषय वस्तु के चित्रण में सार्थक हैं, जिन पर लिखने वाला [बावण वाला] रीझ जाता है

३ अक मुर्गो चामड़ो फिरतो जाब दियो।
पाती सारी गदन काटी पाछी चालण भाव दियो। [पेंसिल]

४ धरम धरम नभ चाकी फिरै तीन पखां री माछली तिरै। [हवाई जहाज]

५ सूत सुत री बग्गी भेक कांच री कप्पी।
म जिसो इण पार, फैसा पाई वर्द पार। [टेलीफोन]

हास्य और विनोद मनुष्य जीवन का एक तत्व है। लोक साहित्य में आनन्दोल्लास की रोचक भावनायें इनमें पाई जाती हैं। राजस्थानी में आडी आने वाला [वक्ता] ललकार कर बूझने वाले [श्रोता] को ज्ञान परीक्षा करता हुआ कहता है — आडी लेसी क पाडो? का गिरियां सूधो माडो?' इस पर श्रोता उत्तर देता है — 'पाडो सूथा। वह गिरियां सूधी आडी का अर्थ भी सुथण [पाजामा] बता देता है। वक्ता फिर पूछता है — 'मास सावे बीमसो क, सैसो साम?' श्रोता — मास सावे। इस तरह के वार्तालाप के बाद आपस में दोनों आडी आड़ना शुरू करते हैं। जो बड़ा मनोरंजन का सुन्दर प्रसंग बनता है। और भी लोग सुनते हैं। राजस्थानी गीतों में भी स्त्रियाँ एकत्रित होकर जुंवाई से पहेलियाँ पूछती हैं। उनमें मान-सम्मान वाले विशेषण लगाकर जंवाई के प्रति स्नेह प्रदर्शित किया जाता है। गीतों में आड़ों के द्वारा चुनौती, व्यंग और गालियाँ भी दी जाती हैं। एक गीत देखिये —

मालिया जवांई म्हारी भड़ची री धर्म री
थारी सुरता करो नी विचार। — धर्म रूपी

परीक्षा के लिए होता है। गीता और बातों की भांति कहीं कहीं पद्यात्म पहेलियाँ भी मिलती हैं। मगर ये शब्दों में दिखाई देती हैं, अर्थ में नहीं। जैसे-

१ मूंपी मु मूंपी करी बिना समझ्या यार,
बापको काम निकाळ के मूंपी कीनी मार — (प्रोवसी)

२ आकडू हाकर डाकडू डाळ्यो
गाडियो देखकर डंडियो पमारयो— [कुम्हार का चाक]

आगे पर भी ऐसी अनेक पहेलियां हैं।

कुछ की पहेलियों का नीचे लिखे अनुसार वर्गीकरण किया है। डा सत्येन्द्र ने इन्हें सात वर्गों में बांटा है— १ खेती सम्बंधी २ भोजन सबंधी ३ घरेलू वस्तु सबंधी ४ प्राणी संबधी ५ प्रकृति सबधी ६ अग प्रत्यग सबंधी ७ अन्य डा सुकरलाल यादव और डा श्याम परमार भी इसी वर्गीकरण के पक्ष में दिखाई देते हैं। डा यादव एक पौराणिक वर्ग और मानते हैं। श्री मनोहर शर्मा ने राजस्थानी पहेलियों में गद्यात्मक और पद्यात्मक दो प्रकार बताये हैं। श्री ओम प्रकाश अनूप ने मालवी पहेलियों को गेय और अगेय नाम से दो भागों में विभाजित किया है।

पहेलिया के विवेचन से ज्ञात होता है कि इनमें बहुत से ऐसे शब्दों की योजना होती है जिनका अर्थ प्रस्तुत में तो कौतूहल पूर्ण होता है, मगर प्रकरण में आकर उनमें अर्थ द्योतकता आ जाती है। कहीं पर पादपूर्ति के लिए शब्द प्रयुक्त होता है और कहीं पर व्यंग अभिव्यक्ति के लिए। परन्तु ग्रामीण पहेलियों में अनूठी प्रक्रियां पाई जाती हैं। यथा — छ अक्षर अगमात बिना, पांडु सुत र नाम। चतुर हुए तो बतायदे महाजनवाटि म गाव। राजस्थानी की इस पहेली में एक ग्राम का नाम पूछा गया है जो बिना मात्राओं वाले छः अक्षरों से निर्मित है और पाडव पुत्र के नाम पर महाजनवाटी में बसा हुआ है। यदि आप [श्रोता] चतुर हैं तो पहेली के संकेत स्थानों को खूब खोजिये और पता लगा लीजिये कि इस ग्राम का नाम अरजनसर है। कितनी अच्छी और सार्थक है यह ग्रामीण स्थानीय पहेली।

राजस्थानी भाषा में सार्थक और निरर्थक दो प्रकार की पहेलियां होती हैं जिनका वर्णन आगे किया जा रहा है।

(अ) सार्थक पहेलियां — पहेलिया म हम सार्थक उन पहेलियों को कहेंगे जिनका गोपनीय अर्थ खोजने से सत्य निकल आता है। जसे — डोकर पोन अगामन हांडी बिना कुम्हार घडीजै हांडी। बिना अमावणी अमाईजै दई मरद रै पेट रनी रही। इसका अर्थ खोजने पर मिलता है — मतीरा जो हमारी बुद्धि मे पूर्ण रूप से जम जाता है। अत इसे हम सार्थक पहेली कहेंगे। ऐसी कुछ सार्थक पहेलियों के उदा

४ कोरी माटी तीपड़ी, जिमल बणें इक गाय।
राती हुय न पावणा, कहो वेसा किण न्याय। (पूत नहीं)
१ आगड़ बीचें गाळियां, बहनड़ रही रिसाय।
पंचारी नितियो नहीं कहो वेसा किण न्याय। (हिया नहीं)

कुछ प्रसिद्ध वस्तुओं के पहेलियों में विभिन्न प्रयोग —

१ असी मटी बीस बणाई, पांच मरद बिच एक लुगाई। [पसेरी]
२ एक नार पीहर री आई पांच ससम बस देवर लाई। [पसेरी]
३ माई उग्माव सू बठी गोडा मोळ, पकड़ हाथ पैरा दियो उभी हुई परोळ। [...]

इस मराठी की निम्नलिखित पहली से मिलाइये —

पक मद चांदणी बाटोम बार हलय माम काग बुझते फार।

यहां मिश्रण अर्थ की पहेलियां भी बहुत मिलती हैं। एक लौकिक आदर्श सम्मिलित अर्थों वाली पहेली का नमूना देखिये — इस पौराणिक पहेली भी क... जा सकता है।

एक बणी मेंडी वण्यी दूजी वण्यी न कोई।
एक बणो मेंडी बूबणी दूजो बूबणी न कोई।
एक बणी मेंडी मेंठपी दूजी न मेंठपी कोई।
एक बणी मेंडी स्वामी दूजी स्वामी न कोई।

[प्रभु, हनुमान, गणेश बाबीरा...]

निरथक पहेलियां —

राजस्थानी में ऐसी बहुत सी पहेलियां होती हैं जो निरर्थक ढंग से का... में लाई जाती हैं। ऐसी पहेलियां में पाद पूर्ति के लिए तुक का मिलाना आव... श्यक समझा जाता है। इनमें पहेली पूछने का मतलब प्रश्नकर्त्ता श्रोता से ... शब्दों द्वारा कोई काम करवाना चाहता है। इन कामों में काम्य और कौतूहल... का बाहुल्य रहता है। इनमें तुक के मिल जाने पर श्रोताओं के कानों को बड़... आनन्द आता है। निरथक पहेलियों में प्राय पशु-पक्षियों और प्राकृतिक वस्तुओं... से काम पूर्ण करवा देने की हिदायत होती है। जैसे प्रश्न कर्ता कहता है— जोध... पुर ऊअळी क्यूं? तब श्रोता उत्तर देता है— बबड़ी में मूमळी, जोधपुर ऊअळी। ... पहले बताया जा चुका है कि पहेलियों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है। अत... ये अन्य श्रोताओं को भी चोखें सिखा देती हैं। बच्चे तो ऐसे मौकों पर खिल-खिलाकर हंस पड़ते हैं।

कुछ उदाहरण—

हिरण चौरे लामा

तीर मारूं तक मारूं, चढ़ू मीळजूं चौरे
ऊभी थी फबाक मारूं हिरण ल्याऊं चौरे

चांव मोकर चकरी काढू मेरी माम सिपाई। १५ टोरड़ी का विवाह करवाना — ढोली करे ढुरक ढुरक बिसम करे चतुराई, राजाजी रा मेल में टोरड़ी परणाई। १६ डाकण का डेरा दिखा देना — दो हसती गई दो बिसरी गई मेरी बठया सांप चिड़े सांपां रै मूंडे सुई, बागर री भैंस्यां दूई। दूबता दूंबता आया म्हारे पीछे केसू रा काम केसू रै कामां रै मेरी मेरो दी दीख डाकण रो डेरो।

उक्त साखी में कई आखियां हैं। जैसे सांप चिड़ाना, बागर की भैंसें दुहा देना, केसू के काम दिखा देना और डाकण का डेरा बताना आदि सब निरर्थक पहेलियां हैं। ऐसी बहुत सी पहेलियां राजस्थानी भाषा में प्रचलित हैं। जिनका सांगोपांग वर्णन करना स्थानाभाव के कारण कठिन है।

यहां हम पहेलियों के प्रसंग को विसर्जित करते हुए पुन: कह देना चाहते हैं कि सारे विश्व की पहेलियां मानव सभ्यता के साथ ही उत्पन्न हुई हैं। कभी कभी स्थिति और देशकाल के अनुसार उनके रूप और प्रयोगों में अवश्य कुछ परिवर्तन हुए हैं। मगर उनकी मौलिक विशेषताएं ज्यों की त्यों हैं। विश्व के लोक साहित्य में पहेलियां अपना महत्व पूर्ण स्थान रखती हुई भी वे बाल साहित्य या मनोरंजन की वस्तु मानी जाती हैं। अत: लोक गीत, लोक कथा और लोकोक्तियों आदि के शोध कार्य या विवेचन में प्राय ये बहुत पीछे हैं। पहेली की इस उपेक्षा वृत्ति को मिटाकर हमें इसकी प्राचीन परम्परा की मान्यता को प्रमाणित करना चाहिये।

लोक प्रवाद — हमने राजस्थानी पहेलियों के अध्याय में लोक प्रवाद भी रखे हैं और लोकोक्ति के कुछ अन्य अंग भी। यहां हम पहले प्रवाद की चर्चा करेंगे और उसके कुछ पर्याय स्वरूप शब्द लिखेंगे। शब्द कोष म इनक अनेक अर्थ मिलते हैं? जैसे— प्रवाद— बोलना व्यक्त करना, लोगों म प्रचलित बात जनश्रुति, किंवदंती बातचीत, वार्तालाप चुनौति आदि आम जनता अपनी बात चीत क समय लोकोक्तियों, नीति की बातों और प[?] पंक्तियो का काम में लेकर अपने अभीष्ट विषय को सुन्दर एव प्रमाणित बनाती आई हैं। राजस्थानी भाषा में ऐसे अधिकतर पद्य सप्रसंग होते हैं। उन्हीं पद्यों को हम प्रवाद रूप में मानत हैं। प्रवाद लोक साहित्य का एक सरस अंग है। इसम विविध विषयों की मनोरंजक सामग्री होती है। प्रसंग वाले प्रवाद बड़े लोकप्रिय एवं मधुर होत हैं। समय और स्थान के कारण लोकस्वभावानुसार इनक रूप तथा पाठों में परिवर्तन भी पाये जाते हैं। राजस्थान में प्रवादों का विषयोदधि अथाह एवं अपार है।

प्रवाद अनेक प्रकार के मिलते हैं। इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक हास्य रसात्मक, उद्बोधनात्मक तथा नीति संबंधी बड़े ही सरस एवं चमत्कार पूर्ण प्रसंग मिलते हैं। श्री मनोहर शर्मा न अपनी त्रमासिक पत्रिका 'वरदा' म इन

[प्रवाद] मौखिक साहित्य के सात शतक तो प्रकाशित करवा दिये हैं। डा. महए
रे भी मरुवाणी पत्रिका में और राजस्थानी वीर नामक पत्र में कई ऐतिहासिक
और पौराणिक प्रवाद संग्रह करके प्रकाशित करवाये हैं। इसी विषय पर आपकी
स्वतंत्र पुस्तक भी है। रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने भी राजस्थानी लोक प्रवाद
विषय की एक पुस्तक लिखी है। आशा है अब यह विषय यहां अधिक समय तक
अंधकार में नहीं रहेगा।

प्रवाद प्राचीन वाक्य हैं। यह छोटे और सुमधुर होते हैं। अतः याद रख
कर प्रमाणित करने की वस्तु है। प्रत्येक बात की प्रमाण पुष्टि के लिए प्रवाद
मूक गवाह का काम देते हैं। इनमें हर समय मानव हित कामना का संचार होता
है। यह अनुभव एवं ज्ञान का अनुमान निम्नलिखित उदाहरणों में मिलेगा —

१ पौराणिक प्रवाद—कुम्भकरण ने युद्ध से पूर्व अपने अग्रज [रावण] को
सीता के लौटाने की बात कही। तब मार्मिक उत्तर मिला—

गुण कुम्भा रावण कहै भाय परायां तक।
पायां पड़ियां ना रहै आंकां मातां सक॥

कैसा सद्धांतिक वाक्य है कि होनी है सो तो होकर ही रहेगी। फिर स्व
सिद्धांत का त्याग क्यों? आज भी हमें उक्त प्रवाद यथा समय दृढ़ता का पाठ
पढ़ाता है।

२ ऐतिहासिक प्रवाद — प्राचीन समय में एक बार बारहठ वीरदान जी
नाम के एक कवि, जालोर गढ़ाधीश नवाब कमाल खां के पास गये। इस हिन्दू
कवि के मिलने पर नवाब ने कुट्टण शब्द का प्रयोग किया जो उस समय हिन्दू
के लिए निरादर सूचक शब्द था। इस पर कवि ने उसका समादर करके निम्न लिखित
कवित्त छन्द सुनाया—

कुट्टण तेरा बाप जिके लाहोरी लुट्टी।
कुट्टण तेरा बाप जिकै सिरोही कुट्टी।
कुट्टण तेरा बाप जिकै बायबरड़ बोया।
कुट्टण तेरा बाप जिकै पूरा का पखोया।
कुटिया प्रसन्न कामां किता भूंमि धर नाके बरा।
मो कुट्टण ने कर कमल खां तू कुट्टण किणिया तरा।

यह प्रवाद आज भी हमें जबान की करामात बता रहा है।

इसी प्रकार रावत जी के सिर पर विवाह का सेवरा [मोड़] देखकर
दादूदयाल जी ने चेतावनी दी—

रावत हैं गज्जब करयो माथै बांध्यो मोड़।
मायी भी हर भजन नैं करी नरक में दौड़॥

घाव मोकर पसरी काढूं मेरी गाम सिगाई। १२ टोरड़ी का विवाह करव
ढोलो करै ढुरड़ ढुरड़, बिमन करै चतुराई राजाजी रा मैल में टोरड़ी पर
१६ डाकण का डेरा दिखा दना— दो दमड़ी मई दो बिसरी गई, मैड़ी
सांप पिड़े सांगा रै मूड गूई, बागर री मैंस्यां दूई। दूंकता दूंकता बाया।
मे वीरो केछू रा बाग नकू रै नागां रै मरो मेरो बो बीस डाकण री डेरी।

उक्त आडो म कई आडियां हैं। जस सांप पिडाना, बागर की मैंसें देना, बसू मे काग दिखा देना और डायन का डेरा बताना आदि सब निर पहेलियां हैं। ऐसी बहुत सी पहेलियां राजस्थानी भाषा में प्रचलित हैं। मि सांगोपांग वणन करना स्थानाभाव क कारण कठिन है।

यहां हम पहेलियों के प्रसग का विसर्जित करते हुए पुन कह देना चा हैं कि सार विश्व की पहेलियां, मानव सभ्यता के साथ ही उत्पन्न हुई हैं। क कभी स्थिति और देशकाल के अनुसार उनके रूप और प्रयोगों में अवश्य कु परिवतन हुए हैं। मगर उनकी मौलिक विशषताएं ज्यों की त्यों हैं। विश्व लोक साहित्य में पहेलियां अपना महत्त्व पूर्ण स्थान रखती हुई भी वे बाल-साहि या मनोरजन की वस्तु मानी जाती हैं। अत लोक गीत लोक कथा और लोको क्तियों आदि के शोध कार्य या विवेचन में आज ये बहुत पीछे हैं। पहेली की इस उपेक्षा वृत्ति को मिटाकर हमें इसको प्राचीन परम्परा की मान्यता को प्रमाणित करना चाहिये।

लोक प्रवाद — हमने राजस्थानी पहेलियों के अध्याय में लोक प्रवाद भी रखे हैं और लोकोक्ति के कुछ अन्य अग भी। यहां हम पहले प्रवाद की चर्चा करेंगे और उसके कुछ पर्याय स्वरूप शब्द लिखेंगे। शब्द कोश में इनके अनेक अर्थ मिलते हैं? जैसे— प्रवाद— बोलना व्यक्त करना लोगों में प्रचलित बात, जनश्रुति, किंवदंती, बातचीत, वार्तालाप चुनौति आदि आम जनता अपनी बोल चाल के समय लोकोक्तियों नीति की बातों और पद पक्तियों को काम में लेकर अपने अभीष्ट विषय को सुन्दर एवं प्रमाणित बनाती आई है। राजस्थानी भाषा में ऐसे अधिकतर पद्य सप्रसग होते हैं। उन्हीं पद्यों को हम प्रवाद रूप में मानते हैं। प्रवाद लोक साहित्य का एक सरस अंग है। इसमें विविध विषयों की मनोरंजक सामग्री होती है। प्रसंग वाले प्रवाद बड़े लोकप्रिय एवं मधुर होते हैं। समय और स्थान के कारण लोकस्वभावानुसार इनके रूप तथा पाठों में परिवतन भी पाये जाते हैं। राजस्थान में प्रवादों का विषयावधि अथाह एव अपार है।

प्रवाद अनेक प्रकार के मिलते हैं। इनमें पौराणिक ऐतिहासिक हास्य रसात्मक, उद्बोधनात्मक तथा नीति संबंधी बड़े ही सरस एवं चमत्कार पूर्ण प्रसग मिलते हैं। श्री मनोहर शर्मा ने अपनी त्रैमासिक पत्रिका 'वरदा' में इस

> चांद मोकर मारी कापूं मेरो गाम गिलाई। १४ टोरड़ी का विवाह करवाना – गोरी करै डुरड डुरड, मिलन करै चतुराई, रामजी रा मन म टोरड़ी बरवाई। १६ डायन का डेरा दिखा देना – दो दमड़ी गई, दो बिमड़ी गई, मैंड़ी बच्चा गोर फिरै सांगो रै मूड गूई, बागर री मँस्यां डूई। डूंगता डूंगता बाधा माघ म दीगै भेड़ू रा काम बछू रै भागो रै मरो गरो बो ढीम डाकण रो डेरो।

उक्त आटो म भई आडियां हैं। जरा गोर चिडाना, बागर की भसुँ डुहा देना, बसू पै काग दिखा देना और डायन का डेरा बताना आदि सब निरथक पहेलियां हैं। एसी बहुत सी पहलियां राजस्थानी भाषा म प्रचलित हैं। जिनका सांगोपांग वणन करना स्थानाभाव क कारण कठिन है।

यहां हम पहेलियों के प्रसंग का विसर्जित करते हुए पुन कह देना चाहते हैं कि सार विश्व की पहेलियां मानव सभ्यता के साथ ही उत्पन्न हुई हैं। कभी कभी स्थिति और देशकाल के अनुसार उनक रूप और प्रयोगों में अवश्य कुछ परिवर्तन हुए हैं। मगर उनकी मौलिक विशेषताएं ज्यों की त्यों हैं। विश्व के लोक साहित्य म पहेलियां अपना महत्त्व पूण स्थान रखती हुई भी वे बाल-साहित्य या मनोरंजन की वस्तु मानी जाती हैं। अत लोक गीत लोक कथा और लोकोक्तियों आदि के शोध काय या विवेचन म आज ये बहुत पीछे हैं। पहेली की इस उपेक्षा वृत्ति को मिटाकर हमें इनकी प्राचीन परम्परा की मान्यता को प्रमाणित करना चाहिये।

लोक प्रवाद — हमने राजस्थानी पहेलियों के अध्याय में लोक प्रवाद भी रखे हैं और लोकोक्ति क कुछ अन्य अग भी। यहां हम पहले प्रवाद की चर्चा करेंगे और उसक कुछ पर्याय स्वरूप शब्द लिखेंगे। शब्द कोश म इनके अनेक अर्थ मिलते हैं ? जसे– प्रवाद– घोषना व्यक्त करना, लोगों में प्रचलित बात जनश्रुति किंवदंती, बातचीत, वार्तालाप, चुनौति आदि आम जनता अपनी बोल चाल क समय लोकोक्तियों, नीति की बातों और पद्य पंक्तियों का काम में लेकर अपने अभीष्ट विषय को सुन्दर एवं प्रमाणित बनाती आई है। राजस्थानी भाषा में ऐसे अधिकतर पद्य सप्रसग होते हैं। उन्हीं पद्यों को हम प्रवाद रूप में मानते हैं। प्रवाद लोक साहित्य का एक सरस अग है। इसमें विविध विषयों की मनोरजक सामग्री होती है। प्रसंग वाले प्रवाद बड़े लोकप्रिय एवं मधुर होते हैं। समय और स्थान के कारण लोकस्वभावानुसार इनके रूप तथा पाठों में परिवर्तन भी पाये जाते हैं। राजस्थान में प्रवादों का विपयोदधि अथाह एव अपार है।

प्रवाद अनेक प्रकार के मिलते हैं। इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक हास्य रसात्मक, उद्बोधनात्मक तथा नीति सबंधी बड़े ही सरस एव चमत्कार पूर्ण प्रसंग मिलते हैं। श्री मनोहर शर्मा ने अपनी त्रमासिक पत्रिका 'वरदा' में इस

सावन गोरी प्रेम की, मत सीचो तणकाय,
दूदणां पाणी सांचसो, मांठ बीच रह जाय।

आखिर लोगों के कहने से बारहठजी को बुलवाया गया। बारहठजी ने आकर झाड़ा [मंत्र] दिया, सांप का जहर उतर गया। कुंवर होश में आकर हंसने-खेलने लगा। तब ठाकुर खुश हुआ। उसने बारहठजी से भी खोल कर मिलने की आशा प्रकट की। लेकिन ठाकुर मिले तो बारहठजी का मुंह दीख जाये। कैसे करें ? आखिर एक उपाय निकाला गया। एक कपड़े की कनात [परदा] लगाकर उसके अन्दर दो बड़े-बड़े छेद करवाए गये। उसमें से दोनों हाथ निकाल कर बारहठजी से सीना मिलाकर मिलने के लिए ठाकुर तैयार हुए। पर बारहठजी ने यह स्वांग देखा तो वे मिलने से बिल्कुल इन्कार हो गये। उन्होंने कहा—कांई हुं भाखा पियां, हूंत बिहूणा हरम। नैण सनूणा ना मिळै तो बाळ मनूणी बरम। इस पर ठाकुर ने कनात तोड़ डाली और बारहठजी से दिल खोल कर मिले।

राजस्थानी में इस तरह के नीति-नियम वाले प्रवादों की बहुतायत है। लोक-प्रवाद भी अनेक मालोदर की महिमा है। यह जनता जननी की कोख को उज्ज्वल करने वाले हीरे हैं। इनकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई घटना अवश्य रहती है। कठिन समस्यायें, उच्चानुभाव एवं जीवन संसृति के टेढ़े प्रश्न, जब तीव, सूक्ष्म और आकर्षक वाक्यों द्वारा प्रचलित होते हैं, तब प्रवाद - प्रकाश फैलता है। यही व्याख्या प्रवाद कहलाती है। प्रवाद और पहेलियां दोनों लोकोक्ति के ही रूप हैं परन्तु राजस्थानी में कहावतों के कुछ पद्यबद्ध अन्य प्रकार भी प्रचलित हैं। उन्हें हम अन्य शीर्षक में लिखेंगे।

अन्य – १ अणमेळ बेसळा मे कोकड़—इसमें अनमेल बातों के टोटके होते हैं। इनके पहले चरण में गति होती है, पर दूसरे में नहीं। इसकी अनमेल और निरर्थक बातों से विस्मय की वृद्धि होती है। अन्तिम चरण की पंगु गति छंद की सुन्दरता को नष्ट करके कड़ी प्रवृत्ति वाली प्रतिक्रिया पैदा कर देती है। उदाहरणार्थ –

१ जिड़क बैस पीपळ चढ़ी गंडक लुगाई गाय।
चमक हूम नीचे पड़यो बेड री दूदणो हाथ बरड़ बट्ट सापस में दूं
२ गुवाड़ बीचाळै पीपळी म्हूं जाण्यो बड बोर।
बेई उठार देखूं तो होळी आडा दिन तीन।
३ ऊंट करणा मींगणा पड़पड़ बाजी ताली।
साप पड़ोसण मूसळ जोरा भाजी रासी।
४ गुवाड़ बीचाळै पींपळी म्हूं जाण्यो बड बोर
बेई मना बाई तो बणा मकिया पांम
सुपायो कांदा नेस्यी पे चिणा री दाळ मा [आक]

इसमें आश्चर्य के साथ हास्य भी आ गया है। राजस्थान में इनका प्रयोग

यह हित की बात सुनकर रज्जब जी ने सारा काम छोड़ दिया।

३ हास्य रसात्मक प्रवाद — एक दिन किसी घर के एकाकी जीवन वाले ठाकुर के यहां एक मेहमान आ उतरे। प्रातः का समय था, ठाकुर ने मेहमान को घर बिठा दिया और स्वयं पानी का घड़ा लाने को बाहर निकला। ऐसा निकला कि शाम क्या रात भर घर नहीं आया। मेहमान तो दोपहर तक रोटी का इन्तजार करके किसी दूसरे के घर जा ठहरा मगर उसी दिन से यह प्रवाद चल पड़ा—

> बुग घाले बेठाय कर, गंगुक चमकी जोन।
> पाक मसक मनुवार री खिसक गयी खुम्माण।

सियार के सिर पर कभी कभी बुग नामक कीट उड़कर बैठ जाता है तब वह उससे पीछा छुड़ाने के लिए अपने मुंह में सूखे गोबर का उपला लेकर तालाब में घुस जाता है और धीरे धीरे अपने सारे शरीर को पानी में डुबा कर उस कीट से पीछा छुड़ा लेता है। सियार इस तरह से डुबकी लगा कर बच निकलता है।

४ उद्बोधनात्मक प्रवाद — पुरातन पुरुषों ने कई बातें बहुत बुरी बताई हैं। उनका सदैव ध्यान रखना ही उत्तम है।

> बां भर्यां री वाट बुरी, रांपड़ केरी घाट बुरी।
> माटी री वाट बुरी कुवे री पाट बुरी,
> टूम्बोड़ी वाट बुरी बावळ्यां री कांट बुरी।
> छांनी बात कूं सिवर्क देवी सारदा कालू गांव में क।

इनसे बचकर रहना ही उत्तम है।

५ नीति संबंधी प्रवाद—

> कोई दुवे भावां किया, हेत विहूणा हत्य।
> नैण उकूणा ना मिळै तो, बाळ मसूणी वत्थ॥

गांव के एक ठाकुर और बारहठजी में गहरी मित्रता थी दोनों आपस में एक दूसरे को बहुत चाहते थे। एक जगह खाते एक जगह रहते और साथ ही ब्राह्म मुहूर्त में जाया आया करते थे। यदि कोई एक इधर-उधर होता तो दूसरा उसका घर बार संभाला करता था। ठाकुर के समाजादि कामों को बारहठ पूरा करवाता तो बारहठ के खेती के कामों में ठाकुर हाथ बंटाता।

इतने पर भी एक बार दोनों में लड़ाई हो गई। राजस्थानी कहावत 'बड़ी भांत फूटगी सबी हेत टूटण में' के अनुसार उनकी मित्रता टूट गई। ठाकुर ने बारहठ को अपने गांव से निकाल दिया और प्रतिज्ञा करली कि इस बारहठ का कभी मुंह नहीं देखूंगा। बारहठ गांव छोड़कर चला गया, ठाकुर इससे बड़ा खुश हुआ।

एक बार ठाकुर के कुंवर को सांप ने काट खाया। कुंवर का कोमल मुख तत्काल मुरझा गया। वह रोता और बिल-बिलाता हुआ बेहोश हो गया। तब ठाकुर को याद आया कि उसका पुराना दोस्त बारहठ सांप का मंत्र जानता है। वह सांप के जहर को तुरन्त उतार दिया करता है। मगर उसको कैसे बुलावें?

साजन डोरी प्रेम की, मत खींचो तमकाय,
टूट्यां पाछै सांधसो, गांठ बीच रह जाय।

आखिर लोगों के कहने से बारहठजी को बुलवाया गया। बारहठजी ने आकर झाड़ा [मंत्र] किया, सांप का जहर उतर गया। कुंवर होश में आकर हंसने-खेलने लगा। तब ठाकुर बड़ा खुश हुआ। उसने बारहठजी से भी खोल कर मिलने की आशा प्रकट की। लेकिन ठाकुर जिद थी बारहठजी का मुंह दीख जाये। कैसे करे? आखिर एक उपाय निकाला गया। एक बड़े कपड़े की कनात [परदा] लगाकर उसके अन्दर दो बड़े-बड़े छेद करवाए गये। उसमें से दोनों हाथ निकाल कर बारहठजी से सीना मिलाकर मिलने के लिए ठाकुर तैयार हुए। पर बारहठजी ने यह स्वांग देखा तो वे मिलने से बिल्कुल इन्कार हो गये। उन्होंने कहा—काई ईं पाणी पियां, हेत बिहूणा हत्थ। नैण समूणा ना मिळै तो बाळ मसूणी बत्थ। इस पर ठाकुर ने कनात तोड़ डाली और बारहठजी से दिल खोल कर मिले।

राजस्थानी में इस तरह के नीति-नियम वाले प्रवादों की बहुतायत है। लोक-प्रवाद भी अनेक भावादर की महिमा है। यह जनता जननी की कोख को उज्ज्वल करने वाले हीरे हैं। इनकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई घटना अवश्य रहती है। कठिन समस्यायें, उच्चानुभाव एवं जीवन संसृति के टेढ़े प्रश्न, जब छोटे, सूक्ष्म और आकर्षक वाक्यों द्वारा प्रचलित होते हैं, तब प्रवाद प्रकाश पकड़ता है। यही व्याख्या प्रवाद कहलाती है। प्रवाद और पहेलियां दोनों लोकोक्ति के ही रूप हैं परन्तु राजस्थानी में कहावतों के कुछ पद्यबद्ध अन्य प्रकार भी प्रचलित हैं। उन्हें हम अन्य शीर्षक में लिखेंगे।

रूप—१ अणमेळ वेसळा नै कोकड़—इसमें अनमेल बातों के टोटके होते हैं। इनके पहले चरण में गति होती है, पर दूसरे में नहीं। इसकी अनमेल और निरर्थक बातों से विस्मय की वृद्धि होती है। अन्तिम चरण की पंगु गति छंद की सुन्दरता को नष्ट करके कड़ी प्रवृत्ति वाली प्रतिक्रिया पैदा कर देती है। उदाहरणार्थ —

१ चिड़क भैंस पीपळ चढ़ी गडक गुडाई लाप।
चमक भूम नीचे पड़पी डेड री टूट्यो हाथ चरड़ चट्ट छाजल में धूं
२ गुवाड़ बीचाळै पीपळी म्हैं बाल्यो बड बोर।
जेई उठार देखूं तो होळी आवा दिन तीन।
३ ऊंट करपा नीपमा पड़पड़ बाजी ताली।
आप पड़ोसण मूसळ डोरा बाजी राली।
४ गुवाड़ बीचाळै पीपळी म्हैं बाल्यो बड बोर
जेई मना नाई तो, बला मांडिया आम
सुआयो कांदा लेस्यो थे बिना री डाळ सा [आक]

इनमें आश्चर्य के साथ हास्य भी आ गया है। राजस्थान में इनका प्रयोग

७

बाल लोक साहित्य

राजस्थान में बाल-लोक साहित्य का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इस में कथा एवं गीतों से, व्यापक, खेल संबंधी, मनोरंजन संबंधी, सुलावा-बढ़ावा और वीरता आदि की अनेक तुकबन्दियाँ या छंद होते हैं। निर्मम, प्यारे और मुदित करने वाले वाक्य तो बाल-साहित्य में भरपूर हैं। इन्हें वाणी विलास या क्रीड़ा वांगमय भी कहा जा सकता है। ये मानसिक श्रम एवं गात्र श्रम के साथ संयुक्त हैं। इस वांगमय के क्रीडित वाक्य, कथा, सूत्र और गीत गान बच्चों के चरित्र निर्माण में बड़े सहायक हैं। ये उनकी जीवन यात्रा के मार्ग दर्शक रूप में अत्यंत उपयोगी रत्न एवं शिक्षा नीति के उज्ज्वल सितारे हैं। अतः हम यहाँ बाल-लोक साहित्य को निम्न लिखित तीन भागों में बाँट कर निरूपण करेंगे।

१ खेलों में वाणी विलास, २ क्रम संयुक्त बाल कथाएं और बाल गीत, ३ सुलावा बढ़ावा और स्फुट काव्य।

खेलों में वाणी-विलास — बाल सुलभ प्रवृत्तियों में खेल शारीरिक एवं मानसिक विकास का सरलतम साधन है, विश्व के सर्व शिक्षा शास्त्री बालक की शिक्षा-दीक्षा वृद्धि हेतु खेलों का उपयोग समुचित बताते हैं। उछलते कूदते हुए हँसमुख बालकों को जिसने देखा है उसे पता है कि खेल क्या वस्तु विधान है। यों तो मल्ल-युद्ध कबड्डी, हॉकी, गेंद-बल्ला टेनिस फुटबॉल, दौड़ना तैरना, वृक्षों पर चढ़ना गुल्ली-डंडा आदि अनेक प्रकार के खेल हैं, मगर मवासीय राजस्थानी लोक खेलों में राई राई, लूणिया-घाटी सत्ता-साळी, हड़दड़ो, भिमदड़ो, काठकठूली, गड्डा, चोर कूंडियो, उसी घुसी जैसे प्रादेशिक खेल भी बड़े मनोरंजक एवं रमणीय हैं। इन सब में वाणी विलास के बोल बड़े सुन्दर होते हैं। इनसे मनोरंजन और व्यायाम, दोनों साथ साथ होते हैं। ताश, चौपड़, शतरंज, करमबोर्ड, सिरगो आदि कई खेल घर के अन्दर खेलने के हैं। इनसे मात्र मनोरंजन होता है, व्यायाम नहीं। अतः ये उतने लाभदायक नहीं।

का दूसरा प्रस्तुत हो जाता है। गेंद का चिप (लोप) लेने पर भी सामने क
प्रस्तुत खिलाड़ी (जो गेंद फेंकता है) मृत हो जाता है। किन्तु एक टप्पे की
गेंद लोप लेने पर वह मृत होता है। दो तथा दो से अधिक टप्पों की गेंद लोपने
पर वह नहीं मरता। यदि गेंद फेंकने वाले के ही पाले में गेंद तीन टप्पे खाने
जाय तो वह स्वयं मर जाता है।

जब दोनों दलों में से किसी एक दल के समस्त क्रीड़क मर जाते हैं, तब
विजयी दल उन्हें पिदाते हैं। पिदने वाला दल हड़दड़ से बहुत दूर भगा जाता
है। विजयी दल का प्रत्येक क्रीड़क गेंद के टोरे [चोट] लगाकर पिदाता है।
जिस पिदाने वाले की गेंद, पिदने वाले में से किसी के द्वारा लोपली जाती है, तो
वह बैठ जाता है अन्यथा वह लगातार पिदाता रहता है। जब तक पिदाने वाले
सब बैठें नहीं, पिदाना बराबर चालू रहता है। टोरा ऊकने से ही बैठना
होता है। सभी पिदाने वालों के बैठ जाने पर खेल का एक दाव समाप्त हो जाता
है। फिर दूसरा दाव इसी प्रकार से प्रारंभ किया जाता है।

टोरे लगाते समय का बोली विलास —

पैली पली पतियो बापू रै जायो घतियो
दो तारी बात हुई भारी पिदियै भेड़ मारी
तीन तारण के से मावेरा री मारण
चार चुरंग सट लाल सुरंग
पांचली कूचली फाड़ में आई से कुवरिया घर में आई
छका छाकी बेरो है पिदिये नै आधी रात रो फेरो है
साता खोटी क्यूं खाई पिदियो रोवै क्यूं भाई
आठा गाळी रा गेहूं काठा बांध कांकरा माटा
पूरा नौ नाव पिदिय रै घरै नाची न बाव
दसूड़ी दड़िया री छावी बोड़ी बेन अपेड़ी ल्यावी, ऊपर पिदियै नै चढ़ावी
ग्यारह खोटी कच्ची है थारै टोरा सच्ची है
तेरूड़ी लड़ाई है, थारै म्हारा भाई है
चमरियां री पोल पीक सोखियै री जान जाऊं
सत्तर-सत्तर रा गाबा आया पिदिया म्हारा गाबा ल्याया
अठारै रो बेड़ बेड़ पिन्नियो म्हारै घर री बेड़
उगणीसां रो घड़ो गड़ो पिदियै घावै जाय घड़ो
दूबर बीटी रप्ती है बीसां टोरा पच्ची है

अंतिम टोरे पर — बरस पाणी पिदिय नै सौ बरस भाजो पाणी।

इस तरह से विजयी दल बीस टोरे लगाते हुए बोलता है और पिदने वा
आध में भरकर उनका टोरा चुकाते हैं। अत यह हड़दड़े का खेल विनोद विना
तथा शक्ति प्रदायक साधनों में श्रेष्ठतर है।

रो पाठ सुकाया। गायां फाड दिया। गायां बाछण क्यूं फोड़्या ? गुवाळी
नीं। गुवाळो परावो क्यूं नीं ? बाई बाटी नीं देवें। बाई बाटी क्यूं नी
योनणी आटो नीं पोवें। आटो क्यूं नीं पोवें ? चाको मायें पांवणा ब
पांवणा चाकी क्यूं बैठा हो ? बरसा मग्स है। बरसा क्यूं बरसो हो
शिव। योजळ क्यूं खोंवो ? इन्दर घररावे। इन्दर क्यूं घररावो ? मोरिय
मोरिया क्यूं बोलो ? बोलांला भी बोलांला, म्हांर दादो सा रो देस।
कहानी में क्रम संबद्धता टूटती नहीं, सीधी तीर की तरह अपने लक्ष्य
चली जाती है। कई कहानियां पीछे लौटती हैं और सक्षम होते हुए भी
हीन सी रहती हैं पर यह तो सोद्देश्य एवं सफल होकर चलती है।

३ एक आश्चर्यमयी कहानी— एक लड़का अपनी मौसी के लिए
से लकड़ी लाने जाता है। वहां उसको शिव पार्वती द्वारा वरदान मि
और वह 'शिव म्हाराज री चिप्पम चिपा' कहकर सब को चिपका द
इस चमत्कारिक कार्य के लिए मां बाप से आदर पाता है।

इसमें पर्याप्त विनोद भावना व्याप्त है। कथा पूर्णरूपेण सक्षम एव
है। आकर्षक एवं आश्चर्यमय भी।

एक आदमी का कमेड़ी के साथ ब्याह — एक आदमी ने कमेडी से विवाह
उसने कमड़ी को घरवालों से अलग मालिये में बैठा दिया। एक बार उस
पर किसी का विवाह होना निश्चित हुआ। घर की औरतें दिन को बनाहि
करती। कमेड़ी अपनी पांती के वे सभी कार्य रात को कर दिया करती
उसका पति बरात में गया तब पीछे से वह प्यास के मारे ममुद्र पर चली
वहां उसको शिव पार्वती मिले और उसे सुन्दर स्त्री बनायी।

इस कथा में योनि परिवर्तन है। लोक कथाओं में असंख्य मूल अभिप्र
से योनि परिवर्तन नामक मूल अभिप्राय अत्यन्त विस्तृत व्यापक और महत्
है। लोक-कथाओं में इस अभिप्राय के अनेक रूप उपलब्ध रहते हैं। य
अधिक जगहों पर शिव पार्वतीजी की किसी घटना द्वारा पूर्ण होता है।
चलते दम्पत्ति में से पार्वतीजी किसी घटना को देखकर रूठ जाती हैं और
महादेव को वह कार्य करना पड़ता है।

जो भी हो, लोक-कथाओं में यह 'योनि परिवर्तन' अत्यन्त प्रचलित
परम सुभावना, मनोरंजन का साधन है। लोक कथाओं में ऐसे मनोरंजक
आश्चर्यजनक अभिप्रायों का अनेक प्रकार से उपयोग होता है। कहीं कहीं
भी प्रस्तुत हो जाता है। इसमें पशु पक्षियों के स्वभाव की भी झलक आ जाती

बाललोक साहित्य के जड़ और चेतन सभी बराबर जगत में मा
प्रतिष्ठित मिलेगी। शेर, भालू, चूहे चिड़िया पर्वत झरने, पेड़,

व जानने एवं अनुभूति रखने वाले होते हैं। नीचे एक ऐसी पद्य-कथा लिख रहा
, जो बच्चों में खूब प्रचलित है।
. चिड़िया कौए की प्रथम कहानी — एक चिड़िया को कहीं से मोती मिल
ा। उसका किसी कौए ने झपट कर छीन लिया और गजड़ पर जा बैठा
ड़िया ने खेजड़ से कहा — ' ऐ गजड़ा गजड़ा काग उड़ा खेजड़े ने इन्कार कर
ा और आगे सभी लोग एक ही उत्तर देते रहे। तब चिड़िया कहती है —
खेजड़ो काग उड़ावै नीं, खाती खेजड़ काटै नी राजा खाती डंडै नी रांणी राजा सू
नी मूसो कपड़ा काटै नीं, बिल्ली मूसो मारै नीं कुत्तो बिल्ली रोकै नी डांग कुत्तो
रै नी बिसन्दर डांग बाळै नीं, समन्दर बिसन्दर बुझावै नी हाथी समन्दर झिकोळै नी
ंटी रोकती रैवै नी।

तब चिड़िया चींटी के पास गई। चींटी ने चिड़िया का कहना मान लिया
र कहानी पीछे चल पड़ी। मोती मिल गया।

पूर्व कथित अंशों की पुनरावृत्ति बालकों को जिज्ञासा प्रेरणा प्रदान करती
। इस प्रकार की कहानियों का कोई पात्र अपनी किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए
प्रयास करता है। पशु-पक्षियों, मनुष्य, जड़ अथवा चेतन पदार्थों से भी
हायता चाहता है। फिर प्रार्थना की असफलता बदला लेने का भाव एवं
खिर में किसी छोटे कीड़ का तैयार हो जाना ही कहानी को पीछे मोड़ता
। क्रम संपृक्तता टूटती जाती है और प्रत्येक जीव अथवा पदार्थ भय के कारण
राक उस एक पात्र के काम को करने के लिए तैयार हो जाता है। इस
हानी से यह शिक्षा मिलती है कि किसी जीव को छोटा मत समझो। चींटी
सा क्षुद्र जीव हाथी जैसे शक्ति सम्पन्न प्राणी को मार गिराता है। यह बात
मंडी आदमियों की व्यर्थता सिद्ध करने लिए तीखा व्यंग है।
. चिड़िया और कौए की द्वितीय कहानी—एक चिड़िया और एक कौआ बहिन
ाई बने। साझे में खेती की और सुख से रहने लगे। चिड़िया कौवे को काम
रने खेत बुलाती तब वह खुद यह कहकर टाल देता कि—

आऊं वे आऊं, आमलिया अटकाऊं, बो कांचा पाका तन्ने ही ल्याऊं।
त का सारा कार्य चिड़िया कर लेती है। अन्न बंटवारे के समय मूर्ख कौआ
पने आप थोथे फूस का ढेर ले लेता है और अन्न चिड़िया को मिल जाता है।

इस में एक भोली बहिन को धोखा देने वाले नायक की हठ धर्मी का
त्यक्ष प्रमाण है। दूसरी ओर सीधे आदमियों का भगवान साथी होता है यह
ी दिखाई देता है। इससे बच्चे खूब बहमते हैं।
) हंसाने बुलाने की लघु बंध कथा— चेक तागी। बरमी तारी। बाड़ कुवारी। बाड़ म्हनै
ता ? दि ? । बाटी मैं चूरी म रेड्यो। चूरी म्हनै बाटी दीनी। बाटी मैं कुमार नै दीनी।

इस पर दुकानदार ने टोपी के लिए कपड़ा दे दिया। फिर दर्जी के पास सिल वाने के लिए गया। दर्जी के इन्कार करने पर भी वही बात कहकर टोपी बन वाली। उसे लेकर राजा के महल में गया, राजा ने टोपी छीनली। तब चूहे ने कहा राजा के पास तो टोपी नहीं है। राजा ने टोपी वापस देदी। चूहा अपनी चतुराई पर खुश हुआ।

प्राणियों में कई चंचल जीव हुआ करते हैं। वे सदा इधर उधर फुदकते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। अतः ऐसी स्फूर्तिदायक कहानियां अनुपयुक्त नहीं जान पड़ती हैं। चतुराई की ऐसी कहानियां हितोपदेश में बहुत हैं। मानव भी ऐसे कार्यों में पीछे नहीं हैं।

१२ एक पाखण्डी स्त्री की क्रम संयुक्त कहानी — एक आदमी परदेश जाने के लिए तैयार हुआ। उसकी औरत अपने पति को बनाते हुए कहती है—मैं अकेली घर पर कैसे रहूंगी? इस पर उसके पति ने एक चरखा खरीद दिया और कहा साल भर कातते रहना। इसके बाद पति कमाने चला गया औरत घर पर मौज करती रही। कातने का नाम तक नहीं लिया। साल डेढ़ साल के बाद उसका पति लौट कर घर आया और सूत कातने का ब्यौरा मांगा। तब उसकी स्त्री ने कहा —

> एकम तो म्हारी पैसी बेरयूं, क्यूंकर चरखो कातूं पी राज।
> दूज में धूज तो म्हारी माथा बीज, क्यूंकर चरखो कातू ओ राज।

इस तरह से तीज, चौथ, पांचम, छठ, और अमावस्या पूर्ण्यूं तक, कातने के लिए पति पूछता गया औरत जवाब देती गई।

पुरुष अपनी स्त्री का ढोंग पहले ही पहचान गया था। उसकी समझी हुई बात सच हुई। वह परदेश से आकर चरखा कातने के विषय में प्रश्न पूछता है। तब स्त्री के वाक्य वाक्य में बात बनती है। राजस्थानी कथक का कहना है कि वेश में वाणी वर्ण ज्यूं पग पग मांवे बात वर्ण —। औरत तो शब्द शब्द में बातें बना देती हैं। उसकी वार्तों की धारा बड़ी सरस, स्वाभाविक तथा हृदयग्राही होती है। उनमें परम्पराओं, विश्वासों और आकांक्षाओं की चमक रहती है। इनके आरम्भ में मंगलाचरण बड़े मनमोहक ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं। ये मंग लाचरण भी क्रम - संयुक्त होते हैं। बांवलो का कांटा साढ़े सोलै हाथ हो सकता है। उसमें गांव आ जाते हैं। उन गांवों में और तो कोई नहीं पर तीन कुम्हार आकर बसते हैं। इस तरह कहानी के नाटकीय प्रारम्भ से सुनने वाले आकृष्ट हो जाते हैं। और कहानी सुनने के लिए उतावली व चाव इन्तजार करने लगते हैं। ऐसे मंगलाचरण प्राय बच्चों की कहानियों में आते हैं। कहीं गूढ़ बड़वाव भी आरम्भ में दिये जाते हैं।

११—कथा का क्रम युक्त मंगलाचरण

बात की बात, बात को फुरापात।
बावळी री कांटी साढ़े साठ हाथ।
ज्यां में बस्या तीन गांव, दो ऊजड़ अेक बसै कोनीं।
ज्यां में बस्या तीन कुमार दो मरग्या एक जीवै कोनीं।
जकां घड़ी तीन हांडी दो फोबरी अेक बाजै कोनीं।
ज्यां में रांध्या तीन चावळ, दो काचा अेक सीज्यो कोनीं।
ज्यां सूं जूम्या तीन बामण दो अरलीला अेक जीमै कोनीं।
जकां नै दीनी तीन गायां, दो बांझ अेक ब्यावै कोनीं।
जकां रा बट्या तीन रिपिया, दो खोटा अेक चालै कोनीं।
जका दिया सुनार नै उणनै रात नै रातींधो दिन नै सूझै कोनीं।

ये मंगलाचरण जन-पद में, कहानी के विज्ञापन का काम करते हैं। सिनेमा के [Trailer] की तरह एक लघु कथा बन जाती है। वह गद्यमय होते हुए भी पद्य का मिठास प्रदान करती है। मंगलाचरण की भांति उपसंहार भी पेश किये जाते हैं। कथा के पात्र सुख शांति से बस जाते हैं, तब कथक श्रोताओं को भी रसा-बसा कर देता है। कहता है —

इसी बात इसी गीत का सुणी तो कानां माखी भीन।
मोर्य रांधै पाडो दीनो जोडी हुयो हुस म्यो गीत में घुस।
पूरी हुई बात गधे मारी लात फूटगी परात।
गधे के मेरै पूंछ कोनी सुणणियां रै मूंछ कोनीं।

सुनने वाले बालक ही तो ठहरे। मूंछ कहां से हो? मूंछ आने पर बूढ़ी दादियां न तो कहानी सुनायेगी और न सुनने की फुर्सत ही रहेगी।

ऐसा ही एक दादी के मुंह बोला औपचारिक उपसंहार सुनिये—

थोड़ कहाणी मूंगा गांनी।
मूंग पुराणा सुणणियां रै सामरै रा मार्ड बामण सेव लाणा।

इस पर बच्चे हंसने लग जाते हैं। दादी जान जाती है कि बच्चे सब खुश हो गये तब वह कहती है —

म्हारी कहाणी दाय न आणी
घर मारेळ में पाणी आणी

पर बच्चों को तो सब पसंद है। उन्हें कम फिर सुनना है वापिस कैसे दें?

इन कथाओं के कहने सुनने का क्रम ही अलग है। अनोखे चित्र, हृदयों को आन्दोलित करने वाली घटनायें और नाना भांति के नायक सुख प्राप्ति के नित-नये स्रोत हैं। अन्य पदार्थों के साथ जड़ पदार्थ भी जीवित होकर बोलने लगते हैं। बालकों की हास्य प्रवृत्ति इन्हीं से हरीभरी रहती है। यहां सामाजिक,

रखती है। शेखावाटी और बीकानेर की ओर यह उत्सव बड़े उत्साह के रूप में मनाया जाता है। लेखक ने भी डूंगरगढ़ जैसे पड़ौसी शहर में इस खूब देखा है। इसकी पुनीत झांकियां पौराणिक लोकोत्सव गणेश चतुर्थी [भादवा सुदी ४] के दिन से एक पक्ष पूर्व ही तैयार होने लगती है। मदरसों के महाराज [गुरु] समाज द्वारा बड़े आमोद प्रमोद के साथ इस प्रथा को प्रोत्साहन देते हैं। यह एक कलात्मक अभिव्यक्ति है और सकड़ो वर्षों से शहरी जीवन के साथ घुलमिल कर आनन्द का कारण बनी हुई है।

चौक चांदणी भादवा की चौथ के सप्ताह भर पहले से प्रत्येक दिन नये रूप द्वारा निकाली जाती है। इसके दैनिक जुलूस बड़े दर्शनीय होते हैं। इनका निष्कासन काष्ठ के विशेष प्रकार के गाडुलों पर होता है। पहले वासर ये दो बांसों की, दूसरे दिन चार बांसा की तीसरे दिवस छ. बांसों की और फिर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करती हुई महत्वपूर्ण सजावट के साथ निकाली जाती हैं। बांसों पर दूल [लाल वस्त्र] की किनारी और उनके ऊपरी किनारों पर ध्वजा तथा संस्था के अपने नाम वाले साइन बोर्ड लगाये जाते हैं। नगाड़े बजाते चलते जाते हैं और साथ बालक गाते रहते हैं। बड़े बच्चे प्रथम पंक्ति प्रारम्भ करते हैं, छोटे उनके पीछे गान का अनुकरण करते चलते हैं। युग्म पक्ष से डंके की बड़ी सुन्दरता के साथ भिड़ंत होती है। मुख्य त्यौहार के दिन तो ये झांकियां अत्यन्त सुन्दर चित्रों, फूलों, फहुरियों झालरों भालाओ, चित्रारिकाओं तथा पताकाओं के अनूठे शृ गार के साथ सजाई जाती हैं। इनकी सवारियों के साथ हजारों व्यक्तियों की भीड़ रहती है, जिनमें बच्चों की संख्या अधिक होती है। बच्चे नये कपड़ पहने मेवे से भरे छोटे थले गले में लटकाए हाथों में रंगीन डंके लिए, उछलते कूदते हुए अपनी अपनी चौक चांदणी के साथ चलते हैं। कभी कभी बड़े हर्षो ल्लास के साथ ये – 'चौक चांदणी भादुड़ो, कर्दे माई लाडूड़ो आदि बोल भी याद दिलाने हेतु गाने लग जाते हैं।' लाडूड़ा में पांन सुपारी लाडूओं के साथ पान सुपारी भी मांगते हैं।

सभी चौक चांदणियां अपने अपने सञ्चकों के हाथों से सज कर नगरों की फेरियां फिरने लगती हैं। फिर अपने अपन स्थान पर मिल जाती हैं। यहां स ये गुरु-सवारियां [चौ का] पंक्तिबद्ध होकर अपने आगे पीछे रक्षक साकार रूपवान परियां प्रेत यम, गण रावण, हनुमान, सेठ - सेठाणी, बन्दर नाहर और नकलची वाईसरा आदि के अनेक सुसज्जित चित्ताकर्षक मनोहर स्वांग साथ लेकर चलती हैं।

ये चौक चांदणियां महाजनी विषय को पढ़ाई कराने वाली परंपरित गुरुओं की पाठशालाओं की ओर स मान-दक्षिणा प्राप्त करने वाली परिपाटियां हैं।

मर्दे पढ़ने वाले छात्रों को साथ लेकर गुरु [महाराज] लोग उनके घर जाते हैं और वहां गा-बजाकर ११ या २१ तथा ५१ तक रुपये प्राप्त करते हैं। धनी-मानियों के घर मे झांकियां सर्व प्रथम जाती हैं। वे लोग व बच्चों को लड्डू आदि भी बांटते हैं। बालक यहां एक दूसरे के साभिमान तिलक करते हैं। इस मौके पर कुछ खास गान भी होते हैं

१ गौरी पुत्र गणेश मनाऊं ध्यान पिरह गणपति रा गाऊं
माद्र सुदी चौथ बुधवार जनम लियो गणपति दातार
२ सुरसत माता ने बन बांधी हुय बड़ी उडावे बांधी
३ सुरसत माता मांगे मरजी विद्या दे मां परमेसरजी
४ सुरसत माता तुम्हें मनाता दे विद्या तेरा गुण गाता
५ सुरसत माता तूं बन बांधी तेरे अक्षरया चौदह भार
कभी पाऊं विद्या भार

विद्या याचना के उक्त गीतों के सिवाय कुछ वाणी विलास पंक्तियां, शिक्षा श्लोक व्याकरण के स्वर व्यंजन और पहाड़ों के विषय में प्राचीन समय से चलते आये हैं। जैसे

सीधो बरणो समा मनाया।
तरतर चतरक वही सा बो सी बाटा।
सर्व सबावा बाऊं ख्वुप्रो ने भीख बरण।

आदि वाक्य तो प्राचीन शिक्षा प्रणाली का श्रीगणेश माना जाता था। इस पद्धति में सब अक्षरों की काव्यमय छटा और अलंकारयुक्त वर्ण विन्यास पाया जाता है। जिसका नमूना प्रस्तुत है

प्राचीन वर्णमाला

क वर्ग—	कक्को कोडरी	क	स्पर्श
	खख्खो खाजूली	ख	
	गगा गोरी गाय घे	ग	
	घघा घाट पसावे बाय	घ	
	ङिङियो रोमय घूमणो	ङ	
च वर्ग—	चाम चिड़ी री चोंच में	च	
	छछ्छा छिद्या चोटड़ी	छ	
	जज्जा जबर जांगिणी	ज	
	झझ्झा झीरी झारीबी	झ	
	ञञियो लाडी बनवरा	ञ	
ट वर्ग—	टंटा टोटी टाटडी	ट	
	ठठा ठेवर ठाइलो	ठ	

सवाल— सौ मण री मकड़ी ऊपर बैठी मकड़ी।
रत्ती रत्ती खाय तो किता दिन मथाय।

धाड़ों में काव्य की तुकें भी देखिये —

घोड़े का पहाड़ा— अेक घोड़ो घोड़ो घर्रं बापर पोढ़ो।
घर्रा भाई नींद में बी घोड़ा तीन बे।

हाथ का पहाड़ा— अेक हाथी हाथी, झूकड़ न पोढ़ायी।
झूकड़ मारी पांच म बी हाथा पांच बे।

बच्चों के खाता सवाली अपने किलोल वाक्य —

धोल चीड़ी म मोल चिड़ी सौ सौ घोड़ा सेम पड़ी
अेक घोड़ो अपरम्पार, बीमे बैठो पुरी पमार
पुरी पमार रैं काठी टोपी काळा है किसनजी
गौरा है मुकनजी डको बायो रामजी
बीठ पड़पा हडमानजी, हड़मानजी रै पाये मापूं
हाथ जोड़ बिचा मांगू अेक बिचा चोटी
गुरुजी पकड़ी चोटी चोटी करैं चम चम
बिचा आवै चम चम

स्नेहमय स्फुट काव्य —यह मात्र काव्य वाक्य बड़ों की ओर से छोटों का सुनाये जाते हैं। इसमें अपने प्रियजनों के लिए आशीर्वादात्मक वाक्य - विलास होते हैं। नवागत वधुएं, पीहर से आते-जाते समय होली-दीपावली स्नान - पूजा और धोक पुषवाकर अपनी सासू, दादरी सासू और जेठाणी आदि के चरण स्पर्श करती हैं। इसे राजस्थान में पगे लागणो कहते हैं। पगे लागणो के समय वे बुढ़ियां बहू की पीठ पर थापी लगाती हुई जो शुभाशीर्वचन बोलती हैं, वे लोक साहित्य - श्रृंखला की सुन्दरतम कड़ियां हैं।

सोळी हो, सपूती हो। बूढ़ सुहागण हो अमर सुहाग रहो। सीपड़ी भरो अर पूत जणो। पीळी पाटो राज करो। औलाद रा सूलेड़ा बसो। कोड़ दिवाळी राज करो। थारो चूनड़ी अणछळ रहो। अमर री नार वणो। दूधां न्हावो, पूतां फळो।

बालकों के अच्छा कार्य करने पर अथवा वार त्यौहार प्रणाम करने के समय वृद्धजनों की ओर से दिये जाने वाले आशीर्वचन वाक्य भी बड़े विमल होते हैं। ये भी देखिये

बडो बूढो हुवो। माडी बूढी डोकरी बणो। नडव नीम ज्यूं वधो। अन्न धन विलसो अर कार मे पिससी।

आत्मोचित सहज अभिव्यक्ति के अनुरूप स्वयं-स्फूर्त काव्यात्मक गेय पंक्तियों का सृजन रात्रि जागरण में भी हुआ करता है। राजस्थान के विभिन्न इलाकों में

विभिन्न प्रकार की भणतें गाई जाती हैं। ये भणतें मुख्यतया खेत को काटने के दौरान में प्रचलित हैं। राजस्थान के गांवों में यह रिवाज है कि सारे गांव के लोगों को खेत काटने के लिए निमन्त्रित किया जाता है और उसी सामूहिक श्रम के अवसर पर भणतें गाई जाती हैं। चूंकि भणतों की रचना प्रमुखतया स्वयं-स्फूर्त होती है अतः उनका रचना सौष्ठव बाल्य-सुलभता लिये हुए होती है। बीकानेर क्षेत्र में रामधनिया एवं सिवधनिया जैसे संबोधनों के साथ कुछ विशिष्ट भणतें प्रचलित हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है

उठै पधारी छाछी लाग्यी छोरा सिवधनिया!
थारै दो दो भैस्या दूवै छोरा, सिवधनिया!
थारै भड़का थारै गायी छोरा, सिवधनिया!
थारै घर मामा री धीवी छोरा सिवधनिया!
थारै धोळा झूटा टोळी छोरा, सिवधनिया!
तप डूंगरपड़ परभात्यूं छोरा, सिवधनिया!
थारै दो दो बहुवा मास्यूं छोरा, सिवधनिया!
तम प्यांरी छाछी भाम्यी छोरा, सिवधनिया!

८

लोकानुरजन

लोक वार्ता की समग्रता को आत्मसात करने की दृष्टि से गद्य-पद्येतर लोक कलाओं का अवलोकन करना उचित होगा। क्योंकि लोकानुभूति और लोकाभिव्यक्ति के कलात्मक माध्यम चाहे कितने ही भिन्न क्यों न हों उनके सृजनात्मक एवं सौंदर्यात्मक तत्त्व हर प्रकार से 'एक समानता' को अवश्य ग्रहण किये रहते हैं। अतः लोक साहित्य के विवेचन के साथ ही उन लोक-कलाओं की पृष्ठभूमि देना भी आवश्यक है जो सामान्य जन की सामूहिक अभिव्यक्ति के रूप में जन्म लेती हैं और सामाजिक सौन्दर्य के मान दंडों अथवा मूल्यों को स्थापित करती हैं। किन्तु साथ ही साथ यह लोकाभिव्यक्ति मानवीय नैपुण्य और वशिष्ट्य की ओर भी अग्रसर होने लगती है अर्थात समाज के कुछ विशिष्ट समुदाय लोक कला के सृजनात्मक तत्त्वों का अचेतनरूप से ही स्वीकृत करते हुए लोकाभिव्यंजना को नवीन रूप प्रदान करने लगते हैं।

सामान्यतया लोक कलाओं का उद्भव 'सामूहिक अचेतन' में होता है और समाज के सभी सदस्य सृजन की प्रक्रिया क न केवल अंग ही होते हैं अपितु उसमें सक्रिय रूप से भाग भी लेते हैं। वस्तुतः लोक कला का अस्तित्व इस तथ्य को स्वीकार करने पर ही समझ में आ सकता है कि लोक कला के साथ ही साथ एक आभिजात्य या विशिष्ट कला का भी अस्तित्व रहता है। अर्थात दो विशिष्ट कलात्मक प्रवृत्तियों के होने पर ही लोक एवं शास्त्रीय सौन्दर्यानुभूतियों का सृजन सम्भव है। यह स्थिति आदिम समाज में हमें प्राप्त नहीं होती। इसलिये हम आदिम समाज की कलात्मक उपलब्धि को लोक कला से पृथक करके देखते हैं।

लोक कला क क्षेत्र में इस परिवर्तित अवस्था के कारण एक नवीन डाय मेन्शन उत्पन्न हो जाता है। यहां लोक कला का सृजनात्मक बिन्दु सामाजिक उद्वेग एवं सामूहिक क्रिया से हट कर एक श्रेणी या विशिष्ट समुदाय की परम्परा बन जाता है। अर्थात समाज का ही एक अंग विशेष, पूरे समाज को आनंदित

जाति के लोग किया करते हैं। इस नृत्य में दो व्यक्ति तलवारों के साथ युद्धात्मक क्रिया का अनुसरण करते हैं। बरगू, बांकिया, ढाल, और थाली जैसे वाद्य साथ रहते हैं। यह नृत्य पुरुषों द्वारा ही किया जाता है।

डूंगरपुर - बांसवाड़ा क्षेत्र में जोगियों द्वारा पांचपदा नामक पांच वाद्यों के साथ नृत्य करने का एक प्रकार प्रचलित है। यह जाति विवाह आदि मांगलिक उत्सवों पर नृत्य करने के लिए आया करती है। जुलूस के साथ वाद्य बजाते और नाचते हुए आने के लिए इन्हें विशिष्ट रूप से आमन्त्रित किया जाता है। ढोलक वादक मुख्यतया नृत्य करता है। नृत्यकार ढोलक बजाते हुए अपने शरीर को संचालित करते हुए दुहरा होकर जमीन पर पड़े रूमाल और छोटे सिक्कों को अपने मुंह में उठा लेता है। पद संचालन व वादन बराबर चलता रहता है।

राजस्थान के मध्य भाग में [विशेष कर कुचामण के निकट] कच्छी घोड़ी के नृत्य किये जाते हैं। इस नृत्य में बांसों की खपच्चियों से घोड़े का ढांचा बनाया जाता है जिसे पुरुष अपनी कमर पर पहिन लेता है। अंग संचालन द्वारा घोड़े पर बैठे सवार का आभास मिलता है। तलवारों के युद्ध का सुन्दर अभिव्यञ्जन इसमें होता है। दो, चार, छ या आठ की संख्या में भी घोड़ों का यह अनुकरणात्मक नृत्य किया जाता है।

इस नृत्य के अलावा जसनाथियों का अग्नि नृत्य निश्चय ही एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है। जसनाथी सम्प्रदाय के भक्त मंत्रोच्चार से गीत व हल्की हिप्नोटिक प्रभाव वाली विलम्बित लय के नगारे वादन के साथ जलते हुए अंगारों पर नृत्य करते हैं। सुलगते हुए इन अंगारों पर चलना या नृत्य करना अवश्य ही विस्मय जनक क्रिया है। जिसे तर्क बुद्धि से समझा जाना कठिन है। किन्तु यह नृत्य होता है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

लोक नृत्यों के इन विशिष्ट प्रकारों के अलावा गैर, गींदड़, घूमर, झूमर आदि नृत्य जन सामान्य में प्रचलित हैं, लेकिन इन नृत्यों में सभी लोग भाग लेते हैं और विशिष्ट कुशलता को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती।

लोकानुरंजन की तीसरी महत्वपूर्ण कलात्मक उपलब्धि लोक नाट्य की रचना है। राजस्थान में ख्याल, माच, तुर्राकलगी, रासधारी, रामलीला, रासलीला भवाई एवं रम्मत कुछ विशिष्ट नाट्य प्रकार हैं। इन नाट्य प्रकारों को तीन विभिन्न भेदों के रूप में देख सकते हैं। प्रथम भेद में हम ख्याल माच तुर्राकलगी को ले सकते हैं। इन नाट्य रूपों में विभिन्न धार्मिक पौराणिक ऐतिहासिक एवं सामाजिक विषयों का समावेश रहता है। दूसरे भेद में रासलीला एवं रामलीला को ले सकते हैं जिनका विषय मुख्यतया कृष्ण चरित्र या राम चरित्र रहता है। तीसरे प्रकार में हम भवाई एवं रावळों की रम्मत को ले सकते

जाति म ग्गान किया करते हैं। इस नृत्य म दो व्यक्ति तलवारों के साथ युद्ध स्मरू क्रिया का अनुगरण करते हैं। बरगू, बांगिया, ढाल, और भाला बस साथ साथ रहते हैं। यह नृत्य पुरुषों द्वारा ही किया जाता है।

डूंगरपुर - बांसवाड़ा क्षेत्र में जोगियों द्वारा पांचपदा नामक पांच बाजों के साथ नृत्य करने का एक प्रकार प्रचलित है। यह जाति विवाह आदि मांगलिक उत्सवों पर नृत्य करने के लिए आया करती है। जुलूस के साथ साथ बजाते और नाचते हुए आने के लिए इन्हें विशिष्ट रूप से आमंत्रित किया जाता है। ढोल वादक मुख्यतया नृत्य करता है। नृत्यकार ढालक बजाते हुए अपने शरीर का संचालित करते हुए दुहरा होकर जमीन पर पड़े रूमाल और छोटे सिक्कों को अपने मुंह म उठा लेता है। पर संचालन व वादन बराबर चलता रहता है।

राजस्थान के मध्य भाग म [विशेष कर कुचामण के निकट] कच्छी घोड़ी के नृत्य किये जाते हैं। इस नृत्य में बांसों की खपच्चियों से घोड़े का ढांचा बनाया जाता है जिसे पुरुष अपनी कमर पर पहिन लेता है। अंग संचालन द्वारा घोड़े पर बैठे सवार का आभास मिलता है। तलवारों के युद्ध का सुन्दर अभिव्यंजन इनमें होता है। दो, चार, छ या आठ की संख्या में भी घोड़ों का यह अनुकरणात्मक नृत्य किया जाता है।

इस नृत्य के अलावा जसनाथियों का अग्नि नृत्य निश्चय ही एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है। जसनाथी सम्प्रदाय के भक्त मंत्रोच्चार से गीत व हल्की हिप्नोटिक प्रभाव वाली विलम्बित लय के नगारे वादन के साथ जलते हुए अंगारों पर नृत्य करते हैं। सुलगते हुए इन अंगारों पर चलना या नृत्य करना अवश्य ही विस्मयजनक क्रिया है। जिसे तर्क बुद्धि से समझा जाना कठिन है। किन्तु यह नृत्य होता है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

लोक नृत्यों के इन विशिष्ट प्रकारों के अलावा गर, गींदड़, घूमर, झूमर आदि नृत्य जन सामान्य में प्रचलित हैं, लेकिन इन नृत्यों में सभी लोग भाग लेते हैं और विशिष्ट कुशलता को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती।

लोकानुरंजन की तीसरी महत्वपूर्ण कलात्मक उपलब्धि लोक नाट्य की रचना है। राजस्थान में खयाल नाच, तुर्रांकलंगी, रासधारी रामलीला रासलीला भवाई एवं रम्मत कुछ विशिष्ट नाट्य प्रकार हैं। इन नाट्य प्रकारों को तीन विभिन्न भेदों के रूप में देख सकते हैं। प्रथम भेद में हम खयाल नाच तुर्रांकलंगी को ले सकते हैं। इन नाट्य रूपों में विभिन्न धार्मिक, पौराणिक ऐतिहासिक एवं सामाजिक विषयों का समावेश रहता है। दूसरे भेद में रासलीला एवं रामलीला को ले सकते हैं जिनका विषय मुख्यतया कृष्ण चरित्र या राम चरित्र रहता है। तीसरे प्रकार में हम भवाई एवं रावळों की रम्मत को ले सकते

है। वस्तुतः भवाई एवं रावळ ऐसी जातियां हैं जो पदाधर रूप मे विशिष्ट
जातियों के मनोरंजनार्थ ही नाटकों का प्रदर्शन किया करती हैं। यों भवाई
सर्व को विभिन्न जातियों से संबंधित बताते हैं और विभिन्न जातियों में ही
उनके कार्यक्रम आयोजित होते हैं। यथा जाटों के भवाई अपने का जाटों की
यजमानी तक ही सीमित रखते हैं। रावळ जाति चारणों के अनुरंजनार्थ ही
अपनी रम्मत का आयोजन करती है। यह जाति अपने नाटकों का तभी करती
है जब दर्शकों में एक न एक चारण निश्चित रूप से हो।

इन सभी नाट्य रूपों में प्रमुख बात यह है कि कथोपकथनों को गेय रूप
में व्यक्त किया जाता है। संपूर्ण नाटक गीतों की भावपूर्ण कड़ियों में विभक्त
होता है। इस नाट्य-अभिव्यक्ति को हम विदेशीय 'ओपेरा' के समकक्ष मान
सकते हैं। इन नाटकों में नगारे वादन का अन्यतम स्थान होता है और सभी पात्र
अपने गायक [कथोपकथन] के पश्चात नृत्य द्वारा कला का प्रदर्शन करते हैं।
अभिनय की दृष्टि से इन नाटकों में अतिशयोक्त अभिव्यक्ति ही प्रमुख होती है।
शास्त्रीय एवं आधुनिक नाटकों में अभिनय का अभिनेता का ही अंश माना जाता
है अर्थात् दर्शक अभिनेता में 'अभिनेता' को भूलकर उसको वास्तविक पात्र के
रूप में ही समझने का प्रयास करता है। अभिनेता की सफलता इसी बात मे
होती है कि वह पात्र की मानसिक, वाचिक और शारीरिक अवस्था को ज्यों
का त्यों व्यक्त कर सके, किन्तु लोक नाट्यों में अभिनय का यह पक्ष अत्यंत
गौण होता है। हर समय दर्शक यह धारणा लेकर बैठता है कि एक अभिनेता
विशेष, किसी का अनुकरणात्मक अभिनय कर रहा है। अपने अभिनय से दर्शकों
को प्रभावित करने की दृष्टि से उसके सभी हावभाव व अंगों के संचालन में
एक 'एक्सेगरेटेड' अभिव्यक्ति का आ जाना सहज है। फिर इन नाटकों मे
गेय-रूप की प्रमुखता भी अभिनय की शैली को परिवर्तित कर देती है। इन सभी
नाट्य प्रकारों में रंगमंच की अपनी अपनी मान्यतायें हैं और उसी के अनुरूप
नाट्याभिनय को प्रस्तुत किया जाता है। तुर्रा-कलंगी इस दृष्टि से एक अत्यंत महत्व
पूर्ण प्रयोग है। इस नाटक में रंगमंच दो भागों में विभक्त होता है। एक भाग
का जमीन से डेढ़-दो फीट ऊंचा रखा जाता है और उसके पीछे आठ नौ फीट
ऊंचा एक मचान रहता है। इस प्रकार दो मंजिल के रंगमंच का आभास हमें
प्राप्त होता है। दूसरी ओर रावळों की रम्मत में मंच के लिए ऊंची सतह का
प्रयोग ही नहीं किया जाता। सामान्य भूमि को ही मंच स्थल के रूप में बरता
जाता है और दर्शक मंच के चारों ओर बैठते हैं।

नाट्याभिनय की अनुरंजनात्मक कला में भांड जाति का वर्णन भी महत्वपूर्ण
है। यह जाति विभिन्न स्वांग को लाने में सिद्धहस्त होती है। वेश के धारण और

व रंगों के इसी क्रम में एक विशिष्ट जाति ने लोक चित्र कला की परम्परा को भी विशिष्ट रूप प्रदान किया है। राजस्थान में यह जाति 'चितारों' के नाम से जानी जाती है। धार्मिक अनुष्ठानों एवं उत्सव के अवसरों पर ये चित्रकार विभिन्न चित्र दीवारों या कागजों पर बनाया करते हैं। दीवारों पर बने चित्रों में हाथी, घोड़ा, वनस्पति एवं अन्य ज्यामितिक पेटर्न्स हुआ करते हैं। फ्लेट रंगों का उपयोग करना इनका एक अत्यंत मनोहर प्रकार है। इसी क्रम में पट [वस्त्र] को चित्रित करने की पद्धति भी इसी जाति में प्राप्त होती है। शाहपुरा [भीलवाड़े के निकट] में देवनारायण एवं पाबूजी की पड़ का चित्रण किया जाता है। बीस-पच्चीस फुट लंबे एवं ढाई फीट चौड़े पट पर उपरोक्त दोनों कथाओं की विभिन्न घटनाओं को अंकित किया जाता है। चित्रों की रेखांकन पद्धति में यथार्थ के स्थान पर एक विशेष अनुपातिक विरूपात्मकता होती है। और सभी चित्रों का संतुलन संपूर्ण पट-चित्र की एकता में प्राप्त होता है। लाल, हरा, पीला, काला, कत्थई, एवं नीला रंग प्रयुक्त किया जाता है। सभी रंग विभिन्न रंगीन मिट्टियों से प्राप्त होते हैं। नीले रंग के लिए देशी नील को काम में लेते हैं। फ्लेट रंगों का ही प्रयोग होता है।

इन पट चित्रों को देवनारायण एवं पाबूजी के भोपे अपनी लोक गाथा को गाते समय उपयोग में लेते हैं। इन वृहद लोक गाथाओं का गेय एवं वादन पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। अन्यत्र लिखा जा चुका है कि देवनारायण [अथवा बगड़ावत] की पड़ के साथ जंतर नामक वाद्य एवं पाबूजी की पड़ के साथ रावण हत्था जैसा वाद्य काम में आता है। इन पट चित्रों के अलावा रामचरित एवं माताजी की पड़ें भी प्रचलित हैं किन्तु इनके साथ लोक गाथाओं का प्रचलन नहीं है।

विषय की दृष्टि से मूर्तियों के दो रूप प्राप्त होते हैं। प्रथम मूर्तियां तो लोक देवी देवता की प्रतीकात्मक आकृतियों सहित प्राप्त होती हैं एवं दूसरी मूर्तियां बालकों के खिलौनों अथवा गृह सज्जा के रूप में प्राप्त होती हैं। मूर्तियों के निर्माण के लिए मिट्टी, विभिन्न धातु, पाषाण, लकड़ी एवं वस्त्र आदि का प्रयोग किया जाता है। यह सभी कलात्मक कार्य भी विशिष्ट जातियां संपन्न करती हैं और समाज के सामान्यजन उन्हें अपने विश्वास अथवा रंजन के लिए प्रयोग में लाते हैं। इन सभी लोक कलात्मक वस्तुओं के विस्तृत अध्ययन से लोक साहित्य को समझने में निश्चय ही बहुत मदद मिलती है। मुख्यतया लोक कला के सृजनात्मक पक्ष की गहराई में जाने के लिए तो यह प्रयत्न निश्चय ही नये मानदंड एवं मूल्यों पर विचार करने के लिए विवश कर देते हैं।

१

लोक प्रचलित कुछ तथ्य

राजस्थान के जन जीवन में प्रसिद्धि प्राप्त संत, महापुरुष, वीर, शक्तियां एवं सतियों के विषय में कुछ सूचनायें अत्यंत आवश्यक हैं। इसलिये विहंगम दृष्टि से इन विषयों पर एक चर्चा यहां प्रस्तुत की जा रही है। इस चर्चा का मुख्य आधार प्रचलित विश्वास एवं जनश्रुतियां ही हैं। किन्तु इनके अभाव में लोक जीवन की सर्वांगीणता को समझ पाना संभवतया अत्यंत कठिन कार्य है।

राजस्थान के सिद्ध पुरुष नाथ एवं संत — शिव को आदि नाथ कहा जाता है। इसलिए कि वे नाथ पंथ के प्रथम प्रवर्तक हैं। मत्स्येन्द्र [मछेन्द्र] और गोरक्षक [गोरख] भी इनकी शिष्य परंपरा में हुए हैं। गोरख मत्स्येन्द्र नाथ के मुख्य शिष्य थे। इन्हीं [गोरख] के प्रभाव से भारत में नाथ पंथ का आविर्भाव हुआ है। इस मत की धाक महिमा बड़ी प्रचलित है। इनके अनेक आसन और तकिये [स्थान] आज भी अपनी चमत्कारिक आभावों के चिन्ह हैं। इनमें [नाथों में] शिव और गोरख को गुरु मानकर जोगी लोग भी सम्मिलित हैं, जो यहां बड़े आदरणीय समझे जाते हैं।

गोरखनाथ के जीवन संबंधी कई धारणाएं चलती हैं। उनमें अनेक लोक कथाएं उनके वरदान की भी प्रचलित हैं। जैसे—राजा भरथरी को जोग देना, पूरण भक्त के कटे शरीर के टुकड़ों को कुए से निकालकर जीवित करना। पाबूजी की मृत्यु के बाद उनके भतीजे झरड़ा को अपनी शिष्य परंपरा में लेकर उनके बैरियों के बरी जिंदराव खिची के बाबत बदले में मरवाना आदि आदि वरदान प्रसिद्ध हैं। गोगा और सुल्तान भी गोरखनाथ की शिष्य परंम्परा में माने जाते हैं। कबीर पर तो गुरु गोरख की पूर्ण कृपा ही रही है। गोरखनाथ के इन्हीं अमर चमत्कारों से साधारण जनता सदा प्रेरणा प्राप्त करती आई है। राज - स्थान मे इनके नाम से अनगिनत पद गाये जाते हैं।

गोरखनाथ की ऐसी समर्थपूर्ण कहानियों से संत चरित्र की महत्ता प्रकट

होती है। इनके पीछे जसदरनाथ, कन्हीपाव, चोरंगानाथ, जसनाथ वृष-सीमाळ, मरीचनाथ आदि नाथों की बातें भी बड़ी रुचिकर हैं। भरथरी और गोपीचंद की यौगिक कथाएं तो जोगी लोग हमारे प्रान्त में घर घर घूमकर सुनाते हैं। यहां नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय की तरह रामस्नेही और दादूपंथी आदि साधुओं के भी कई संप्रदाय स्थापित है।

गोरखनाथ ने जिन लोगों को अपने दर्शन दिये उन शिष्यों में यहां जस नाथ नाम के सिद्धाचार्य यौगिक चमत्कारों में बड़ प्रसिद्ध हुए हैं। उन्होंने जस नाथी नाम पर अपना एक अलग संप्रदाय चलाया है। राजस्थान में जसनाथ जी की बहुत सी गद्दियां और बाड़ियां स्थापित हैं। उनमें कतरियासर बमलू, माला सर, लिखमादेसर, पांचेवड़ो, सापामर, कामड़ी हुसेरा, पूनरासर, पांचू सर आदि बहुत मशहूर हैं। इन्हीं गोरखनाथ के दर्शन पाकर जांभोजी नाम के एक सिद्ध पुरुष ने विश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना की है। गोरखनाथजी के उपदेश से प्रभावित होकर एक कुख्यात डाकू भी साधू बन गया और और उसने अपना निरजनी नाम का पंथ चलाया है। जनता में इन सभी संप्रदायों के संतों की अलौकिक बातें मिलती हैं। जसनाथजी और जांभाजी के चमत्कारिक कार्यों की खोज श्री सूर्यशकर पारीक ने की है। ये बाणियां और सबद अपनी लोक भाषा [राजस्थानी] में निर्मित होने के कारण सब साधारण के लिए समझने योग्य होती हैं। निश्चय ही कुछ निर्गुण पद और उलटबांसियां नाथ पंथी हैं वे पद गूढ़ भावाभिव्यक्ति के लिए हैं, जो वाचक, गायक और श्रोताओं के लिए सरल नहीं कहे जा सकते।

सम्मानीय वीर – लोक वीरों की बातें जन-साधारण में बहुत प्रेरणादायक होती है। इन लोक कथाओं में कर्तव्य पालन प्रतिज्ञा पालन, आत्म त्याग, उदा रता, सत - परायणता स्वामी भक्ति और शौर्य वीर्य आदि गुणों की ज्योति जगमगाती है। कुछ लोक वीरों के चरित्रों मे जन सामान्य प्रकाशित जगदेव पवार की अद्वितीय दानवीरता को लेते हैं। इस लोक वीर के विशद वृत्त ने अनेक लोगों को दृढ़ प्रतिज्ञ एवं सत्य साहस का पुनीत पाठ पढ़ाया है। ऐसा एक सुल्तान नाम का राजकुमार भी अपने सत्य पर निश्चल खड़ा रहा सुना जाता है। इस पर असंख्य विपत्तियों के पहाड़ टूट पर इस धीर वीर ने अपने सत्य को नहीं छोड़ा। लोक सामान्य में इसकी बातें बड़े उत्साह के साथ सुनी सुनाई जाती है। जोगी जाति के लोग सुल्तान के चरित्र के साथ उनकी धर्म पत्नी निहालदे के काव्य गीत गाकर उनकी पूर्ण जीवन कथा प्रकट करते है। इस तरह से लोक प्रशंसित व्यक्तियों में तेजा धोळा [सांपों के देवता] का नाम भी बड़ा मशहूर है। उनकी कथा इस प्रकार है – तेजा धोळा [जाट] अपनी मां की आज्ञा से खेत जोतने गया।

उसकी भौजाई माता [छाक]लेकर देर से खेत पहुंची। इस पर तेजा ने देरी की शिकायत की। तब भौजाई ने तेजा को ताना दिया कि तुम अपनी औरत से भाता जल्दी क्यों नहीं मगवा लेते जो अपने बाप के घर उक्त कार्य कर रही है। इस बात पर तेजा हल छोड़कर अपनी स्त्री को लिवाने ससुराल पनेर [किशनगढ़] पहुंचा। वहाँ उसकी सास ने उसे न पहचानकर अपने घर में नहीं घुसने दिया। तब तेजा वहां के बाग में जाकर ठहर गया। मालूम पड़ने पर तेजा को ससुराल वालों ने घर आने के लिए बहुत मनाया। मगर वह स्वाभिमानी व्यक्ति हरगिज नहीं माना। उस समय डाकू वहां की गायों को चुराकर ले जा रहे थे। तेजाजी ने बड़ी वीरता के साथ डाकुओं से लड़ाई लड़कर गायें छुड़ाई। पर इस युद्ध में उसके शरीर पर इतने घाव लगे कि कहीं भी खाली स्थान नहीं बच रहा। इस हालत में एक सर्प ने उसकी जीभ पर काट खाया और उसकी वहीं पर मृत्यु हो गई। स्त्री उसके पीछे सती हो गई। उसी परंपरा में आज तक धोले जाटों की औरतें पति मरने के बाद नाता [पुनर्विवाह] नहीं करती हैं। ये गांव खड़नाळ [नागौर] के निवासी थे। हल चलाते समय आज भी हाळी कृषक तेजा-गायक लोक गीत को बड़ी मधुर ध्वनि से गाते हैं। गीत बड़ा विस्तृत एवं मार्मिक है। तेजा की मां कहती है —

> पाव बोरा में बरसगी रे कंवर तेजाजी
> धूरीका बादळ में चिमकै बीजळी
> भाळम सिवारी र बेटा बाट रा
> भारे रे साथया खेता बावड़िया
> सावीडा री बावीडी रे कुवार कंवर तेजाजी
> बारीडा बायीडा मोती नीपजै

इन लोक प्रतिष्ठा प्राप्त वीरों में अमरसिंह राठौड़ वीर तोगा और वीरांगनाओं में पद्मावती, हाडी रानी और भटियाणीजी आदि सिरमौड़ हैं। डूंगजी जवारजी बल्जी भूरजी, लादू के स्यामजी का नाम भी अग्रणी गिना जाता है। दूसरे प्रकार के लोक सम्माननीय व्यक्ति वे हैं, जो अपने असुपोसम चरित्र के कारण देव रूप में पूजे जाते हैं। ऐसे लोक मान्य देवताओं में नामा [माताजी], गूजरों के देवजी और उनके साथी भाकड़जी मारवाड़ में अत्यधिक प्रतिष्ठित हैं। देवजी के मंदिरों में उनके भोप भरपूर गुण-गान करते हैं। देवजी का ऐतिहासिक वृत्तान्त उनके बगड़ावत नामक जन-काव्य में मिलता है। चितौड़ की तरफ से देवनारायण के रूप में वरदान सिद्ध माने जाते हैं। आजकल शेखावाटी में मालासी और राजस्थान में हरिरामजी भी ऐसी लोक प्रसिद्धि के लिए सकड़ देवता के रूप में प्रकटे हैं। गुढ़ा में [जोधपुर] इन्द्र बाई को

राजस्थान में शक्ति को देवी, भवानी, दुर्गा, काली, भगवती, जोगमाया, चंडी, माता आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। प्रत्येक शुक्ल पक्ष में लोग अपने घरों में माता के लिए घृत-दीप प्रज्वलित करके मातृजोत (जो) करवाते हैं। अष्टमी और नवमी के रोज दूबत प[ा]शुधन वाले लोग भीर पूड़ी और दूसरे लोग लपसी हलवे का भोग लगाते हैं। सिन्दूर से चित्रित त्रिशूल की पूजा होती है। चैत्र और आसोज में बाल [यात्रा] गीत, भजने रातीजगे और कड़ाई आदि के आयोजन होते हैं। शक्ति पूजा में भरव पूजा का भी संयोग होता है। बीकानेर में सोलियासर, लखासर और कोडमदेसर के भर्व प्रसिद्ध हैं। शेखावाटी में हप [सीकर] का भरव विख्यात है।

राजस्थान की सात माताएं विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें दुर्गा, काली, ब्रह्माणी, वायोजी, मावड़ियांजी, महागम्बा नागणचांजी आदि हैं। सचिया माता शीतला माता हमारे यहां अलग से लोक द्वारा पूजित हैं। सेढ़ल माता [शीतला] चाघोर और नोसा, वायांजी चरणा और वायलो करणीजी नेड़ोजी देसनोक, नागणेचाजी बीकानेर, दुर्गा काली पल्लू और कालू तथा सचियाय माता ओसियां की प्रसिद्ध हैं। ये खेड़ा [ग्राम] की सिरोमी कहलाती हैं।

वायांजी ऊजली और सांवली दो हैं। इनका पालणा [विमान] आकाश मार्ग द्वारा चलता है। किसी प्राणी के ऊपर से होता निकल जाय तो वह लंगड़ा हो जाय, ऐसी धारणा है। लूले बच्चों के लिए कहा जाता है— 'वायांजी बैठी'। इनके अलावा यहां कुछ माताओं के स्थानीय नाम भी प्रचलित हैं। जैसे जमवाय माता, औंध माता, नाग पोचिया, सकराय माता, कीमेल माता, चिमाबेरी आदि नाम बहुत से नगरों और ग्रामों में लोकपूज्य के नाम हैं।

राजस्थान में शक्ति की पूजा स्त्रियों द्वारा भी की जाती है। होलिका माता, गीरजा [पार्वती माता], हरियाली तीज, कजली तीज, चौथ माता, गाजमाता, होईमाता, सांपदामाता, पथवारी माता, संध्यामाता, असवामाता आदि के पूजन व्रत बड़ी श्रद्धा के साथ मनाती हैं। यहां स्त्रियों द्वारा जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त शक्ति की मातृ रूप में पूजा चलती है। बालक के जन्म के छठे रोज देमाता की पूजा होती है। उस समय तो दाई को भी माई कहा जाता है। मनुष्य की मृत्यु के समय पंचवारी पूजन का विधान होता है। प्राणी की अस्थियां गंगा माता के प्रवाह में विसर्जित की जाती हैं। राजस्थान में धरती माता, नदी माता, तुलसी माता, गौ माता, आदि माताएं भी पूज्य हैं।

लोक माता आईजी— राजपूत कुल में जन्म धारण करने वाली अनेक देवियां शक्ति रूप में पूजी जाती हैं। उदाहरणार्थ पन्द्रहवीं शताब्दी में गुजरात प्रांत के एक राजपूत घराने में जीजी नाम की बालिका उत्पन्न हुई थी। बचपन में यह

अम्बा की बड़ी भक्त रही और आगे चलकर इन्होंने मारवाड़ [बिलाड़ा] में अपना निवास स्थान स्थापित कर लिया था। गुजरात से आने के कारण यहाँ इनका नाम आईजी रह गया। आईजी ने यहाँ आकर अपना अलग मत [पंथ] चलाया। इस पंथ में दूर दूर के लोगों ने आकर दीक्षा ली। राजस्थान में आई पंथ का साहित्य भी जनजन में प्रचलित है। आईजी को नव दुर्गा का अवतार मान कर पूजते हैं।

चारणी शक्तियां —पश्चिमी भारत में चारण नाम की एक देव जाति कट्टर शक्ति पूजक है। इनका रहनसहन और आचार-व्यवहार राजपूतों जैसा है। इस कुल में भी अनेक शक्तियां अवतरित हुई हैं। इनके चौरासी अवतार माने जाते हैं। जिनके कुछ नाम – सांकल, आवड, बरवड़ महमाह चाहणदे कामक, बाळकराय, करणी आदि हैं। इनकी पौराणिक देवी हिंगुलाज की बड़ी लोक-मान्यता है। चारण वंश में जन्मी हुई उक्त देवियों का जागृत-जीवन आदर्श महत्ता एवं चमत्कारिक चरित्र के साथ प्रकाशित हुआ है। इसीलिए यह तत्कालीन राजवंशों की कुलदेवियां कहलाती हैं। राजाओं ने इन इष्ट देवियों की पूजा प्रतिष्ठा प्रारम्भ करके सारी जनता को शक्ति पूजन में लगाया है।

इन देवियों के अलावा नारसिंही, अम्बामाता, आयज माता, देवळ अम्बा माता, चामुण्डामाता, कालिका माता, राठा सरण, बाणमाता, ब्राण माता घोराजमाता भुंचलाज माता गायरभा माता, कळादेवी सिंधु पोरलाण री माता दधिमाता आदि नाम भी प्रचलित हैं। कुछ देवियों के लिए पशुबलि का अनुष्ठानिक कार्य भी सम्पन्न किया जाता है।

सती माता का महत्व – सतियों के हृदय में अपने पतिदेव के लिए बड़ा स्थान होता है। वे इस अटूट श्रद्धा के कारण अपने स्वामी शव के साथ जीते जी अग्नि प्रवेश कर जाती हैं। अतः जनता भी उस अद्वितीय ओज गुणमा की देवली पूजा करके अपने परिवार को संरक्षित समझती है तथा सती को माता मानकर बड़े उत्साह के साथ आराधना करती है।

सतियों के क्षणिक शरीर तो विलीन हो गये पर गुण अभी तक देवीरूप में पूजे जाते हैं। अनेक लोक गीतों में इस रहस्य की मार्मिक व्यंजना व्यक्त हुई है। किसी भी महिला का सत जागत हो जाता है तब वह चितारोहण करने के लिए उत्सुक हो जाती है। सत के कारण उसके सिर के केश खड़े हो जाते हैं। घर वाले सभी प्रथा कानून निषेध जानकर भय से उसे मकान में बंद कर देते हैं। लेकिन सत के कारण मकान के ताले भग्न [टूट] जाते हैं। फिर कड़ाहे में पानी को खूब उबाल कर स्नानार्थ सती परीक्षा होती है। उसमें भी वह सही निकलती है। तब स्नान के पश्चात् स्वीकृति के साथ वह सोलह श्रृंगार करती है। लोक

उसमें शक्ति का अंश समझने लगते हैं। सती गाजे-बाजे के साथ अग्नि आरोहण के लिए पति शव के साथ श्मशान को प्रस्थान करती है। साथ में अन्य औरतों के समूह गीत गाते हुए जाते हैं। साजबाज और रागरंग का पर्व लग जाता है। आसपास के ग्राम इकट्ठे हो जाते हैं। परचे पूछ जाते हैं, शकुन रखे जाते हैं। सती सच्चे परचे देजाती है। ऐसी जनमामान्य में धारणायें है। यदि कोई साधु या बड़ा सती को श्मशानों में 'से' लाये [वश कर लाये] तो जनता को नहीं, उसी सयाने साधु को परचे आदि देती है। क्योंकि जादूगरों द्वारा सत उतार लिया जाता है।

राजस्थान के लोक विश्वास — भाँति भाँति के लोक विश्वास राजस्थानी लोक जीवन में घुले मिले प्राप्त होते हैं। यहां आश्विन मास के प्रथम पक्ष में पन्द्रह दिन श्राद्धोत्सव मनाया जाता है। इसे पितृ पक्ष या काग पक्ष के नाम से पुकारते हैं। इन दिनों लोग अपने घरों में दही नहीं बिलोते तथा दूध-दही को ही खा लेते हैं। एकादशी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को यहां के लोग हल नहीं चलाते हैं। वे मंगलवार के दिन कोई खड्डा [छोटा बड़ा] भी नहीं खोदते हैं। इन दिनों ये कार्य अहितकर माने जाते हैं। कभी कभी गाय भैंसादि पशुओं के महुवाव या खुरसाण आदि रोग सर्वत्र फैल जाते हैं। ऐसे समय उन [पशुओं] के समूह को किसी साधु-स्याने द्वारा डोरा बांधा तथा टूणा टसमण कराया जाता है। कोई साधु या स्याणा व्यक्ति शनिवार की आधी रात को नग्न होकर श्मशानों से अधजला बांस या हाण्डी लाता है। फिर वह उस श्मशान वासी लकड़ी को एक ढकणी के साथ नीले डोरे से बांधकर वही डोरी द्वारा ग्राम द्वार पर लटका देता है। फिर सारे ग्राम के पशु उसके नीचे से लेकर निकाले जाते हैं। उस रोज पशुओं की रोग मुक्ति के लिए दही बिलौना, चक्की पीसना और पाठे [गोबर] उठाना आदि कार्य बन्द रखे जाते हैं। इस हड़ताल के लिए गाँव में हेला कर दाया जाता है। नीले डोरे, नजर न लगने के लिए पशुओं के छोटे बछड़ों के और टाडियों के परों में बांधे जाते हैं। हमारे गाँव कालू में यह कृत्य यो यसमलाल यति द्वारा सम्पन्न होता था। मोली वाले रोग के लिए पशुओं के मुंह में अंगूठ चला कर रोग शांति चाहने का विश्वास भी प्रचलित है। सौ से लेकर क्रमश एक तक उल्टा गिनकर बिच्छू का जहर उतारने का झाड़ा दिया जाता है।

राजस्थान के बहुत से नये बनाये हुए कुओं के ऊपर वाले भाग पर लाल ध्वजा फहराती हुई दिखायी देती है। ये स्थान हनुमानजी से संबंधित जान पड़ते हैं। क्योंकि कुआ खोदते समय प्रथम यहां हनुमानजी की कुटिया बनाते हैं। लोक विश्वास है कि ऐसा करने से कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होगा और पानी मीठा निकलेगा। यहां कहते हैं 'कुआ-मुआ' अर्थात् कुआ मौत का स्थान है। इसके

सम्पूर्ण होने पर लोग अपना श्रम सफल समझकर हनुमानजी का रोट चूरते हैं।
अन्य विश्वासों के साथ शकुन — राजस्थानी लोगों के दिल दिमाग में भांति भांति के जादू टोने भरे पड़े हैं। पुरानी रूढ़ियां भी उनके साथ घर किये हुए हैं और जनसाधारण में धर्म एवं मर्यादा के नाम से अनेक अन्य विश्वास प्रचलित हैं। उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं। भोजनोपरांत अंगड़ाई लेने से खाना पाँव के पेट में चला जाता है। बच्चों को छतीय नाले के नीचे बठाने से उस पर कार्याकी बह जाती हैं। शनिवार या अदीतवार के दिन बालक्यो सिर पर लने से सिर में दुखमिये हो जाते हैं। कोई व्यक्ति कभी किसी यात्रा के लिए तयार होता है उस समय उसको विदा देने से पहले घर वाले बिल्ली से दही मुठवा कर खिलाते हैं। उसी समय यदि कुत्ता कान फड़फड़ा जाये तो सब उपस्थित लोग दुःखी हैं। और उसकी [यात्रा को] यात्रा बन्द कर देते हैं। हमारे यहां रात्रि में तारे का टूटना [उल्कापात] भी मृत्यु सूचक माना जाता है। टूटता तारा किसी को दीख जाये तो वह उसकी दोष निवृत्ति हेतु मुंह बाकर तीन बार राम राम बोलता है। रात में कौवे का और दिन में सियारों का बोला जाना भी देश के किसी बड़े आदमी की मृत्यु या अकाल के सूचक समझे जाते हैं।[1]

विवाह के समय सदवी को खटाई नहीं खिलायी जाती है। क्योंकि सगे बट्टे न पड़ जाय। विवाह के बाद वापस घर आते समय जब बारात ग्राम सीमा पर पहुंचती है तो नारियल बधारकर उसकी चिरकियों के चार चार टुकड़े वर वधू के हाथों से सीमा पर बड़वाते हैं तब कहीं सीमा में घुस जाते हैं। सीमा-देव के बावत ऐसे अनेक भ्रम विश्वास पलते हैं। यह सब भोमिया, खेतरपाळ एवं पितृों के संबंध में होते हैं। समय पर वर्षा के न होने से उक्त देवों को बळ-बाकळ भी चढ़ाये जाते हैं। ऐसा करने से पानी बरसने की उम्मीद बंधती है। यह विश्वास अलौकिक यक्षों के स्थान पर लोक वीर एवं लोक पीर पूजा का नमूना है।

राजस्थान में देवता का दोष प्रकट करवाने की प्रथा का चलन बड़ा विचित्र है। इसका आखा देखना या ज्योत करवाना कहते हैं। ये क्रियाएं माताजी मावड़ियांजी, हनुमानजी भरूजी और पितर-पितरानियों के समक्ष अपने विघ्न-प्रश्न पूछने के संबंध में करवाई जाती हैं। भक्त किसी बड़ी औरत या भोपे के आगे अपने आखे [अक्षत दाने] और ज्योत का घृत ले जाकर धरता है। तब देवी या देवता अपने पुजारी के सिर आकर उसके मुंह बोलता है। भक्त उससे अपने प्रश्नों का उत्तर पूछता है और पुजारी के बताये अनुसार विश्वास करता है। भक्त को सन्तोष हो जाने पर देवता पुजारी के सिर से उतर जाता है।

---

1 रातूं बोलै कागला दिन में बोलै स्याळ। का वरती री राजा मरै का पड़ै मजूरो काळ।

उसळ्नी [फोड़ फुन्सियों का एक चर्म रोग] ठीक करने के लिए आक के पील पत्ते पर उल्टी वर्णमाल लिखवा कर छप्पर या दरवाजे पर टांक [रख] दिया जाता है। पत्ता सूखता है वैसे ही उसळ्नी के फफोले सूख जाते हैं। डाकण स्यारियों से पुन्वाकर बच्चों को बचाया जाता है। शाम के समय घर की रक्षा के लिए दरवाजे के आगे पानी की कार दी जाती है। सांपों की पूजा होती है। चुड़ैल, भूत प्रेत और जिन्द को देवता रोके रखते हैं। राजस्थान प्रदेश के ऐसे असंख्य टोने टोटके हैं।

लोक संस्कृति के निर्माण तत्वों में उपरोक्त सभी विश्वासों का न केवल अपना महत्व है अपितु जीवन के यथार्थ को परखने का प्रयत्न करें तो महसूस होगा कि समाज का सम्पूर्ण मानवोचित कार्य-व्यापार ऐसी ही मान्यताओं पर निर्मित हुआ है और उन्हीं के बीच दैनन्दिन जीवन का संचालन हो रहा है।

सहायक ग्रन्थों की सूची

प्राकृत विमर्श — सरयू प्रसाद अग्रवाल

ग्रम्य पद

प्राक कथा — मार्तंड कौसलायन सुशील कुमार

राजस्थानी सबद कोस — सीताराम लाळस

स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ माइथोलॉजी एंड फोकलोर — मेरिया लीच

ग्रामीण हिन्दी

राजस्थानी भाषा — डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या

राजस्थानी साहित्य प्रगति और परम्परा — डॉ. सरनाम सिंह

राजस्थानी भाषा और साहित्य — डॉ मोतीलाल मेनारिया

राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा — डॉ मोतीलाल मेनारिया

राजस्थानी गद्य साहित्य उद्भव और विकास — डॉ. शिवस्वरूप शर्मा

राजस्थानी साहित्य एक परिचय — स्वामी

संक्षिप्त राजस्थानी व्याकरण — स्वामी

राजस्थानी व्याकरण — सीताराम लाळस

मारवाड़ी व्याकरण — रामकरण आसोपा

राजस्थानी भाषा और साहित्य — हीरालाल माहेश्वरी

वीर काव्य — डॉ उदय नारायण तिवाड़ी

पुरानी राजस्थानी — टैस्सीटोरी

मालवी और उसका साहित्य — डॉ श्याम परमार

राजस्थानी संस्कृति की रूपरेखा — प्रो. मनोहर शर्मा

हिन्दी साहित्य का १६ वां भाग [लोक-साहित्य]

भारतीय लोक साहित्य — डॉ श्याम परमार

हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य — डॉ शंकरलाल यादव

ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन — डॉ सत्येन्द्र

लोक साहित्य की समालोचना — झवेरचन्द मेघाणी

ग्राम साहित्य भाग १ से ३ — रामनरेश त्रिपाठी

लोक साहित्य — रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हमारे लोक गीत — पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी

भोजपुरी ग्राम गीत भाग २ — डॉ कृष्णदेव उपाध्याय

मैथिली लोक गीत — राम इकबालसिंह राकेश

हरियाना के लोक गीत — एम एस रन्धावा

कुरु प्रदेश के लोक गीत — गणेश दत्त

गढ़वाली लोक गीत — नत्था प्रसाद

मालवी लोक गीत — डॉ. श्याम परमार

भोजपुरी ग्राम गीत — आर्चर तथा संकटा प्रसाद

मारवाड़ी गीत संग्रह — ताराराम शास्त्री

मारवाड़ी ग्राम गीत — जगदीशसिंह गहलोत

मारवाड़ी गीत — निहालचंद शर्मा

मारवाड़ी स्त्री गीत — ताराचंद ओझा

सचित्र मारवाड़ी गीत संग्रह [दस भाग]

मारवाड़ी गीत संग्रह — बंशीधर

मारवाड़ी गीत माला — मदनलाल वैद्य

मारवाड़ के मनोहर गीत — राम नरेश

मारवाड़ी भजन सागर

राजस्थान के ग्राम गीत भाग १ व २ — पारीक

राजस्थानी लोक गीत — पारीक

राजस्थानी लोक गीत—पारीक, गणपति स्वामी
राजस्थान के लोक गीत १ व २ भाग — रामसिंह स्वामी, पारीक
राजस्थानी लोक गीत—लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत
निमाड़ी लोक गीत — रामनारायण उपाध्याय
बघेली लोक गीत—भजन प्रताप
सुहाग गीत—विद्यावती कोकिल
छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का परिचय—श्याम चरण दुबे
पंजाबी लोक गीत—संतराम बी ए
हिन्दुस्तानी लोक गीत—गोपाल हरिनाथ
रढ़ियाली रात—झवेरचन्द मेघाणी
चूंदड़ी—झवेरचन्द मेघाणी
राजस्थानी भील गीत—लोक संस्थान उदयपुर
मरुधर गीत माला—जैठमल
राजस्थान के लोक गीत भाग १ से ६—लोक संस्थान, उदयपुर
राजस्थान के लोक गीत—डॉ पुरुषोत्तम मेनारिया
धूलि धूसरित मणियां—सीता लीला व चतुर्वेदी
कविता कौमुदी भाग ५—रामनरेश त्रिपाठी
बेला फूले आधी रात—देवेन्द्र सत्यार्थी
बाजत आवे ढोल—देवेन्द्र सत्यार्थी
धरती गाती है—देवेन्द्र सत्यार्थी
बीरी म्हारी मार्ई—विजयदान देथा
मीठो बीरा रो बोलणो—विजयदान देथा
डोरी बीयां में सासरो—विजयदान देथा
म्हूं कीनी परदेस—विजयदान देथा
वई वई रे समंद तळाव — विजयदान देथा
मरवण मोती डी — विजयदान देथा
भारत का लोक कथाएं — १९५४
राजस्थानी बात संग्रह — राज. शोध संस्थान
चौबोली — सहल व गौड़
राजस्थान की लोक कथाएं — डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया
राजस्थानी बातां — स्टूडेंट बुक कंपनी
के रे चकवा बात—लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
राजस्थानी लोक कथाएं — सहल
कहो तो मटी मत — सहल
कुंवारी बो पा — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
मारवाड़ी बाईबिल
मांझल रात — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
मूमल — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
गिर ऊंचा ऊंचा गढ़ां — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
कनक सुन्दर नवल कथा — शिवचंद्र भरतिया
मारवाड़ी पोथी — राम कर्ण आसोपा
पंचतंत्र दूजी — गोविन्द लाल माथुर
अकल बिना ऊंट उभाणो — बैजनाथ पंवार
बात बाता — रामपाल भाटी
बुंदेलखंडी ग्राम कहानियां — शिव सहाय चतुर्वेदी
राजस्थानी बातां — सूर्यकरण पारीक
ब्रज की लोक कथाएं — आदर्श कुमारी जैन
ब्रज की लोक कहानियां — डॉ सत्येन्द्र
हरियाना की लोक कहानियां — आदर्श कुमारी, यशपाल
सुख सुख सालिका
सिंहासन बत्तीसी — सं. अमरसिंह
काश्मीरी लोक कथाएं — नन्दलाल
आदि हिन्दी की कहानियां और गीत — राहुल
मालवा की लोक कथाएं — डॉ॰ श्याम परमार
विन्ध्यप्रदेश की लोक कथाएं — चंद्र जैन
राजस्थानी व्रत कथाएं—मोहनलाल पुरोहित
मारकंड री कथा

राजस्थानी लोक गीत—पारीक, गणपति स्वामी
राजस्थान के लोक गीत १ व २ भाग — रामसिंह, स्वामी, पारीक
राजस्थानी लोक गीत—लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत
निमाड़ी लोक गीत — रामनारायण उपाध्याय
बघेली लोक गीत—भगवान प्रताप
सुहाग गीत—विद्यावती कोकिल
छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का परिचय—श्याम चरण दूबे
पंजाबी लोक गीत—संतराम बी ए
हिन्दुस्तानी लोक गीत—कैलाश हरिनाथ
रढ़ियाली रात—झवेरचंद मेघाणी
चुंदड़ी—झवेरचंद मेघाणी
राजस्थानी भील गीत—शोध संस्थान उदयपुर
मरुधर गीत माला—जेठमल
राजस्थान के लोक गीत भाग १ से ६—शोध संस्थान उदयपुर
राजस्थान के लोक गीत—डॉ पुरुषोत्तम मेनारिया
धूलि धूसरित मणियां—सीता गीता व दमयंती
कविता कौमुदी भाग ५—रामनरेश त्रिपाठी
बेला फूले आधी रात—देवेन्द्र सत्यार्थी
बाजत आवे ढोल—देवेन्द्र सत्यार्थी
धरती गाती है—देवेन्द्र सत्यार्थी
बीरी म्हारी माई—विजयदान देथा
मीठी बीरा री बोलणी—विजयदान देथा
बीरो बीमा नै सासरी—विजयदान देथा
क्यूं दीनी परदेस—विजयदान देथा
बाई थई रे समंद छलाय — विजयदान देथा
परणत मांदी को — विजयदान देथा
मारवाड़ का लोक कथांक — १९६४
राजस्थानी बात संग्रह — राज शोध संस्थान
चौबोली — लहर व पीढ़
राजस्थान की लोक कथाएं — डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया
राजस्थानी बातां — स्टूडेंट बुक कंपनी
कै रै चकवा बात—लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
राजस्थानी लोक कथाएं — लहर
कही तो नहीं मत — लहर
हुंकारो दो सा — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
मारवाड़ी बाईबिल
मांझल रात — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
मूमल — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
गिर ऊंचा ऊंचा गढ़ां — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
कनक सुन्दर गद्य कथा — शिवचंद भरतिया
मारवाड़ी पोथी — राम कर्ण आसोपा
पंचतंत्र दूजी — गोविन्द लाल माथुर
बकरा बिना ऊंट ऊबाली — बैजनाथ पंवार
बार बाथा — रामपाल भाटी
वृन्दावनी ग्राम कहानियां — शिव सहाय चतुर्वेदी
राजस्थानी बातां — सूर्यकरण पारीक
ब्रज की लोक कथाएं — आदर्श कुमारी जैन
ब्रज की लोक कहानियां — डॉ० सत्येन्द्र
हरियाणा की लोक कहानियां — आदर्श कुमारी, यशपाल
सुख दुख सासिया
सिंहासन बत्तीसी — सं बचनसिंह
काश्मीरी लोक कथाएं — नन्दलाल
आदि हिन्दी की कहानियां और गीत — राहुल
मालवा की लोक कथाएं — डॉ० श्याम परमार
विन्ध्यप्रदेश की लोक कथाएं — चंद्र जैन
राजस्थानी व्रत कथाएं—मोहनलाल पुरोहित
नागजी री कथा